ती न प्र श्न

(मौलिक उपन्यास)

लेखक

मनु शर्मा

मित्र और बड़े भाई पं० सुधाकर पाण्डेय को

तीन प्रश्न

मनु शर्मा

—एक

आखिर व्यवहार ही तो है; नहीं तो मुझसे उसको क्या लाभ जो पिछले दस सालों से मुझे प्रति वर्ष कैलेन्डर भेज देता है और वह कैलेन्डर भी ऐसा जिसमे हर तारीख के लिये एक छोटा-सा पन्ना लगा रहता है। प्रत्येक प्रातःकाल आकाश पर फैले हुए उषा के हल्के-हल्के अनुराग, पड़ोसी खुर्शीद मियाँ के मुर्गों की बाँग और कोकिल के राग से जब मैं जाग उठता हूँ, तब अँगड़ाई लेते हुए उस कैलेन्डर के पास पहुँचता हूँ और 'कर··र' से उसका एक पन्ना फाड़ देता हूँ। दूसरे ही क्षण वह पन्ना जमीन पर लोटता नज़र आता है। यदि कागज के इन छोटे-छोटे पन्नों में जीव होता, ये बोल सकते, तो कदाचित् पीड़ा से कराहते हुए ये अत्यन्त कारुणिक स्वर में पूछते—'ओ मेरे जीवन के यमराज, तुम प्रतिदिन मेरे किसी न किसी बन्धु का बलिदान करते रहते हो ·····।'

'नहीं···नहीं, तुम भूलते हो। आखिर तुम्हारी जिन्दगी ही कितनी? चौबीस घन्टों की—और मैं इस अवधि के भीतर तुम्हें कभी भी नहीं फाड़ता। निस्संदेह मैं तुम पर रहम करता हूँ··· ··विश्वास करो, मैं तुम पर रहम करता हूँ।'

'लेकिन तुम्हारा यह रहम भी किसी कठोर बलिदान से कम नहीं; क्योंकि मृत्यु का भावुक दुलार भी जीवन की ओर घृणा से भी अधिक क्रूर और भयानक होता है··· ··खैर अब तो मैं जा रहा हूँ। सोचता हूँ, मेरे बहुत से बन्धु यहाँ आये और गये होंगे, किन्तु उनमें से कभी किसी की भी तुम्हें याद आती है?

निस्सन्देह तब मैं एक क्षण के लिए मौन रहता। बिजली की तरह चमककर नाचता हुआ आँखों के सामने से कुछ निकल जाता और मैं बड़ी व्यग्रता से बोल उठता,—'हाँ··हाँ, तुम्हारे बहुत से साथी मुझे याद आते हैं, विश्वास करो, मैं उन्हें भूल नहीं सकता। उनमें से एक! मत पूछो। उसे तो कभी भी भूल नहीं सकता। ऐसा लगता है उस तारीख का पन्ना, अब तक मेरे घर के किसी कोने में छिपा पड़ा है और जब मुझे अकेला देखता है, मेरी आँखों के सामने फड़फड़ाने लगता है। वह है 'तारीख २८ जनवरी १९५६ का पन्ना।'

'२८ जनवरी १९५६', जिस रात शीत से काँपते बादल पृथ्वी पर फट पड़े थे। घनघोर वर्षा हो रही थी। आसमान से लटकते तारकोल जैसे अन्धकार में हाथ को हाथ और धरती को आकाश भी नहीं सूझता था। पर नौकरी कितनी बड़ी आर्थिक और मानसिक गुलामी होती है

इसका अनुभव मुझे उस समय हुआ जब ऐसी वर्षा में मैं ट्यूशन करके भींगता चला आ रहा था। रात के करीब दस बजे थे।

यों तो जब चला था तब पानी कुछ थम चुका था। सोचा रिक्शा कर लूँ पर सड़क दरिद्र के भाग्य की तरह एकदम खाली थी। न किसी आदमी की आहट लगती और न किसी आदमजात की। ऐसी कुबेला में गला फाड़-फाड़ चीखने वाला उल्लू कम्बख्त भी पता नहीं कहाँ चुप्पी साधे पड़ा था।

किसी प्रकार काँपता, लम्बे-लम्बे डग बढ़ाए चला जा रहा था। कीचड़ से पैर लथपथ था। रेनकोट के नीचे के चेस्टर की कालर भी भींग चुकी थी। अचानक पानी बरसना तेज हो गया। अब तक आधा रास्ता ही समाप्त कर पाया था।

एक तो मै रुमेटिजम् का मरीज और मूसलाधार वर्षा! मैंने कुछ समय के लिये कहीं रुक जाना ही ठीक समझा। पास ही अनाथालय का भवन था उसी के बरामदे के बीच के चौड़े दालान में एक कोने की ओर खड़ा हो गया। यह दालान सड़क के बिल्कुल किनारे और खुला है। कुछ गायें भी वहाँ थीं—कुछ बैठी और कुछ खड़ीं। लगातार बादल गरजता और बिजली चमकती, जैसे आज सम्पूर्ण आकाश ही धरती पर आ जायगा।

इस दालान में अनाथालय के तीन दरवाजे पड़ते हैं। एक मुख्य दरवाजा है और दो कमरे के बाहरी दरवाजे है। तीनों इस समय बन्द थे। जिस ओर मैं खड़ा था उस ओर के दरवाजे की सुराख़ से भीतर का

प्रकाश आ रहा था और कुछ लोगों के बातचीत करने की हल्की आवाज भी सुनायी पड़ रही थी।

"आज का माल तो बिल्कुल गुलाब है, गुलाब।"

"इसमें क्या सन्देह?" सब ने एक हल्की हँसी हँसी। कुछ रुककर पुनः सुनायी पड़ा "लेकिन हम लोगों का हिस्सा भी मिल जाना चाहिए।" यह कदाचित् उस व्यक्ति की आवाज थी जो अभी पहले बोला था।

"हाँ हाँ, जरूर। कल सुबह कष्ट कीजिएगा। हिसाब हो जायगा।"

"नहीं भाई; कुछ आज ही बोहनी कराओ। इस समय भला दारोगाजी से खाली हाथ मिलूँगा?"

दारोगा शब्द सुनते ही मेरी जिज्ञासा बढ़ी। अनाथालय में दारोगा की बोहनी का क्या प्रयोजन? मैंने दरवाजे की बारीक सुराख में आँख लगाकर देखा। आकर्षक प्लैस्टिक सीट से ढका हुआ कमरे के बीच में टेबुल था। टेबुल के चारों ओर कई कुर्सियाँ थीं, जिनमें केवल तीन ही दिखायी पड़ रही थीं। एक पर पुलिस का आदमी अपनी वर्दी में बैठा था। ऊपर से ऊनी कोट; जिसे लबादा ही कहिए पहने था। टेबुल लैम्प के तेज प्रकाश में उसकी कटारी जैसी नोकीली मोंछ तथा गड्ढे में धँसी कौड़ी जैसी आँखें अत्यन्त डरावनी लग रही थीं। उसके ठीक सामने अनाथालय के प्रधान श्यामदेव और बगल में मैनेजर रामसमुझ बैठे थे। और किसी की भी आहट नहीं लग रही थी। सामने देश के एक जीवित और एक मृत; दो नेताओं के चित्र टँगे थे। चित्र के नीचे ही मोटे-मोटे अक्षरों में दीवार पर लिखा था—'अनाथ अबलाओं की सहायता करो।'

श्यामदेव कुछ सोचते हुए बोला—"इस समय दारोगाजी सोये होंगे। सवेरे उन्हें लिवाकर यहीं चले आइयेगा, सब ठीक हो जायगा।"

"क्या सब ठीक हो जायगा। आखिर कुछ हिसाब भी होना चाहिए। कितना उसके पास नकद था और कितने के जेवर? क्या सब कुछ हड़पने की ही नीयत है?" पुलिस की वर्दी पहने व्यक्ति ने थोड़ी कड़ाई से कहा।

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। हिसाब तो सब तैयार ही है, क्यों मैनेजर साहब।" श्यामदेव रामसमुझ की ओर आज्ञासूचक मुद्रा में बड़ी नर्मी से बोला।

"जी हाँ।" मैनेजर जैसे पहले से ही इस प्रश्न के उत्तर के लिए तैयार था। उसने बिना किसी हिचकिचाहट के और बिना कोई कागज-पत्र देखे बताया—"उसके पास दो सौ पैंतालिस रुपये साढ़े चार आने नकद हैं और करीब पाँच सौ रुपये के जेवर हैं—कुछ उसके बक्स में हैं और कुछ उसके शरीर पर। बाकी उसके कपड़े हैं।"

"बस इतना ही..." जैसे उसे विश्वास न हुआ वह कहता ही गया, "अरे इतना पचा न पाओगे। जरा समझ कर बताओ।"

"बिल्कुल ठीक कहता हूँ दीवानजी।" रामसमुझ नम्रता से बोला।

श्यामदेव ने भी रामसमुझ की हाँ में हाँ मिलाते हुए उसी स्वर में कहा—"अरे आप से कुछ छिपा थोड़े ही है दीवान जी। अभी तो सारी चीजें ज्यों की त्यों रखी हैं। आप चाहें तो खुद देख लें।"

"पर देखने से तो लगता था इस लड़की के पास बड़ा तर माल है।" दीवान सोचते हुए बोला। वह कुछ समय तक सोचता रहा।

सुराख में आँख लगाए मेरी गर्दन कुछ दुखने लगी थी ! मैंने कुछ क्षणों के लिए वहाँ से आँखें हटायी। कुछ राहत मिली। वैसी ही मूसलाधार वर्षा हो रही थी। टिन की गड़गड़ाहट सुनायी पड़ रही थी। बिजली चमक रही थी।

"अच्छी बात है, कल सबेरे ही सही। दारोगाजी को लेकर आऊँगा। सब हिसाब साफ हो जाना चाहिए।" कुछ कड़ी आवाज सुनाई पड़ी।

मैंने फिर सुराख में आँखें लगाकर देखा पुलिस का आदमी कुर्सी से उठकर चलने को हुआ। उसकी बात स्वीकार करते हुए दोनों ने झुककर नमस्कार किया जैसे वे उसके प्रति अपार श्रद्धा व्यक्त कर रहे हों। चलते चलते उसने पुनः कहा,—"दारोगाजी ने कहा है कि इस लड़की का सौदा बिना मेरी आज्ञा के न किया जाय।"

"अच्छी बात है।"

"इसका जरूर ख्याल रखिएगा।" इसके बाद वह मुस्कराया और बड़े लचीले स्वर मे बोला—"देखो, इस गुलाब को एक दिन हम लोगों के चरणों में भी चढ़ाने की जल्दी ही कोशिश करना।"

सब के सब मुस्कराए। प्रधान बोला—"यह भी भला कहने की बात है। आपकी चीज है जब कहिए तभी व्यवस्था हो जाय।"

"तो कल ही रखो। कितना सुहावना मौसम है। शीशे की पालकी में लाल परी हो, और बगल में हो वह गुलाब।" उसने अपनी मोछ पर अँगुलियाँ फेरते हुए कहा। अनाचार एवं पाप से निस्तेज उसकी आँखों में कामुकता की ललाई उतर आयी।

छूटते ही प्रधान बोला—"अरे वाह दीवानजी, क्या बात कही है

आपने।" सब के सब जोर से हँस पड़े। ऊपर चित्र में वह पवित्र-आत्मा भी मुस्करा रही थी, मानो उसकी शान्त एवं शाश्वत मुस्कराहट कह रही हो—'मानवता और सदाचार की समाधि पर खड़े तुम्हारे ऐसे पापियों का अट्टहास तुम्हें ही खा जायगा। यह मत सोचो कि तुम्हारे पापों को इस दीवार के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। परमात्मा की विशाल आँखों से तुम बच नहीं सकते।'

हँसता हुआ पुलिस का आदमी कमरे के बाहर आया। मैं उस बन्द दरवाजे से हटकर किनारे कोने में खड़ा हो गया, जिससे सदर फाटक से बाहर निकलनेवाले मुझे देख न सकें।

वह उसी फाटक से बाहर आया। प्रधान और मैनेजर भी उसे बाहर तक पहुँचाने आए। यों तो पानी बरसना कम न हुआ था; फिर भी वह भींगता ही चल पड़ा।

उसके चले जाने के बाद मैनेजर और प्रधान दोनों उसी कमरे में पुनः जमे और बातचीत शुरू हुई। इस बार उनकी आवाज पहले से कुछ तेज सुनाई पड़ी। कुतूहल ने मुझे पुनः सुराख के पास आने के लिए विवश किया। मेरे लिए यह दृश्य खत्री जी के उपन्यास से कम विस्मयकारी एवं आश्चर्यजनक नहीं लगा।

बातचीत चल रही थी—"इन पुलिस वालों से तो जान आजिज़ आ गयी है। बड़ी से बड़ी पूजा चढ़ाते जाओ पर कभी उनका मुँह सीधा ही नहीं होता।"

"अरे इनसे तो कुत्ते की दुम ही अच्छी जो जब तक पकड़े रहो तब तक सीधी तो रहती है। ये तो कभी सीधे ही नहीं होते।" मैनेजर ने कहा।

"अजीब बात है। चिड़ियाँ फसाएँ हम लोग, और खेलाने तथा बोलने के लिए भेजें उनके यहाँ। यदि इतने ही से जान छूट जाय तो गनीमत है। ऊपर से दक्षिणा भी कम नहीं।" प्रधान बोला।

"आखिर इनसे छुटकारा भी तो नहीं मिल सकता। यदि रोजगार चलाना है तो इन लोगों को खुश रखना ही पड़ेगा।—मैनेजर ने अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक अपनी लाचारी का अनुभव किया।

"हूँ ऽ ऽ" प्रधान ने अपनी स्वाभाविक ऐंठ के साथ सिर हिलाया और अहंकार भरे स्वर में बोला—"अच्छा, तो मै खूब हिस्सा दूँगा। पुलिसवाले भी अपने को क्या समझते हैं? प्रत्येक का कान पकड़कर ऐंठ लेने में यदि वे सिद्धहस्त हैं, तो मैं भी एक अनाथालय का प्रधान हूँ, जिन्दगी के खरीदने बेचने का रोजगार करता हूँ...।" कुछ रुककर वह फिर मैनेजर की ओर देखकर बोला—क्यों जी, जो मैंने कहा है उसका ख्याल रखा है न?

पहले मैनेजर सोचता रहा, फिर उसे जैसे याद आया, उसने कहा—"जी हाँ, जेवरों का जो मूल्य मैंने दीवानजी को बताया है, वे उससे अधिक ही हैं। उनमें से कुछ कीमती जेवर मैं दारोगा के आने के पहले ही हटा दूँगा।"

"हटा दूँगा।" वह मुँह बनाते हुए बोला—"अब तक क्या करते रहे आप।" उनकी बड़ी बड़ी आँखों से क्रोध बरस पड़ा।

"किन्तु वह लड़की ताली देती ही नहीं है।" मैनेजर ने दबी जबान से अपनी लाचारी जाहिर की।

"शर्म नहीं आती तुम्हें ऐसा कहते हुए। यदि वह नहीं देती तो

तुम किस मर्ज की दवा हो। एक लड़की से ताली भी नहीं ले सकते। इतने दिनों तक क्या खाक मैनेजरी की है। फुसलाना, मारना, बेहोश करना, तुम्हारे ये सब साधन क्या असफल हो गये?" इस बार उसकी आवाज पहले से तेज थी।

"पर मैं क्या करूँ? जब से वह आयी है, निरन्तर रो रही है। एक क्षण के लिए भी उसके आँसू तो रुकते ही नहीं।

"पागल कहीं के, तुम कुछ भी नहीं कर सकते। इतने दिनों तक तुमने जैसे घास छीला है। औरत के आँसू वह नदी है जो मर्द की दुर्बलता के समतल पर द्विगुणित वेग से बहती है, पर शक्ति और सम्पत्ति का प्रौढ़ बाँध देखकर ही बर्फ की तरह जम जाती है।" कुछ ही रुककर वह पुनः बोला—"आफिस की आलमारी में देखो, बेहोश करने वाली दवा है या नहीं?"

'जी नहीं!' जैसे वह पहले से ही जानता था।

'नही, नहीं', हर बात मे नहीं। किसी चीज का ख्याल रखो, तब तो।...और आज रात में यह सब कर डालना है।...तो अब क्या करोगे, "जाओ बन्द कमरे में उसके मुँह में कपड़ा ठूँसकर उसे मारते मारते बेहोश कर दो और उसकी कमर से ताली निकालकर अपना काम करो। जाओ।" प्रधान जोर से तड़पा। मैनेजर उठकर चलने को हुआ, किन्तु उसने उसे कुछ सोचते हुए पुनः रोका—'देखो, एक बात का ध्यान रखना। होश आने के पहले ही उसकी कमर में ताली बाँध देना; नहीं तो उसे सन्देह होगा। हो सकता है इस सन्देह से

वह दारोगाजी से भी अपने जेवरों के बारे में कह सकती है, तब सब गड़बड़ हो जायगा।"

"अच्छी बात है।" मैनेजर अत्यन्त धीरे से बोला।

प्रधान गम्भीर मुद्रा में अब भी सोचता रहा। कोई भी उपाय हर परिस्थिति में ठीक नहीं होता। उसे स्वयं लगा; उसने इस समय जो कुछ उपाय बताया है वह इस स्थिति में ठीक नहीं है। प्रधान किसी भी कार्य का आरम्भ भाव और भावना से प्रेरित होकर करता है किन्तु बाद में उसकी बुद्धि जागती है। इसी से उसके विचारों में कभी सन्तुलन नहीं रहता। इस समय भी उसने एक क्षण में अपना विचार बदल दिया और मैनेजर से कहा,—'इस समय यह सब कुछ भी मत करो। मैं खुद कोशिश करूँगा।'

वह चुपचाप चला गया। मैंने सुराख से आँखें हटायीं। ध्यान-मग्न रहने के कारण इतनी देर से गर्दन झुकाए था। अब मेरी गर्दन मे विचित्र पीड़ा हो रही थी।

मैनेजर रामसमुझ से मै बहुत पहले से ही परिचित हूँ। सचाई छिपाने से क्या लाभ ? यों तो कहने में शर्म आती है कि उसका करीब-करीब सारा जीवन मेरे ही मुहल्ले में बीता है। मैं उसकी राई रत्ती जानता हूँ। पर आपको उस पूरे पचड़े से क्या मतलब ? आप इतना ही समझिए कि वह पहले पुलिस में नौकर था। वह भी उसका जमाना था। खूब तपता था। मोछ पर ताव देकर वह पट्ठा जवान पुलिस की वर्दी में जब निकलता था, तब बड़े बड़े गुण्डे झुककर "बाबू साहब सलाम" कहते थे। सज्जनों की शराफत भी उसे देखकर काँप जाती

थी और खैरियत मनाती थी। देवी-देवताओं की तरह वह भी भले बुरे सबसे पुजाता था। पूजा न मिलने पर सज्जनों को किसी न किसी रूप में परेशान करता और गुण्डों की खूब पूजा करता था।

यद्यपि वह काम करता था पुलिस का, गुण्डई, बदमाशी–चोरी खतम करने वाला काम—पर ये सारे अपराध उसकी छाया में वैसे ही पनपते थे जैसे छाया में पान का पौधा।

ऐसी कोई गुण्डई नहीं जिससे उसका सम्बन्ध न हो। शहर में ऐसी कोई हत्या नहीं, जिसमें वह हत्यारे को न जानता हो, ऐसी कोई चोरी नहीं, जिसमें उसे हिस्सा न मिले। एक साधारण सिपाही होकर भी वह बहुत कुछ था।

उसका यह तपाक उसके अन्य पुलिस कर्मचारियों में द्वेष का कारण बना और उसके एक सहयोगी ने ही उसे चोरों के साथ मिलकर चोरो करने के अभियोग में पकड़वा दिया। इस मामले में उसे कुछ दिनों की सजा हुई और नौकरी से निकाल दिया गया। फिर इसके बाद वह बहुत दिनों तक दिखायी नही पड़ा। पता चला कि बम्बई में वह कोई काम करता है। इसके कुछ ही वर्ष बाद उसका लड़का मरा या ऐसी ही उसके घर में कोई घटना घटी—मुझे ठीक याद नहीं है—तब वह बम्बई से चला आया। यह बात मैं आज से करीब सोलह वर्ष पुरानी कह रहा हूँ सन् १६४१ की।

एक वर्ष बाद ही भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ा। पुलिस थाने जलाए गए। रेल की पटरियाँ उखाड़ी गयीं। बिजली और टेलीफोन के तार काटे गये। सरकार को हानि पहुँचाने की हर प्रकार से चेष्टा की गयी।

रामसमुझ को अच्छा मौका मिला। एक दिन वह दो साथियों के साथ कमर में करौली छिपाए गोपीगज के थाने पर पहुँचा। उसका पुराना साथी सूरजसिंह आजकल इसी थाने पर था। इसी सूरजसिंह ने रामसमुझ के चोरों के साथ मिलकर चोरी कराने के रहस्य का भंडाफोड़ किया था।

आन्दोलन के सिलसिले में चारो ओर जोरों की धर-पकड़ हो रही थी। कई गाँवों में तलाशियाँ लेकर सूरजसिंह भी शाम होते लौटा था। थका था। थाने के बाहर ही चारपाई बिछाकर लेट गया। सूर्य अच्छी तरह डूब गया था, अन्धेरा हो रहा था। उसे अचानक आवाज सुनाई पड़ी—"ओ सूरज नमस्कार।"

वह चौंका। "तुम यहाँ कैसे ?" कहते कहते चारपाई से उठ खड़ा हुआ। सामने रामसमुझ मुस्करा रहा था। दोनों एक दूसरे से प्रेम से मिले।

"बहुत दिनों से मेरी इच्छा तुमसे मिलने की थी, पर रोटी दाल के चक्कर में समय कहाँ ? इस आन्दोलन में स्टेशन फूँकते हुए यहाँ तक चला आया हूँ।"

इतना सुनते ही सूरजसिंह मुँह पर अंगुली रखकर बोला—"चुप रहो ! यदि यहाँ ऐसी बात करोगे, तो पकड़ लिए जाओगे।"

वह जोर से हँसा। "मैं गान्धीजी का शिष्य हूँ किसी से डरता नहीं" बड़ी शान से उसने कहा।

"अरे वाह, तुम तो बिल्कुल बदल ही गए... अच्छा, कुछ जल-पान करो।"

"नहीं, अभी नहीं। मैं जलपान के पूर्व मैदान जाना चाहता हूँ। क्या तुम मुझे एक लोटा दोगे?"

"क्यों नहीं।"

वह लोटा लेकर चल पड़ा। बात करते करते सूरजसिंह भी साथ ही चला। करीब चार फर्लाङ्ग चलने के बाद जब नाले के निकट पहुँचा तब रामसमुझ अचानक चिल्लाया—"भारत माता की जय! इनकलाब जिन्दाबाद!!"

"भाई क्या करते हो।" उसे सूरजसिंह ने रोका।

उसके दोनों साथी वहीं छिपे थे। आवाज सुनते ही वे निकल आए। पहले से ही यह संकेत निश्चित था। सबने आकर सूरजसिंह को घेर लिया।

किन्तु यह सब क्या है? एक विचित्र नाटक या इसके अतिरिक्त और कुछ? वह कुछ समझ नहीं पा रहा था। उसे सत्य और स्वप्न में अन्तर उस समय मालूम हुआ जब रामसमुझ ने करौली निकाली और तड़पते हुए बोला—"सूरज मरने के लिए तैयार हो जाओ और उस दिन को याद करो, जिस दिन तुमने मुझे चोरी के मामले में फँसाया था।"

"फँसाया था कि तुमने चोरी की थी। अपनी आत्मा से पूछो... सत्य क्या है? गांधीजी के शिष्य हो, झूठ और दगा को मेरी हत्या का कारण मत बनाओ।" वह आवेश में था। उसकी तेज आवाज उस वृद्ध सिंह की तरह काँप रही थी जो अच्छी तरह जाल में फँसा लिया जाता है। मृत्यु की आशंका का भयभीत अँधेरा उसकी आँखों के चारों ओर था। रामसमुझ के निर्मम अट्टहास ने उस अन्धकार की छाती जैसे

कँपा दी। फिर सूरजसिंह की चीख सुनायी पड़ी। करौली उसका कलेजा पार कर चुकी थी। वह रक्त से लथपथ नाले में गिर पड़ा।

वहाँ से भागने के पूर्व रामसमुझ का ध्यान पास ही जमीन पर पड़े लोटे पर गया, जो अभी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ा था। उसे उठाते हुए सोचा—"यह लोटा उसी का है। क्यों न इसे भी उसी के सिर पर दे मारूँ।" वह दो ही कदम आगे बढ़ा, फिर उसका विचार बदला—"अरे चलो यार, बाजार में बेचने से रुपया अधेली तो मिल ही जायगी।"

इसी प्रकार उसने अपने सबसे बड़े शत्रु की हत्या की, वह भी राष्ट्रीयता की पवित्र भावना की आड़ में। दुनियाँ की आँखों में उसने एक पुलिस को मारा था। कितना बड़ा क्रांतिकारी है वह। उस समय के वातावरण से उसने अच्छा लाभ उठाया। अब वह स्वातन्त्र्य संग्राम का सच्चा सैनिक था।

स्काटलैंडयार्ड के प्रशिक्षित तथा अनुभवी खुफिया विभाग के कर्मचारियों की रिपोर्ट की सहायता से वह इस हत्या के अभियोग में बड़ी कठिनाई से पकड़ा गया था। कहते हैं जब वह गिरफ्तार हुआ तब लोगों ने सम्मान में उसे मालाओं से लाद दिया था। "रामसमुझ जिन्दाबाद, भारत माता के सपूत– अमर रहो।" के नारे लगे थे। 'नहिं रखनी सरकार जालिम नहिं रखनी' के गीत से आकाश गूँज उठा था।

इस अभियोग में किसी कारणवश फाँसी न होकर आजीवन कारावास की सजा उसे मिली थी। स्वराज्य प्राप्ति के समय जब कैदी मुक्त किये गए तब वह भी छूटा।

अब क्या था, उस पर नेता बनने की मुहर लग चुकी थी। जिस प्रकार बड़े व्यापारी के लिए बेईमान होना आवश्यक है, उसी प्रकार नेता बनने के लिए जेल जाना आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति कर वह प्रसन्न था। पढ़ा लिखा बहुत कम था इससे बड़े लोगों में उसकी पूछ अधिक नहीं थी। भोले-भाले लोगों पर उसका रोब था। सिमेंट का परमिट बनवाने के लिए, स्थानीय अखबारों में खबर छपवाने के लिए, अपने लड़के की फीस माफ कराने के लिए, जमानत आदि के पुलिस के काम के लिए, बहुत से लोग उससे मिला करते थे। कुछ काम हो भी जाता क्योंकि वह रोज ही दौड़ धूप करके नगर के सभी अफसरों से अपनी सलाम बन्दगी रखता था। इसके अतिरिक्त अनाथालय की मैनेजरी भी करता था।

खद्दर के सफेद पहनावे में अब वह पहले से अधिक सरल एवं शिष्ट लगता था, किन्तु इस समय मैंने जो कुछ देखा और कल्पना की उससे मेरे रोंगटे खड़े हो गए। वह मुझे इन्द्रारूण के उस फल की भाँति जान पड़ा जो अपने आकर्षक रूप के भीतर विष छिपाये रहता है। ऐसे घृणित एवं जघन्य पाप के ऊपर यह सफेदी! लगता है जनसेवा की पुनीत भावना ने खद्दर में वह पवित्रता भर दी है कि उसकी शुभ्रता में बड़ा से बड़ा पाप उभर नहीं पाता। खद्दर गान्धीजी के तन का ही नहीं उनके हृदय का वस्त्र था। इसीसे उस पवित्र हृदय के सम्पर्क में आकर वह वैसा ही पवित्र हो गया। तभी तो पापियों के तन पर भी अपवित्र नहीं हो पाता; अपनी धवलता में माँ सरस्वती के हंस सा चमकता है।

□ □ □

दुधारू गाय के चार लात ही भले, नहीं तो इतने तीखे मिजाज का व्यक्ति अपने प्रधान श्यामदेव की फटकार चुपचाप सह न लेता। यों तो श्यामदेव उससे अधिक पढ़ा लिखा था पर लोग उसे उतना जानते न थे। वह केवल एक स्थान पर बैठकर योजना बनाता था और उसे कार्यान्वित करता रामसमुझ। एक अनाथालय के शरीर का आत्मा था और दूसरा उसकी पंचेन्द्रियाँ। जैसे आत्मा के बिना इन्द्रियों का और इन्द्रियों के बिना आत्मा का काम नहीं चलता वैसे ही एक दूसरे के बिना दोनों का काम नहीं चलता था।

क्या कोई एम० ए० पास कमाएगा। अनाथालय से अच्छी आमदनी थी। देखते ही देखते इस कमाई से रामसमुझ ने दो मकान और श्यामदेव ने पचासों बीघा खेत खरीदा था। इतना पैसा भला दूसरे पेशे में कहाँ! इसीसे अपने स्वभाव के विरुद्ध होने पर भी रामसमुझ चुपचाप श्यामदेव की बात सुन लेता और जब कभी वह बिगड़ता तब श्यामदेव भी चुपचाप सुनते। कभी-कभी आपस में दोनों की लड़ाई की भी बात सुनाई पड़ती, फिर भी वे वैसे ही साथ निभाये जा रहे थे जैसे किसी गाड़ी के दो डायल पहिये कभी कभी लड़कर भी साथ ही चलते हैं।

इसी से श्यामदेव की फटकार सुनकर भी वह चुपचाप चला गया।

इसके चले जाने के बाद प्रधान ने अनाथालय की देवीजी को बुलाया। इसका नाम रजिस्टर में सुशीला देवी लिखा है पर प्रधान इसे सलोनी पुकारता है। अनाथालय की औरतों की देखभाल का काम

देवीजी के जिम्मे है। उसकी अवस्था करीब तीस के लगभग होगी, पर देखने मे बाइस से अधिक नहीं जान पड़ती। गोरा और गठीला बदन, कटे अंजीर सा कपोल, रेशमी धूप-छाँही कपड़े की भाँति मिस्सी लगे श्याम अधरों पर सदा पान की लाली की आभा से युक्त आकृति पर उसकी कजरारी आंखें बिजली की उस दुधारी तलवार की भाँति मालूम पड़ती थीं जिसकी दोनों धार नीलम की हो। जब वह कमरे में आयी तब हरी साड़ी पर काश्मीरी साल ओढ़े थी। आते ही आँखें मटकाती, कमर एक विचित्र अदा से हिलाती बोली—"कहिये...कैसे...बुलाया?" उसका स्वर व्यग्र व्यक्ति के विचारो की भाँति लड़खड़ा रहा था जैसे उसने आज एक पेग पी ली हो।

उसके बोलते ही प्रधान समझ गया और हँसता हुआ बोला—"अरे वाह मेरी जान, आज तो तुमने कमाल कर दिया है। मैं पिछड़ गया और तुमने बाजी मार ली। जी चाहता है तुम्हें....।" इतना कहते कहते उसने संकेत से उसे अपने पास बुलाया। वह चुपचाप उसकी बगल में आ गयी अब वह मुझे ठीक दिखाई नहीं पड़ रही थी। वह प्रधान की आड़ में पड़ गयी थी। केवल इतना ही दिखायी पड़ा कि उसके बैठते ही प्रधान अपनी दाहिनी भुजा उस ओर ले गया। वह उसके किस अंग पर पड़ी—यह ठीक मालूम नहीं। फिर प्रधान उसकी गर्दन अपने सीने के पास लाकर गौर से देखता रहा, वह भी उसे अपलक निहारती रही। बिजली की रोशनी में दिखायी पड़ने वाली उसकी आँखों में कामुकता की ललाई अंगूर से खींची हुयी बूँदों में डूबकर और भी लाल हो गयी थी।

इसी बीच बादल की गरज का भीषण रव सुनायी पड़ा। पास बैठी गाये भड़क गयीं। एक की सींग तो मेरे कमर पर ही लगी। इस अचानक धक्के से मैं गिरते गिरते बचा। बचाव में मेरे दोनों हाथ किवाड़ पर लगे। भड़ाके की आवाज हुई। भीतर से प्रधान चिल्लाया—"कौन है?"

अब मुझे काटो तो लोहू नहीं। मारे डर के दुबककर किनारे चला गया। फिर उसकी आवाज आयी और सुनसान में खो गयी।

सलोनी बोली—"अरे कोई नहीं है। हवा का झोंका होगा।"

"नहीं, किसी आदमी के धक्का देने की आवाज है।"

"इस समय भला यहाँ आदमी क्यों आयेगा।"

इसके बाद कुछ क्षणों तक एकदम शान्ति थी। फिर दोनों में कुछ धीरे-धीरे बातें होने लगीं किन्तु वह इतनी अस्पष्ट थी कि उनका ठीक विवरण देना मेरे लिए असम्भव है।

जब मेरा मन कुछ स्थिर हुआ और किसी प्रकार के भय की आशंका न रही, तब मेरी जिज्ञासा ने मुझे पुनः दरवाजे से सटकर खड़ा होने के लिए विवश किया। पानी अब भी बरस रहा था। रात की आधी जिन्दगी करीब करीब समाप्त हो गयी थी।

किन्तु अब भी मैं चुपचाप खड़ा था आँखें वहाँ नहीं थीं जहाँ से कुछ दिखायी पड़ता। पर भीतर कुछ हो रहा था ऐसा भान मुझे हुआ। फुसफुसाहट यद्यपि स्पष्ट नहीं थी फिर भी सुनायी पड़ रही थी। मेरे मन की बुभुक्षा कंजूस के धन की भाँति बढ़ती गयी। ऐसा करना शिष्ट है या अशिष्ट, उचित है या अनुचित इसे सोचने के लिए मस्तिष्क को अवकाश मिले इसके पहले ही आँखें दरवाजे के दराज की ओर लगीं।

कमरे में के टेबुल-लैम्प का मुख दूसरी ओर कर दिया गया था। सलोनी प्रधान की गोद में पड़ी थी। उसका काश्मीरी शाल जमीन पर लोट रहा था। शाल का केवल एक अंश उसकी कमर से दबा था। मद की लाली से लाल अधखिली आँखों मे काली पुतली बन्द होते कमल के सम्पुट में भौंरे सी जान पड़ी, गालो पर वासना की सुर्खी और चढ़ आयी थी। प्रधान कभी-कभी उसके अधरों को अपने अधरों से स्पर्श करता। मदिरा से मदिर सलोनी कामुकता के नशे से और भी शिथिल हो गयी थी। वह उस फूली मदमाती लतिका सी जान पड़ी जिससे वृक्ष स्वयं लिपट जाता है। इस दृश्य की मूकता सलोनी की वासनाभरी तेज और लम्बी श्वासों से स्पन्दित हो जाती थी।

इसी बीच भीतर किसी औरत के चीखने की तेज किन्तु पतली आवाज सुनायी पड़ी। बीच बीच में जैसे कोई तड़प भी रहा था। प्रधान चौंक पड़ा। सलोनी सजग हुई। उसने जमीन से उठाकर शाल ओढ़ा। प्रधान दाँत पीसकर बोला—"मैने मना किया था फिर भी वह नही माना। आखिर रामसमुझ ने आधीरात को आफत मोल ले ही ली। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे•••उस कमीने को जरा भी बुद्धि नहीं है।" बड़बड़ाता हुआ वह भीतरी दरवाजा खोलकर चौक में चला गया। फिर उसके जल्दी जल्दी सीढ़ी चढ़ने मे जूते की आवाज सुनायी पड़ी। सलोनी भी पीछे पीछे टेबुल लैम्प बुझाकर चली गयी।

□ □ □

अँधेरा हो गया था, बिल्कुल अँधेरा ! अब मेरे पास देखने को कुछ नहीं था। पर सोचने को बहुत कुछ था। किन्तु यह काम तो मैं घर पर भी कर सकता हूँ, बिस्तर पर सोकर भी कर सकता हूँ। समय भी अधिक हो गया, क्या मैं अब यहाँ से चल पड़ूँ। मैं कुछ कर भी तो नहीं सकता। संसार में प्रतिदिन ऐसे कितने पाप होते होंगे—कुछ पुण्य भी हो जाता होगा, किन्तु इस सबसे मेरा क्या सम्बन्ध ?—कुछ नहीं। तो मैं चल पड़ूँ ?

मै दालान के बाहर आने ही वाला था कि मेरा मन चीख उठा—शर्मा तुम भूल करते हो। समाज के प्रत्येक पाप और पुण्य के तुम भागी हो क्योकि समाज का तुमसे सम्बन्ध है। तुम सभी पापों के सम्बन्ध मे जानते नहीं किन्तु इसकी पूरी कहानी अब जान चुके हो। सुनकर अनसुनी नहीं कर सकते। तुम्हें कुछ करना पड़ेगा—जरूर करना पड़ेगा। इस अबोध बालिका के छुड़ाने की जिम्मेदारी तुम पर है। यदि तुमने उस जिम्मेदारी का अनुभव नही किया तो तुम बहुत बड़े पापी होगे। परमात्मा भी तुम्हें क्षमा नहीं करेगा।

अत्यन्त व्यग्रचित्त मैं चुपचाप खड़ा रहा। पराजित एवं निराश सैनिक की जड़ता मेरे चरणों में आ गयी थी। वे न आगे बढ़ते थे और न पीछे। आखिर मैं उसे यहाँ से निकाल कैसे सकता हूँ ? मैं सोचता रहा।

"रामसमुझ और श्यामदेव दोनों से अपने परिचय का उपयोग करूँ। तो क्या इसकी रक्षा के लिए उनसे प्रार्थना करूँ ? किन्तु

निर्बल की प्रार्थना परमात्मा भी पत्थर के कान से सुनता है, फिर वह मेरी प्रार्थना पर भला कब ध्यान देगा···ऐसा तो नहीं; मैं उसे जाल से छुड़ाने के प्रयत्न में स्वयं फँस जाऊँ।"

मै इसी उधेड़बुन में था कि सदर फाटक से आता प्रकाश दिखायी पडा। किसी के आने की आहट भी मिली। मेरी विचार-शृंखला भङ्ग हुई। मेरा ध्यान उस ओर लगा। दरवाजा खुलने की हल्की आवाज सुनायी पड़ी, फिर कुछ समय तक एकदम शान्ति थी। मेरी हिम्मत सदर फाटक की ओर बढ़ने की न हुई। साहस और शक्ति की मुझमें कमी नहीं है फिर भी मेरे चित्त की निष्क्रियता ने मुझे जमीन में गड़ी उस तलवार की भाँति बना दिया था जो तेज होने पर भी जड़ ही रहती है। इसी से चुपचाप खड़ा ही रहा – स्थिर, मूक, शान्त। फिर किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से पता नहीं कैसे सदर फाटक के पास पहुँचा।

सलोनी पास का कमरा खोलकर भीतर विस्तर ठीक कर रही थी। कदाचित् यह सोने का कमरा है—जिसमें एक भी खिड़की नहीं। जमीन कच्ची सील से भरी है। हरे रङ्ग की दीवार पर कई सिनेमा अभिनेत्रियों के चित्र लगे हैं। दरवाजे दो हैं, जिनमे सड़क पर खुलने वाला दरवाजा सदा बन्द ही रहता है। सोचता हूँ इसमें आदमी सोता है या मेढ़क जो बिना आक्सीजन के भी सो लेता है।

विस्तर ठीक करने के बाद वह जलती बिजली छोड़कर ऊपर गयी और कुछ समय के बाद सोलह सत्तरह वर्ष की एक सिसकती युवती को लेकर फिर उसी कमरे में आयी। उस युवती को तो केवल एक क्षण

देख सका। उसके कान के टप का श्वेत नगीना बिजली के प्रकाश में टार्च के बल्ब सा केवल एक बार चमका। उसके नयनों से मोती पिघल पिघल कर चू रहे थे। वह एकदम सुस्त और शिथिल थी। उसका स्थूल सौंदर्य चम्पा की उस कली सा दिखायी पड़ा जिसे कागज की पुड़िया में बन्दकर मसल दिया गया हो।

सलोनी बोली—"रानी, यहाँ आराम से सो। किसी बात की चिन्ता मत करना।"

जैसे थपथपाने से घाव की पीड़ा बढ़ जाती है वैसे ही सलोनी की सहानुभूति की थपकियों से उसकी भी पीड़ा कुछ बढ़ी सी जान पड़ी। वह फूट कर रोयी तो नहीं पर कुछ जोर जोर से सिसकियाँ भरने लगी।

सलोनी कहती रही—"हमें बड़ा दुख है कि मैनेजर ने तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार किया। क्या कहा जाय? यों तो वह अच्छा आदमी है, किन्तु कभी कभी उसके सिर पर जैसे भूत सवार हो जाता है। वह अनायास ही लोगों को मारने लगता है।" फिर वह एक गहरी साँस और आश्चर्ययुक्त भयातुर मुद्रा में बोलती रही—"अरे राम, एक दिन तो वह अनायास ही मारने लगा। कोई था नहीं। वह मारता गया जब तक कि मैं बेहोश न हो गयी। यह तो कहो कि ऐन मौके पर प्रधान जी आ गये—भगवान उनका भला करे, उनके बच्चे जीयें, उन्होंने मेरी जान बचा ली। ये कितने अच्छे आदमी हैं!"

युवती चुपचाप सिसकती रही। सलोनी प्रधान की प्रशंसा में पुल बाँधती गयी। किन्तु उसका यह कार्य पत्थर पर पानी फेंकने के समान बिल्कुल व्यर्थ था। उस पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसकी आँखें

टपकती रहीं, उस गर्म सोते के समान जो सदा जागता और बहता रहता है, किन्तु कुछ कहता नहीं।

प्रधान के प्रति युवती में आकर्षण उत्पन्न करने में जब सलोनी ने अपने को असफल पाया तब वह चलने को हुई, बोली—"अच्छा अब आराम करो। अभी तक तुमने कुछ खाया नहीं है, थोड़ा कुछ खा लो।"

उसने सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत किया।

"अच्छा लेटो, थोड़ी देर में प्रधान जी स्वयं तुमसे मिलेंगे?"

उसे जैसे करेन्ट सा लगा। प्रधान का नाम सुनते ही वह काँप उठी। उसका मौन भंग हुआ, उसने अत्यन्त भयभीत स्वर में कहा—"नहीं, नहीं प्रधान जी की यहाँ कोई जरूरत नहीं है, मैं सो जाऊँगी।"

"सो जाओगी?" सलोनी हँसी।

"हाँ हाँ सो जाऊँगी। "वह गिड़गिड़ाते हुए बोली, जैसे कोई भयभीत बालक मार खाने के बाद कह रहा हो—अब ऐसा नहीं करूँगा।

"अच्छा तो सो जाओ।" वह पुनः हँसी।

"बिजली बुझा दूँ।" उसने पुनः पूछा।

"जी हाँ" भरे गले से उत्तर मिला।

वह मुस्कराती हुई बिजली बुझाकर बाहर आयी। दरवाजा बन्दकर बाहर से सिकड़ी लगाकर ऊपर चली गयी।

मेरे मन में जैसे किसी ने कहा—क्या देखते हो? आगे बढ़ो।

"किन्तु इस झंझट में पड़ने से लाभ?"—मेरा चेतन मस्तिष्क बोल रहा था। "लाभ! जीवन मे सभी काम लाभ के लिए नहीं किये जाते। यदि तुम प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्तिगत लाभ से ही प्रभावित

होते रहे, तो तुममें और पशु में अन्तर ही क्या ? चुपचाप आगे बढ़ो। सिकड़ी खोलकर उसे बाहर निकालो। यह समय केवल सोचने का नहीं है, पाषाणवत् खड़े रहने से कोई काम नहीं बनेगा। जल्दी करो नहीं तो अभी प्रधान आ जायगा और तुम कुछ न कर सकोगे, बिल्कुल बेकार हो जाओगे, हाथ पैर जकड़े हुए जाल में फँसे सिंह की तरह।" यह मेरे मन की दूसरी पुकार थी।

"अरे तुम अब भी खड़े हो! उसे देखकर तुम्हें जरा भी तरस नहीं आयी। उसकी आकृति पर छाया, विषाद और नयनों की बरसा से भी तुम्हारा कलेजा नहीं पिघला। उसे ऐसी स्थिति में देखकर यदि तुम कुछ भी न कर सके तो तुम्हारा जीवन बेकार है, तुम्हारी शक्ति बेकार है, श्वाँस का प्रत्येक प्रकम्पन बेकार है।"

मैं फिर भी खड़ा था पर मेरे मन की चीख बढ़ती गयी—"तुम्हें कसम तुम्हारी उस संस्कृति और सभ्यता की जिसमें तुम पले हो, तुम्हें कसम है बाप दादो के बनाये उस रास्ते की जिस पर तुम चले हो ·· जल्दी करो। नहीं तो अब तुम्हारी जरा सी सुस्ती में उसका सब कुछ बरबाद हो जायगा। उसके जीवन का सालीमार आलादीन के महल की तरह एक क्षण में धूल में मिल जायगा। उस धूल के प्रत्येक कण से इस बेगुनाह की आह निकलेगी और उसमे तुम भी भस्म हो जाओगे।"

मेरा सिर चकराने लगा मानो मेरे दिमाग में कई रेल के पहिये बड़ी तेजी से चक्कर काट रहे हों। मैं आगे बढ़ा। रेनकोट के दाहिनी ओर की जेब में टार्च के लिये मैंने हाथ डाला। पर वहाँ टार्च न थी। घबराहट में मैं भूल गया था कि किस जेब में टार्च है, पर है, इतना

ज्ञात था। कई जेबों में हाथ डालने के बाद भीतर की जेब में टार्च मिली। धीरे से कमरे का दरवाजा खोला। हाथ काँप रहा था जैसे कोई अपराध करने जा रहा होऊँ। मैं अपने जीवन में पहली बार इतनी विचित्र स्थिति में था। मेरी मनःस्थिति का अनुमान आप बिल्कुल नहीं लगा सकते।

मैंने टार्च जलाया। वह जमीन पर घुटने में सिर डाले सिसकती रही मानों धरती का कोई फोड़ा भीतर ही भीतर मथकर धीरे धीरे चू रहा हो। सजा सजाया मूक शयनकक्ष उसकी सिसकन सुन रहा था। दीवार में टँगे चित्रों में अभिनेत्रियाँ अज़ीब अदा से मुस्करा रही थीं।

वह मुझे देखते ही भय से काँपने लगी और आँसू पोंछकर धीरे से बोली—"आपने क्यों कष्ट किया। जाइए अब मैं सो जाऊँगी।"

उसकी काँपती, धीमी आवाज विनम्रता से भरी थी, जिसमें भय मिश्रित लाचारी थी। उसने सोचा—प्रधान आ गया है।

पर मेरे मुँह से जैसे बोली ही नहीं निकल रही थी कि क्या कहूँ?

"मुझ पर रहम करके चले जाइए। मैं जरूर सो जाऊँगी।" उसने पुनः कहा।

अब मैने किसी प्रकार उसे समझाने की कोशिश की—"मैं प्रधान नहीं हूँ। एक राहगीर हूँ जो तुम्हारी दर्दभरी चीख सुनकर चला आया था। छिपकर मैंने सब कुछ सुना है। भगवान ने मुझे तुम्हारी मदद के लिये भेजा है। जल्दी यहाँ से भाग चलो, नहीं तो तुम ऐसी जगह फँस गयी हो, जहाँ तुम्हारी जिन्दगी इसी प्रकार आँखों से बहते बहते बह जायेगी।···जल्दी करो।"

पर वह एकदम हक्का-बक्का थी। यह देवदूत कैसा ? यह स्वप्न है या सत्य ? वह कुछ भी समझ नहीं पा रही थी।

अब मैंने टार्च अपने चेहरे की ओर की, जिससे वह मुझे अच्छी तरह देख ले। मैंने कहा—"देखो, गौर से मुझे देखो, मैं प्रधान नहीं हूँ। डरो मत। धीरे से यहाँ से निकल चलो, भगवान पर भरोसा रखकर चल पड़ो।"

यदि वह साधारण स्थिति में होती तो कदाचित् अब भी विश्वास न करती, पर मरता क्या न करता। वह विश्वास करने के लिए विवश थी वह जल्दी उठी और बाहर आयी। इसी बीच एक विचित्र प्रकार की आहट लगी। हम दोनों डर गये। चोर का जी आधा। वह बिल्ली थी। कहीं से कूद कर बगल से निकल गयी, खैरियत थी कि उसने रास्ता नहीं काटा!

हम दोनों बिना कुछ बोले गलियों में होते, कभी दौड़ते और कभी तेज चलते—आगे बढ़े। उसके लिए एक तो अँधेरा और अनजान रास्ता था दूसरे उसके सारे शरीर में पीड़ा थी, फिर भी वह किसी प्रकार मेरे साथ चलती रही। गनीमत थी कि पानी बरसना बन्द हो गया था, किन्तु बिजली कभी कभी चमक जाती थी।

□ □ □

मेरी पहली ही आवाज में मकान का बूढ़ा मालिक बोला। यों तो उसकी उम्र साठ के करीब है। पर दमे ने उसे जर्जर कर दिया है।

आज भी इस कमबख्त रोग ने उसकी नींद मुहाल कर दी थी। वह खाँसता हाँफता लालटेन लेकर दरवाजा खोलने आया। खोलते ही बोला—"आज बड़ी देर हुई मास्टर।"

"हाँ, एक आफत में फँस गया था।" तब तक उसकी निगाह मेरे पीछे खड़ी उस युवती पर पड़ी। उसने बड़े आश्चर्य से उसे देखा। कुछ बोल न सका। हाँफता पीछे लौटा।

भीतर आकर हम दोनों ने बाहर का दरवाजा अच्छी तरह बन्द किया। वह पुनः हम दोनों को बड़े गौर से देखता रहा जैसे वह कुछ पूछना चाह रहा हो पर उसे ठीक शब्द न मिल रहे हों। सरला सिर नीचे किये खड़ी थी मेरे मुँह में भी जैसे जबान नहीं थी।

किन्तु यह निष्क्रिय मूकता का नाटक अधिक देर तक नहीं चला। मैंने मौन भंग करते हुये बड़े साहस से कहा "चाचा आज रात इन्हें भी यहीं रहने का प्रबन्ध करना है।"

उसकी आँखों ने एक बार सरला को पुनः सिर से पैर तक बड़े ध्यान से देखा। अब उसकी आँखें मेरी ओर मुड़ीं। इनमें अप्रत्याशित घृणा और तिरस्कार की भावना थी, मानों वह कह रही हो—"इस सरल बालिका को तुमने इस प्रकार फँसाकर बड़ा बुरा किया। इसका जीवन तो बरबाद होगा ही, साथ ही वह बेचारी अब क्या करेगी जिसके हाथ पीले करके तुम ले आये हो और जिसका अटल प्रेम दो पुत्रों के रूप में साकार हो उठा है।"

संसार जैसा है मनुष्य वैसा नहीं देखता उसकी आँखें जैसी होती हैं वह संसार को वैसा ही देखता है। यह दृष्टि नियम है। मेरे प्रति

अनुमान लगाने में उसका कोई दोष नहीं था। यह उसकी दृष्टि की विशेषता थी।

पल-पल दृढ़ होते उसके सन्देह ने मुझे उसके सम्बन्ध में सब कुछ कह देने के लिए विवश कर दिया। मैंने बिना भूमिका के कुछ ही शब्दों मे पूरी कहानी कह सुनायी। बूढ़ा अत्यन्त कुतूहल से सुनता रहा। मेरे चुप होने के पहले ही उसकी आँखों का रंग बदला और वह बोला—"बहुत अच्छा, बड़ा अच्छा किया", मानो वह मेरी बात सुनना नहीं चाहता था। किसी प्रकार बात खतम कर आगे बढ़ा, हम सब उसके साथ चले।

भीतर चौक में आकर वह पीछे घूमकर बोला—"यह शरणार्थी है न ?' उसने अपने किसी विचार के समर्थन पाने के उद्देश्य से पूछा।

में तो बिल्कुल अनजान था किन्तु सरला ने सिर हिला कर स्वीकार किया। अब उसकी मुद्रा पहले जैसी स्वाभाविक हो गयी जैसे कोई विलक्षण बात न हो।

उसने पुनः पूछा—"आपका नाम ?"

'सरला।' वह बड़ी धीरे से बोली।

□ □ □

नगर के एक ऐसे अध्यापक के जीवन की कल्पना कीजिये जिसका सारा परिवार गाँव में रहता है, तो आप मेरे सम्बन्ध में सहज ही समझ सकेंगे। पाँच रुपये महीने की मेरी एक छोटी कोठरी है जिसके ऊपर

खपरैल है और नीचे कच्ची धरती। उसी में रहता हूँ, सोता-बैठता हूँ, लिखता-पढ़ता हूँ, जरूरत हुई तो दो चार दोस्तों के साथ तास की कुछ बाजियाँ भी लड़ा लेता हूँ। यदि मेस में हड़ताल रही या जलपान बनाने की इच्छा हुई तो, उसी छोटे कमरे में ही दमचूल्हे का मुँह भी फूँकता हूँ।

छोटा होने पर भी कमरा एक आदमी के योग्य है। उसमें रखा सामान भी एक से अधिक के जरूरतों की पूर्ति नही कर सकता, किन्तु इस समय हम दो थे। बूढ़े ने मेरी विवशता का अनुमान लगा लिया। वह दमे से हाँफता मेरे कमरे के बगल की कोठरी की ओर संकेत करते हुए बोला—"यदि चाहो तो दालान में पड़ा खटोला इसमे बिछा लो।"

"अच्छी बात है।" यही तो मै चाहता था।

इतना कहकर वह खाँसता अपनी कोठरी में चला गया। फिर उसने भीतर से दरवाजा बन्द किया। खिड़की लगाने की साफ आवाज सुनायी पड़ी।

बूढ़ा अपने जीवन के अन्तिम दिन बिता रहा था। इस छोटे खपरैल के घर में उसके अपने तीन ही प्राणी थे। उसकी बूढ़ी, एक जमुनापारी बकरी और एक उसका तोता।

बूढ़े का यौवन बड़े ही ऐशो-आराम मे बीता था। कहते हैं कि कलाबत्तू के तार की कमाई में वह अपने जूते में घड़ी लगाता था। कम पढ़ा लिखा होकर भी लक्ष्मी की माया से वह बड़ों बड़ों पर रोब गालिब करता था। वह अपनी रईसी तथा दरियादिली के लिए प्रसिद्ध था। बड़े बड़े पापों से न डरते हुए भी बूढ़ा पुलिस से बहुत डरता था। उसकी आम-

दनी का चौथाई थाने के देवताओं की पूजा में ही चढ़ जाता था। हल्का का प्रत्येक सिपाही उसे सलाम बोलता था। साल में एक दिन, बड़े दिन में वह कलक्टर साहब के बँगले पर भी डाली सजाकर सलाम करने जाता था।

इन सबसे उसका बड़ा रंग था। चार यार सदा उसके पीछे चलते वह खूब खाता और खरचता। चाँदी लुटाता और वाहवाही लूटता था। जब कभी वह पिछले दिनों की याद करता, तब बड़े रोब से कहता – ''मास्टर, क्या समझते हो, कोई ऐसी विलायती शराब नहीं जिसे मैंने न चखा हो, दालमण्डी का अपने समय का कोई ऐसा गुलजार कोठा नहीं जहाँ मैंने मुजरा न सुना...वह भी दिन थे जब गर्मियों में बहरी अलग दुधिया छनती थी और बड़ी चमेली की ठुमरी होती थी। मजा आ जाता था।'' कहते कहते उसका बिना दाँत का पोपला चेहरा खिल जाता था, जैसे ठूठे पेड में हरी कोपल निकल आए।

गोया कि बूढ़े से कोई कर्म-कुकर्म छूटा नहीं था। वह जिन्दगी को जूआ की एक बाजी समझता था जिसमें खेलने वाला खेल के नियम के औचित्य-अनौचित्य पर विचार नहीं करता, केवल पुलिस की आँख बचा कर खेल खेलता है। उसने इस घटना को भी मेरे लिये एक खेल समझा और बिना कुछ कहे सुने रात भर के लिए वह हम लोगों से एकदम अलग हो गया।

□ □ □

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। सनसनाती हवा में पत्थर भी ठिठुर रहे थे। खपरैल के चूने से मेरे कच्चे फर्श की मिट्टी फूल गयी थी। चारपाई के एक कोने का बिस्तर तथा पास ही आटे के कनस्तर पर रखी कुछ पुस्तकें भी भींग चुकी थीं। मैंने उन्हें ठीक किया, किन्तु वह चुपचाप खड़ी शीत से काँप रही थी, जैसे वह समझ नहीं पा रही थी कि वह क्या करे। यह सब उसके लिए नया था, अनजान था।

बिस्तर ठीक करने के बाद मैंने सोचा अँगीठी जला दूँ। मैंने उससे कहा आप आराम कीजिये, मै अभी आग सुलगाता हूँ। इतना कह अँगीठी में मै कोयला भरने के लिए आगे बढ़ा, अब उसकी स्थिरता भंग हुई। वह आगे बढ़ी और बोली—"जाने दीजिये मैं सुलगा लूँगी।" इसके बाद मैं बाहर दालान में अपने खटोले पर चला आया।

वह अँगीठी में हाथ-पाँव सेक रही थी, मानों अब उसे कोई दूसरा काम ही नहीं है। उसके मस्तिष्क में विचारों का गतिशील परिवर्तन जैसे उसे जड़ बना रहा था। उसकी बड़ी बड़ी आँखों वाला, संसार की विभीषिका से संत्रस्त शिथिल चेहरा एक बड़े प्रश्नवाचक चिन्ह के समान लग रहा था। जिसका उत्तर जैसे वह अँगीठी की जलती ज्वाला में ढूँढना चाहती थी। किन्तु जब उसकी आँखों से खारे पानी के मोती झरते तब इस अन्धेरे की भयानक श्वाँस से काँपती इस ज्वाला का अन्तर भी 'छन' से करके अपनी दुर्बलता प्रकट कर देता। पर वह तो एक सबल आलम्ब चाहती थी।

वह इसी प्रकार बैठी बड़ी देर तक उस ज्वाला में कुछ खोजती और अपने आसुओं को खोती रही।

उसके जागने की आहट मुझे दालान में अच्छी तरह लग रही थी। जब कोतवाली के तीन का घण्टा बजा तब मैं खटोले पर लेटे ही लेटे धीरे से बोला—"अब आप आराम कीजिए। रात अधिक जा चुकी है।"

अत्यन्त मधुर ध्वनि में सुनायी पड़ा—"अच्छा।"

वह चुपचाप उठी। अँगीठी को बाहर रख भीतर आकर चारपाई पर 'धम' से सो गयी। फिर कुछ समय तक एकदम शान्ति रही। अचानक पुनः उसके उठने की आहट लगी और दरवाजे की सिकड़ी भीतर से बन्द करने की साफ आवाज सुनायी पड़ी। मैं चुप था, जैसे सो गया होऊँ। दूध के जले को मट्ठा फूँककर पीते देखकर मेरा टोकना किसी प्रकार उचित नही था। इस समय वह कमरे के किसी भी छिद्र को खुला रखना नहीं चाहती थी। मनुष्य से अधिक आज के मनुष्य की कल्पना अब उसे भयानक मालूम हो रही थी।

बाहर खटोले पर फटी रजाई मे काँपता किसी प्रकार सोने का प्रयत्न करता-करता मैं सो गया। जब नीद खुली तब भोर का अन्तिम तारा पूरब में सिन्दूर पोत कर धरती पर चूं पड़ा था। आकाश एकदम साफ था।

"राम राम, पढ़ो बेटू राम...।" बूढ़ी के तोता पढ़ाने की आवाज के साथ ही साथ बूढ़े के हुक्का गुडगुड़ाने की ध्वनि उठ बैठने की प्रेरणा दे रही थी। बदन तोड़ते हुए उठा। बाहर पड़ी अँगीठी में देखा आग बुझ चुकी थी। वह भीतर से दरवाजा बन्द किये अब भी सो रही थी। सोचा बूढ़े के यहाँ से ही आग ले लूँ।

अँगीठी में आग देने के बाद वह बड़ी ही गम्भीरता से बोला—"क्या वह सो रही है ?"

"जी हाँ।"

फिर वह कुछ समय तक चुप रहा। तम्बाकू की गहरी कस लेकर उसने कुछ सोचते हुए कहा—"भाई, देखो होशियारी से रहना। अनाथालय वाले पुलिस से मिले रहते हैं। कहीं पता चल गया कि यह लड़की तुम्हारे यहाँ है, तो अवश्य ही तुम किसी न किसी तरह फँसा दिये जाओगे। तुम्हारे साथ ही मुझ पर भी आफत आ जायेगी।" इसके बाद वह चुप हुआ और हुक्का पीने लगा।

लगातार हुक्का गुड़गुड़ाने के बाद उसने एक और तेज कस ली और फिर चिलम में फूक कर देखा। तम्बाकू जल चुकी थी। वह हुक्का कोने में रख आग तापने लगा। मेरी मौन प्रश्नवाचक मुद्रा उसे निहारती रही। अपने अनुभव की पुरानी गुंथियों को खोलते और सोचते हुए वह धीरे-धीरे बोला—"क्या वह औरत जो तुम कहोगे मान लेगी ?"

"सोचता तो ऐसा ही हूँ।"

"तो उससे कहो कि जो कोई भी उससे पूछे, वह यही कहे कि मैं यहाँ स्वेच्छा से आई हूँ। मुझे न तो किसी प्रकार का कष्ट है और न किसी ने बहकाया है...। यदि वह पूर्ण विश्वास के साथ कहेगी तब तुम कहीं बच सकते हो।" उसने सिर हिलाते हुये पूरी गम्भीरता से कहना जारी रखा—"मास्टर अभी पुलिस वालों की माया से परिचित नहीं हो। तिल को ताड़ बनाते उन्हें देर नहीं लगती।" अनुभव के बोझ से दबी उसकी आँखें पुलिस के सम्बन्ध में विचार करती हुई विचित्र भाव व्यक्त

कर रही थीं। उन आँखों ने बड़े गौर से मुझे देखते हुए मानों कहा–"अच्छा होता इस झमेले में तुम न पड़ते। उससे कहो, जहाँ मन हो वहाँ चली जाय।"

बूढ़े को पुलिस वालों का सबसे अधिक भय था। साथ ही साथ वह कुछ और भी सोचता था। उसे अनुभव था कि वासना के सागर में नारी के कल्याण करने की पुरुष की भावना बड़ी आसानी से डूब जाती है। इसी से वह मुझे सचेत करना चाहता था किन्तु शब्दों से नहीं केवल मूक संकेतों से।

मनुष्य की नैतिकता मशीन नहीं है कि उसके सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धान्त बना लिया जाय जो सभी जगह समान रूप से लागू हो। बूढ़े का यह अनुभव बहुतों के सम्बन्ध में ठीक हो सकता है। किन्तु मै बड़े ही दावे के साथ कह सकता हूँ कि संसार को अच्छी तरह समझ लेने वाली बूढ़े की निपुणता ने मुझे समझने में भूल की थी, पर मैंने अपने सम्बन्ध मे उससे कुछ कहना ठीक नहीं समझा। उसकी बात सुनकर चुपचाप कुछ देर तक बैठा रहा और फिर आग लेकर चलता बना।

दालान में आकर देखा, दरवाजा खुला है। भीतर वह झाड़ू लगा रही है।

—दो

कालेज से जल्दी लौटने का विचार था, पर देर हो गयी थी।

घर के बाहरी दरवाजे पर जब पहुँचा, तब बगल के मकान में रेडियो सुननेवालों को सन्ध्या का नमस्कार कर रहा था। सड़क पर भोंपा बजाती सेन्ट्रल हिन्दू बालिका विद्यालय की आखिरी बस सनसनाती चली जा रही थी।

मेरा कमरा बन्द था। चारों ओर सन्नाटा था। केवल बूढ़ी मालकिन के बात करने की आवाज उसकी कोठरी से आ रही थी। बूढ़े की जरा भी आहट न लगी, कदाचित वह कहीं गया था।

मैंने उसे चारों ओर देखा; वह कहीं दिखायी न पड़ी। जैसे मैं आज घर आने पर पहले उसे ही देखना चाहता हूँ, फिर एक विचित्र प्रकार का अभाव मालूम हुआ—सूना सूना सा लगा। ऐसी ममता क्यों? अनजान के प्रति ऐसा मोह क्यों?

चुपचाप अपने कमरे का दरवाजा खोला, पर भीतर कोई जीव नहीं था। आज कमरे में नया जीवन अवश्य था! महीनों की धूल साफ हो गयी थी। जमीन पर सदा पूर्ण स्वच्छन्दता से विहार करने वाले रद्दी कागजों के टुकड़े रद्दी टोकरी में गुमसुम पड़े थे। चारपायी पर बिस्तर लगा था। चारों ओर बिखरी किताबें भी विषय के अनुसार छाँटकर ठीक ढङ्ग से लकड़ी के पुराने रेक में सजा दी गयी थी। उसी रेक के ऊपर गांधी जी की मिट्टी की प्रतिमा भी आज चमक रही थी। जो थोड़े से बर्तन थे वह भी अच्छी तरह साफकर एक कोने में व्यवस्थित कर दिये गये थे।

एक क्षण में निगाह चारों ओर घूम गयी। सभी पुराना नया दिखायी देने लगा, मानों किसी मोरचा लगी लोहे की कड़ाही पर निकिल किया गया हो।

इतना होने पर भी वह कमरा पर्दानसीन, सजी-सजाई पत्थर की उस दुलहिन की भाँति मालूम हो रहा था जो चेतना के अभाव में एक ठोस पत्थर के सुन्दर टुकड़े से अधिक और कुछ भी नहीं रहती। मेरा मन उस कमरे में कुछ खोज रहा था। आँखें भटक रही थीं। पुस्तकों के सजाने के ढङ्ग से यह साफ पता चल रहा था कि वह कुछ पढ़ी लिखी है, यों तो इसका अनुमान मुझे पहले से ही था।

लेकिन जब मैंने मालकिन के कमरे में देखा, वह छीमी (मटर की फलियाँ) छील रही थी। आँखें जीवन के खारेपन से भरी थीं। मुख का सौन्दर्य विषाद के गहरे घने कुहरे से ढका था। वह धरती की ओर देख रही थी।

छीमी छीलते हुए, नीची निगाह किये बूढ़ी समझाती जाती थी•••
"बेटा, दुख से कभी घबराना नहीं चाहिए। सबके दिन एक से थोड़े ही बीतते है, दुख सुख तो लगा ही है। चाँद सुरुज तीनो लोक के मालिक हैं। उन पर भी ग्रहण लगता है।•••और फिर तुम कोई जङ्गल में तो हो नहीं। हम लोग तो हैं ही। कोई न कोई रास्ता तो निकलेगा ही। खाली एक उसी भगवान का भरोसा रखो। वही सबकी मुश्किल आसान करने वाला है।"

भगवान को स्मरण करते ही बूढ़ी की आँखें ऊपर उठीं। सामने मै मूर्तिवत् खड़ा था। वह मुझे देखकर बोली—"लो ये आ गये।"

फिर कुछ रुककर कहा—"आ बड़ी देर हो गयी" जैसे वह मेरा ही आसरा अगोर रही हो।

"हाँ चाची, देर तो हो गयी।" कोठरी में बैठते हुए मैंने कहा।

वह पुनः बोली—"देखो भैया, मै तो समझाते समझाते हार गयी, पर इसने सुबह से कुछ भी नहीं खाया है•••।"

"नहीं, मैंने तो खाया है।" उसने बीच में ही प्रतिवाद किया। उसके सूखे अधरों के बीच मुस्कराहट बिखर गयी; जैसे मुरझाये फूल पर वासन्ती बयार से प्रकम्पित तुहिन कण बिखर जायें।

"हाँ खूब खाया है।" उसने बड़े नाटकीय ढंग से कहा। मुझे भी हँसी आ गयी। वह कहती रहीं—"भला दो फुलकी से क्या होता?" मेरी ओर रुख कर वह कहती गयी—"भैया, मैंने बहुत समझाया, पर यह तो मानती ही नहीं। कितना कहा तब कहीं दो फुलकी और थोड़ा सा साग इसने लिया था। इतना तो बच्चे जलपान कर जाते हैं।"

बूढ़ी की बात सुनकर उसके अधर तो मुस्कराते ही रहे पर आँखों ने सिसकना बन्द नहीं किया।

विषाद की ज्वाला में सान्त्वना की एक हल्की धारा भी डूबते के लिये तिनके का सहारा होती है, किन्तु डूबता सहारा ही नहीं, किनारा भी चाहता है। पर उसका किनारा निराशा के सघन बादलों से ढका हुआ अनजान भविष्य के क्षितिज में कहीं खोया पड़ा था। जिसका न हमें ज्ञान था और न उसे। हम तो केवल हिम्मत बँधा सकते थे, उसकी जीवन नौका को एक धक्का देकर केवल कुछ आगे ही बढ़ा सकते थे। अतएव मैंने कहा—"खाना न खाने से क्या लाभ? घबराहट से कोई समस्या तो हल नहीं होती। व्याकुलता वह हवा है जो कठिनाई के गुब्बारे को फुलाकर केवल बड़ा कर सकती है पर उसे फोड नहीं सकती। धीरज रखकर हमें हर परिस्थिति का सामना करना चाहिए। आपत्ति के पहाड को कभी मोम से पिघलने वाले हृदय ने नहीं तोड़ा है उसके लिये तो लोहे का दिल चाहिए · ।"

मेरी बातें वह चुपचाप सुनती रही। केवल मालकिन बीच बीच में हुँकारी भर कह कर समर्थन करती जाती थी।

मैं भी वहीं बैठकर छीमी छीलने लगा।

यह काम भी पाँच मिनट से अधिक न चल सका। इसके बाद बूढ़ी आलू काटने लगी और मुझसे बोली—'बेटा, इस समय होटल में खाने मत जाना, आज तुम लोगों की मेरे यहाँ चूड़ा मटर की दावत है।"

"चूड़ा मटर···अरे वाह।" मैंने प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए कहा—"चाची, तब तो केवल मगदल की ही कसर रह जायगी,"

"तो इस कसर को पूरा करने का काम तुम्हीं से हो सकेगा।" बूढ़ी मुस्करायी।

"अच्छी बात है।" मैंने उसका कहना स्वीकार किया। पुनः पूछा–"चाचा कहाँ गये हैं?"

"चूड़ा लेने गये हैं। पर अभी तक नहीं आये, बड़ी देर हो गयी।"

"कहीं किसी काम में फँस गये होंगे।" इतने में ही बाहर का दर-वाजा खटका और बूढ़े ने खाँसते हुए घर में प्रवेश किया। मैंने बूढ़ी की ओर संकेत करते हुए कहा—"चाचा की बड़ी लम्बी उमर है, चर्चा करते ही वह आ गये।"

मेरी बात सुनकर बूढ़ी कुछ बोले इसके पहिले ही उस बूढ़े ने चौक में से ही पुकारा—"मास्टर...अरे ओ मास्टर"

उसके पुकारने के ढंग और आवाज से ऐसा लगा जैसे वह मुझसे कोई बहुत आवश्यक बात करना चाहता हो। मैं 'आया' बोल कर बाहर लपका। मैंने देखा बूढ़ा अखबार की किसी खबर को बड़े ध्यान से पढ़ रहा है। जब मैं पास आया तब उसने उसे दिखाकर कहा—"जरा इसे पढ़िए तो"

स्थानीय दैनिक के सन्ध्या संस्करण मे निम्नलिखित समाचार मोटी हेडिंग के साथ छपा था।

"जेवर लेकर अनाथालय से बालिका चम्पत

कोतवाली मे इस आशय की रिपोर्ट लिखायी गई है कि स्थानीय... अनाथालय से एक बालिका आधीरात के बाद आँधी पानी के बीच अनाथालय के देवीजी का करीब एक हजार का जेवर लेकर भाग

निकली। इस समय सभी कर्मचारी सो रहे थे। बालिका के सम्बन्ध में मैनेजर का कहना है कि वह एक महीने से अनाथालय में थी। इस बीच उसने तीन बार भागने की कोशिश की थी। एक दिन खिड़की से कुछ गुण्डों से भी बातचीत करती देखी गयी। मना करने पर भी उसकी यह हरकत बन्द न हुई थी। बालिका की जाति का ठीक पता नहीं है। अनाथालय के रजिस्टर मे उसका नाम सरला लिखा हुआ है।"

समाचार मैं एक साँस में पढ़ गया। मुझे अब पता चला कि मेरी स्थिति उस अबोध पक्षी से किसी प्रकार भिन्न नहीं है, जिसकी अबोधता तूफान के पहले की शान्ति को ही शाश्वत समझकर बड़ी मस्ती से आकाश में कावा काटने की प्रेरणा देती है।

पढ़ने पर बूढ़ा धीरे से बोला—"मैंने क्या कहा था। कैसा जाल रचा गया है। लड़की का अपराध पुलिस मे दर्ज हो चुका है। तुम्हारे लिये यह निरीह बालिका भले ही हो, किन्तु अब से वह लड़की समाज की आँखों में चोर, बदमाश और आवारा है तथा उसकी मदद करने वाला गुण्डा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझा जा सकता।"

मैं चुप था और वह भी।

फिर कुछ समय के बाद सोचते हुए वह बड़ी गम्भीरता से बोला—"मेरे ख्याल से तो उस लड़की को यहाँ से हटा देना ही..." कह ही रहा था कि भीतर से बूढ़ी की आवाज आयी—"अरे चूड़ा ले आये कि नहीं।"

अभी तक वह चूड़ा लिये खड़ा ही रहा। उसे अपनी भूल याद आयी वह बोला—"हाँ हाँ ले आया हूँ। अभी आता हूँ" फिर वह

दालान की टूटी चारपाई की ओर बढ़ा। हम दोनों बैठ गये और बातें शुरू हुईं।

उसने कहा —"जैसे ही पुलिस को इस लड़की का पता चलेगा वैसे ही हम सब फँस जायेंगे। अत्यन्त सोचते हुए गम्भीर स्वर में वह बोलता ही रहा; उसके मस्तिष्क के सिकन की भावमय भाषा उसकी वाणी से अधिक जोरदार थी।

"...आखिर लड़की भगाने के जुर्म में हम लोगों को भी अदालत में अपराधी के कटघरे में खड़ा होना पड़ेगा। . मेरी बात मानो, तो मैं कहूँगा कि इस लड़की को आज रात ही चली जाने को कहो। व्यर्थ में आफत मोल लेना बुद्धिमानी नहीं है।"

"आखिर वह जा कहाँ सकती है ?" मेरा मौन, व्यग्रता में प्रदर्शित हुआ।

बूढ़ा मुस्कराया। उसकी सारी गम्भीरता बड़े ही नाटकीय ढंग से मुस्कराहट में घुल गयी। उसकी आकृति की प्रत्येक झुर्री ने जैसे मेरा उपहास किया हो, मेरी उस पवित्र भावना का मजाक उड़ाया हो जिससे प्रेरित होकर मैंने उस निरीह बालिका के सहायता की प्रतिज्ञा की थी। उसके मुस्कराहट की हवा ने मेरे अन्तर की अग्नि को एक बार उभाड़ने का प्रयास किया। उसने पुनः कहा—"अभी आपने दुनियाँ नहीं देखी है। हर जवान के उभड़ते हुए दिल में औरत की भलाई करने की रंगीन कामना रहती है, जो कभी भी पूरी नहीं होती, क्योंकि उस कामना में अपनी ओर उसे आकृष्ट करने की शक्ति अधिक तथा उसके भलाई की शक्ति अत्यन्त कम रहती है। हर तरुण की शारीरिक सबलता में यह

दुर्बलता छिपी रहती है।—और मै देखता हूँ कि आप भी ऐसी ही दुर्बलता के शिकार हैं।'

बूढ़े की वाणी में मुझे अपने प्रति अपमान की दुर्गन्ध लगी, जिसे सहन कर लेना मेरे लिए कठिन था। चुप रहने की इच्छा रहते हुए भी मुझसे रहा नही गया। मैंने कहा —"प्रत्येक आदमी को किसी एक नपने से नापा नहीं जा सकता। आखिर आदमी आदमी ही है।" फिर मै चुप हो गया।

बूढ़ी लपकती आती दिखाई पड़ी; आते ही उसने बूढ़े के हाथ से झोला ले लिया। अपनी स्वाभाविक कर्कशता के साथ घरेलू भाषा में बोली—"आखिर आज बातै होई कि कुछ कामो करबऽ। चार घण्टा में त चूड़ा आयल और ओहू लेके बैइठल हौउवा। अमइन तलक बकरियो के सानी नाहीं दिआइल। अरे न सानी देवै के होय त ओहके निकार के बाहर कै दऽ। काहे के बेचारी क जान ले थउअऽ।"

"अच्छा बेकार क बकवात मत करऽ। जा आपन काम देखऽ।" बूढ़ा अत्यन्त तिक्त स्वर में बोला।

बूढ़ी तिनक कर चली गयी।

बूढ़ा मेरी बात पर विचार करता रहा। मैने देखा उसकी मुद्रा धीरे धीरे बदलती जा रही है जैसे अग्नि में तपते लोहे का रंग बदलता है। फिर वह कुछ रोष के साथ बोला—"औरत मर्द की सबसे बडी कमजोरी है। और मुझे दुख है कि तुम्हारी इस कमजोरी को दूर करने की शक्ति मेरी बुद्धि में नहीं। तुम मेरी बात नही मानते; मत मानो, पर याद रखो, मैं यह नहीं चाहता कि पुलिस मेरे घर आये और लड़की को बरामद करे।

इतनी लम्बी जिन्दगी में मैने क्या नहीं किया, पर कभी मुझ पर धब्बा नहीं लगा। अब मैं यह नहीं चाहता कि लड़की भगाने वालों की लिस्ट में मेरा भी नाम रहे।"

जब से बूढ़े से मेरा परिचय है तब से आज ही वह अत्यन्त स्पष्ट रूप से बोला था। उसकी इस क्रिया पर मुझे स्वयं आश्चर्य था। मैने अत्यन्त विनम्रता से कहा—"आप कहते तो ठीक है, किन्तु कोई ऐसा रास्ता निकाला जाय जिससे कोई आँच भी न आवे और उसकी भलाई भी हो जाय।"

सुनते ही वह बोला – "यदि आपने उसकी भलाई करने का बीड़ा ही उठाया है तो मै निहायत अदब के साथ कहूँगा कि आज ही मेरा घर छोड़ दीजिए। जहाँ मन हो वहाँ जाइये। जो मन आवै कीजिये।" कहते हुए वह तनक कर भीतर चलने को हुआ।

मै भी ठीक उसी के साथ खड़ा हुआ और स्वाभाविक स्वर मे बोला—"आप इतना घबराते क्यों है? क्या यह जरूरी है कि अनाथालय के मैनेजर ने जो रिपोर्ट लिखायी है वह ठीक ही हो? आखिर लड़की भी कुछ बयान देगी। उसकी भी कुछ बातें सुनी जाँयगी।"

"यही तो मै कहता हूँ कि इतना पढ़े लिखे होकर भी आपको दुनिया का कुछ भी अनुभव नहीं है। पुलिस के कान आदमी की नहीं, रुपये की आवाज सुनते हैं। मै तो आपको एक बार फिर राय दूँगा। आप गौर करके अच्छी तरह देख लें, कहीं ऐसा न हो कि होम करने मे हाथ ही जले।" इतना कहकर वह अपनी कोठरी की ओर चला।

अँधेरा बढ़ चला था। रात के करीब आठ बजे थे। मैं बिल्कुल

अकेला दालान की चारपायी पर पड़ा था। मस्तिष्क में विचारों का मन्थन तेजी से चल रहा था, पर कोई रास्ता नही सूझता था। लगता था बाहर का अँधेरा मेरे मस्तिष्क में धीरे धीरे घुस रहा है और मैं उसमें खोता जा रहा हूँ। क्या कोई मार्ग दिखायी नही पड़ेगा? क्या एक हल्की आशा के प्रकाश की रेखा भी मुहाल है। चिन्तन की अन्तिम सीमा तो प्रकाश में विलीन होती है। किन्तु क्या अब अन्धेरा ही हाथ लगेगा।

यह बूढ़ा विचित्र है। जिन्दगी में इसने क्या नहीं किया। कितनों की इज्जत ली। कितनों का माल हड़पा। कितनी बोतलें ढालीं, किन्तु अब तक बिल्कुल बेदाग है। डूबकर पानी पीने वाला यह बकुला भगत बिल्कुल दूध का धोया दिखायी देता है।

बूढ़ा पाप से उतना नहीं डरता; जितना पाप के कलंक से। जब कभी भी उस पर ऐसी कालिमा लगी है चाँदी के साबुन से वह उसे धो डालने में सफल हुआ है। इसी से उसके जीवन में पैसे का मूल्य सदा व्यक्ति से अधिक रहा है। यही उसका अनुभव है और यही उसका जीवन दर्शन। लेकिन उसका ऐसा विश्लेषण तो मैं अनेक बार कर चुका हूँ। इससे मेरा क्या लाभ? अन्धकार का अस्तित्व तो कालिमा मे ही है। विश्लेषण या आलोचना से वह भला अपना अस्तित्व खो सकता है? हाँ इसमें हमारा दिमाग अवश्य खराब होगा। तो इससे क्या फायदा?

यदि हमें बूढ़े के घर में रहना है, तो जो वह कहे, अन्ततोगत्वा वही करना पड़ेगा।

□ □ □

दीपक के काँपते लौ के धुँधले प्रकाश में उसने विस्तर ठीक किया और बड़ी नम्रता से बोली—"लीजिए आपका विस्तर ठीक हो गया।"

"किन्तु तुम कहाँ सोओगी?" मैने पूछा।

"बाहर दालान के खटोले पर।" वह आँखें नीची किये बोली।

"इस सर्दी में उस टूटे खटोले पर, जब कि विस्तर भी ठीक नहीं है? "नहीं नहीं, वहाँ मैं सोऊँगा। बाहर सोना आपका ठीक नहीं।"

वह कुछ न बोली। चुप थी। शान्त विस्तर की ओर ही देखती रही जैसे पूनम का चाँद धरती पर बिछी अपनी चाँदनी निहारता है।

फिर मैंने कुछ पुस्तकें लीं और लालटेन जलाकर बाहर निकला। मेरे हाथ के अखबार की ओर वह संकेत करती हुई बोली—"क्या यह आज का अखबार है।"

मैंने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

"तो जरा मुझे भी दीजिएगा।" अत्यन्त सीमित शब्दावली में उसने कहा।

लेकिन मैने उसे अखबार देना ठीक नही समझा। मैंने सोचा, तेज हवा में दीपक की लौ जैसे काँप उठती है वैसे कहीं यह भी अनाथालय की खबर पढ़कर काँप न उठे। फिर भी मै उससे 'नहीं' नहीं कर सका। अखबार के भीतरी दो पन्ने जिनमें वह खबर नहीं थी, निकाल कर दे दिये और बोला—"इन्हें पढ़िए बाकी अभी पढ़कर देता हूँ।"

भीतर वह बिस्तर पर लेटकर अखबार पढ़ने लगी और बाहर में कई

बार पढ़े मिस्टर ह्यूगो के प्रसिद्ध उपन्यास 'ला मेज़रा' के पन्ने उलटने लगा। उसकी पूरी कहानी मेरी आँखों के सामने नाचने लगी। ''हाँ, तो वह अपराधी था। उसने रोटियाँ चुरायी थीं। अपनी भूखी बच्ची के लिए, अपनी बीमार, तड़पती औरत के लिए। उसने अपराध किया था और उसे दण्ड मिला। समाज ने उसे अपने नियम का उल्लङ्घन करने के लिए दण्ड दिया। लेकिन उसने रोटी नहीं दी। तो क्या इसके लिए वह समाज को दण्डित कर सकता है? ''बस इसके बाद से वह अपराधी था, बहुत बड़ा अपराधी। उसे कहीं भी शरण नहीं मिल सकती थी, न किसी सराय में, न किसी गाँव में, न किसी घर में। सब जगहों के लिए वह बदनाम था।

मन में कुछ ऐसे ही विचार बड़ी तेजी से उठ रहे थे। एकदम मुर्दे की तरह पड़ा मेरा शरीर उस अत्यन्त गति से नाचने वाली फिरहरी के समान था जो देखने में बिल्कुल स्थिर दिखायी देती है।

इसी बीच वह कमरे से अखबार के पृष्ठ लिए बाहर आयी और मेरे सिरहाने रखकर अखबार के शेष पन्ने उठा ले गयी। मै उसे रोक न सका आखिर रोकता तो क्या कहता? मेरे मुँह से बोली तक न निकली लगता था वाणी की सारी शक्ति ही मस्तिष्क ने ले ली है और वह निष्क्रिय हो गयी है।

मुझे लगा, उस अपराधी की भाँति अब सरला के लिए भी कोई पनाह नहीं है। संसार के सभी दरवाजों पर जैसे उसके लिए लिखा है—भीतर मत आओ। किन्तु वह सभी प्रकार निर्दोष है, निरपराध होकर भी किसी ओर बढ़ नहीं सकती थी जैसे शतरंज का मात

हुआ बादशाह; जो बादशाह होकर भी किसी ओर एक कदम नहीं चल सकता।'

विचारों में व्यस्त मेरे मस्तिष्क के सामने उस समय व्यवधान उपस्थित हुआ, जब बूढ़े की खाँसी अत्यन्त निकट सुनायी पड़ी। मैंने घूम कर देखा—छोटी गुड़गुड़ी लिए वह खड़ा था।

उसने कहा—क्या आपने उसके लिए कुछ सोचा ?

"................. ।"

"देखिए मै दुबारा आपसे कह देता हूँ कि कल सुबह होने के पहले ही उसे आप हमारे घर से हटा दीजिये। मै व्यर्थ में फँसना नहीं चाहता।" इस बार उसकी आवाज पहले से अधिक कर्कश थी।

मैं भी उसी स्वर में बोला—'अच्छी बात है आप बेफिक्र रहिए। इसके पहले कि आप किसी मामले में फँसें मैं उसे यहाँ से हटा दूँगा।"

"इसके पहले और इसके बाद क्या ? मै झोलझाल की बात नहीं जानता। आप उसे रात ही रात हटा दीजिए, वर्ना ठीक नही होगा। मेरा घर कोई सराय थोड़े ही है कि जो भी आये, टिक जाय।"

मै उसकी बात सुनकर दाँत पीसकर रह गया। मैं किसी भी शर्त पर बात खतम करना चाहता था। उसके लिए मैंने चुप होना ही ठीक समझा वह अपना छोटा हुक्का गुड़गुड़ा और कुछ मन ही मन भुनभुनाता चला गया।

बूढ़े की यह नग्न क्रूरता मेरी कल्पना से परे थी। मैंने कभी भी उसे इतना नीच, पतित और ओछा नहीं समझा था। कभी इतना खुलकर सामने नहीं आया था। अब तक वह अपने हृदय की कालिमा अपनी

बोली की मिठास और नाटकीय मुस्कराहट में वैसे ही छिपाये रहा जैसे तक्षक नाग अपने रूप के आकर्षण में तीक्ष्ण विष छिपाये रहता है।

तो सुबह के पहले ही उसे कहीं हटाना होगा। कहाँ ले जाऊँ? क्या करूँ? क्या एक बजे वाली गाड़ी से रात ही गाँव चलूँ किन्तु जब लोग वहाँ पूछेंगे तो क्या कहूँगा? जब मैं इस शहरी बूढ़े को समझा न सका, तो उन भोले भाले ग्रामीणों को क्या समझा सकूँगा?......तो फिर कह दूँ कि मेरे यहाँ से चली जाओ धरती की विशाल छाती पर अपना घर खोज लो, किन्तु जब ऐसा ही करना था तो उसे ले क्यों आया, वहीं उसे मर जाने देना चाहिए था।

किन्तु ऐसा नहीं; रात्रि की कालिमा जैसे अपने गर्भ में प्रकाश की सुखद कल्पना लिए रहती है वैसे ही इस निराशा में आशा की सुखद कल्पना रह रह कर जाग उठ पड़ती थी। "नहीं। ऐसा नही हो सकता कुछ न कुछ रास्ता तो निकलेगा ही।"

इस मानसिक संघर्ष के बीच में बूढ़ी की पुकार सुनाई पड़ी। वह मुझे भोजन के लिये बुला रही थी। ओह, अब मुझे याद आया। मैंने मगदल खरीदने की जिम्मेदारी तो अपने ऊपर ली थी, पर मुझे बिल्कुल याद न रहा। अब तो देर बहुत हो चुकी थी और कदाचित मेरे और उस बूढ़ी के अतिरिक्त सब लोग खा चुके। अपनी भूल के लिए क्षमा माँगने के अतिरिक्त मेरे पास अब कोई दूसरा रास्ता न रहा।

भूख बिल्कुल नहीं थी, फिर भी किसी प्रकार का संघर्ष न बढ़े मै चुपचाप बूढ़ी के पास गया और मगदल की व्यवस्था न कर सकने के लिए क्षमा माँगने के बाद पास ही पड़े पीढ़े पर बैठ गया। बूढ़ी गम्भीर

ही रही। लगता है बूढ़े के रुख का उसे पता चल गया था। किन्तु उसका गाम्भीर्य भी हमारे प्रति सहानुभूति ही प्रदर्शित कर रहा था।

भोजन के बाद मैं दालान में घूमने लगा। मस्तिष्क में विचार भी घूम रहे थे। इसी प्रकार घण्टों बीता। मैंने देखा, कमरे में अब भी दीपक का प्रकाश दिखायी दे रहा है। दरवाजा बिल्कुल खुला है। वह जड़वत् चारपायी पर बैठी है। उसके चेहरे पर कुछ धुँधला-धुँधला सा छाया है। अखबार हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पड़ा है। आँखों से आँसू की बूदें गिर-गिरकर चारपायी पर बिछे सफेद चादर पर विलीन हो जाती हैं, मानों दो नीलकमल शान्त क्षीरसागर में मोती चढ़ा रहे हों।

□ □ □

रात की मुस्कराती जवानी चाँदनी के रूप में धरा पर बिखर गयी थी। शान्ति की चादर ओढ़ मुस्कराती धरती पड़ी सो रही थी। मध्य रात्रि थी।

अचानक वह कमरे में पड़ी-पड़ी चीख उठी और लगातार कई बार चीखी। उसकी चीख की तीव्रता का आप इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि प्रगाढ़ निद्रा में पड़ा मैं, जिसे कदाचित् नगाड़े की आवाज भी जगाने में समर्थ न होती, उसकी चीख सुनकर अचानक उठ बैठा।

"क्या बात है? क्या हुआ?" कहते हुए मैंने दरवाजा ढकेला। दरवाजा भीतर से बन्द था। भीतर दीपक जल नहीं रहा था। मेरी

आवाज सुनकर उसकी चीख कुछ मन्द पड़ी। किन्तु स्वर के प्रकम्पन से ऐसा लग रहा था मानों वह काँप रही है।

मैं समझ गया कि उसने कोई भयानक सपना देखा है और वह डर गयी है। अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक मैंने कहा—दीया जलाओ और दरवाजा खोलो।

कुछ समय तक मेरे कहने का कुछ परिणाम न निकला। स्थिति पूर्ववत् बनी रही। मैंने फिर अपनी बात दुहरायी। लगता है तब वह बिस्तर से उठी। इधर-उधर जैसे उसने कुछ खोजा, फिर बड़े धीरे से बोली—"सलाई नहीं मिल रही है।"

"चारपायी के बायें सिरहाने के आले पर देखो।" मैंने कहा।

फिर उसने दीपक जलाया और दरवाजा खोला। मैंने देखा वह तूफान से झकझोरी दीपक की लौ की तरह काँप रही है। इस समय वह पहले से बहुत भिन्न दिखायी पड़ी। चेहरे की हवाई उड़ी है। नेत्र विस्फारित हैं। साड़ी का ऊपरी पल्ला सिर से उतर कर जमीन पर लोट रहा है।

मैं तो देखता ही रह गया। वह भी कुछ बोल न सकी। केवल काँपती और हाँफती ही रही जैसे वह अपनी जबान का काम पूरे शरीर से लेना चाहती हो।

कुछ क्षणों बाद वह दरवाजे से हटी और आकर बिस्तर पर गिरते हुए बैठी। मैं भी पास पड़े आटे के कनस्टर पर से गांधीजी की प्रतिमा हटाकर बैठ गया। उसे देखता रहा।

फिर बोला—"तबीयत कैसी है?"

"जी घबरा रहा है।" उसने बड़ी व्यग्रता से कहा।

"क्यों, क्या बात है?"

वह कुछ न बोली।

मैंने पुनः पूछा—तब उसने उद्विग्न स्वर में कहा—"मैंने एक सपना देखा है, भयानक सपना।......सपने में मुझे लगा मानों मेरी ओर हजारों राक्षस मुँह बाये चले आ रहे है। मैं भागती जा रही हूँ .... भागती जा रही हूँ। भा........." इतना कहने के बाद ही वह फूट-फूटकर जोर से रोने लगी।

घर में जाग हो गयी। बूढ़ा मकान-मालिक भी लड़खड़ाता आ ही गया और सारी क्रूरता अपने स्वर में भरकर बोला—"क्या हंगामा मचा रखा है आप लोगो ने। सोना भी हराम है।"

बूढ़े की बात सुनते ही मैं क्रोध से भर गया, किन्तु कर क्या सकता था? सोचता था बूढ़ा यहाँ जितना कम बोले उतना ही अच्छा है। मैंने अपने को बहुत दबाया और उससे सीमित शब्दो में सज्जनता से कहा—"इसने भयानक सपना देखा है और यह डर गयी है।"

बूढ़ा चुप खड़ा ही रहा।

खड़े होते हुए मैंने उस बालिका से कहा—"सपने तो विचारों के प्रतिबिम्ब होते हैं। जो कुछ तुम्हारे मस्तिष्क में घूमता रहा है वही तुम्हें सोते हुए दिखायी दिया है। व्यर्थ की बातें मत सोचा करो। हिम्मत से काम लो। यही समझो; जिसे सपने इतना डरवाते हों, उसे चलती-फिरती जिन्दगियाँ कितना डरवायेंगी।......दीया जलता ही रहने दो दरवाजा चाहो तो बन्द कर लो। और डर किस बात को, हमलोग तो

हैं ही। जब तक नींद न लगे भगवान का नाम लो और नहीं तो ···"
इतना कहकर मैं पुस्तकों की आलमारी की ओर बढ़ा और बहुत सी किताबों के बीच से खोजकर गीता निकाली तथा उसे देकर बोला ·····
"इसे पढ़ती रहो, नींद आ जायगी।"

बूढ़े की उपस्थिति में मै वहाँ अधिक देर तक रुकना नहीं चाहता था। इसे आप मेरी विवशता समझें या दुर्बलता। इसलिए मैं शीघ्र ही बाहर चला आया। उसने उठकर दरवाजा बन्द किया। बूढ़ा चुपचाप दालान के उस पार अपनी कोठरी की ओर चला और मुझसे कुछ दूर जाकर भुनभुनाया—"तिरिया चरित्रं पुरुषस्य···············"

□ □ □

"पढ़ो बेटू राम राम······सीताराम" बूढ़ी का तोता पढ़ाने की पहली आवाज आँख खुलते ही सुनायी पड़ी। सबेरा अच्छी तरह हो गया था पर कुहरा पड़ने से कुछ धुन्ध सा छाया था।

बूढ़े के जीवन के दो ही पक्के मित्र थे—एक खाँसी और दूसरा इसका हुक्का। किन्तु इस समय न तो उसकी खाँसी ही सुनायी पड़ रही थी और न हुक्का गुड़गुड़ाने की आवाज। दोनों जिगरी दोस्तों का कहीं पता नहीं था। लगता है बूढ़ा अभी तक सोया ही है, रात को जो जाग पड़ा था।

बिस्तर पर पड़े ही पड़े मेरी निगाह अपने कमरे के दरवाजे की

ओर गयी। दरवाजा खुला था। सोचा वह जाग उठी है, कुछ समय तक करवटें बदलता और अगड़ाई लेता रहा।

अपना बिस्तर लपेट जब मैं भीतर आया तब कमरे में मुझे वह न दिखायी पड़ी। कुछ खटका। विचित्र बात है; मेरा उसका कोई रिश्ता नहीं, कोई बहुत गहरी जान पहिचान नहीं, केवल दो दिनों का ही परिचय है किन्तु फिर भी उसके एक क्षण का अभाव मुझे इतना खटकने क्यों लगा। इसका कारण क्या? पूर्वजन्म का कोई सम्बन्ध या नारी के प्रति पुरुष का सहज आकर्षण?

पहले तो सोचा शायद वह बूढ़ी के यहाँ न गयी हो, पर तकिया हटाई तो नीचे एक मोड़े हुए कागज पर उसके कान का एक टप दिखाई दिया। कुतूहल बढ़ा। उठकर कागज पढ़ने लगा उसमें लिखा था –

"बड़े भाई साहब,

सादर प्रणाम,

आज रात मे जागने के बाद नींद नहीं आयी। घन्टों सोच में पड़ी रही और एक अनिश्चित निष्कर्ष पर पहुँची हूँ। आगे बिल्कुल अन्धेरा दिखायी देता है। अत्यन्त दुःख और चिन्ता से उद्विग्न होकर मैं यह पत्र लिख रही हूँ।

कल रात आपकी बूढ़े से जो बातचीत हुई मैं उसे सुन रही थी। मेरा यहाँ रहना उसे पसन्द नहीं है। इसमें उस बेचारे का क्या दोष? दोष तो सब मेरे भाग्य का ही है।

अब तो मैं अपराधिनी हूँ। कानून की निगाह में अपराधी को छिपाना भी अपराध है। ऐसा अपराध मैं आप लोगों के सिर मढ़ना

नहीं चाहती। आप मुझे यहाँ से हट जाने के लिए कहें, इसके पहले मैं स्वयं ही चली जा रही हूँ। पर दुख है, जाने के पहिले मैं आप से विदा न ले सकी। आपने मेरे साथ जो उपकार किया है उसे मैं जीवन भर न भूल सकूँगी। मनुष्य के शरीर में आप देवता हैं लेकिन आप कर ही क्या सकते हैं? जितनी ठोकरें मेरे भाग्य में बदा होंगी, उतनी तो खानी ही हैं।

भगवान् का नाम लेकर मैं अब जा रही हूँ। आशा है आप इस अभागिन को कभी न भूलेंगे।

आपकी ही

सरला

पुनश्च—हाँ एक बात और! जैसा आप जानते हैं, इस समय मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। इसलिए मैं आपके मनीबेग से बीस रूपये ले ले रही हूँ। इसके लिए मैं अपने एक कान का टप यहाँ रख देती हूँ। आशा है आप इसे अन्यथा न समझेंगे।"

मैं यह पत्र एक साँस में ही पढ़ गया और एक बार नहीं विस्तर पर लेटे लेटे कई बार पढ़ा, फिर उस टप को गौर से देखता रहा। घन्टों मैं ऐसी स्थिति में था जिसका वर्णन शब्दों से कर नहीं सकता। मेरी मनः स्थिति ठीक नहीं थी।

आकाश में सूरज कुहरे से निकल आया था, पर मेरे मस्तिष्क में कुहरा जैसे घना होता जाता था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। एक हाथ में कान का टप और दूसरे हाथ में वह पत्र लिए मैं चारपायी पर जड़वत् पड़ा था। कुछ समय के बाद बूढ़ा खाँसता हुआ आया। देखते ही मैं जल उठा चेहरा सिन्दूर हो गया।

उसने आकर पहले कमरे में झाँका, फिर धीरे से भीतर आया। मुझे विचित्र मुद्रा में लेटा देखकर वह कुछ न बोला। अब यदि वह अण्ड-बण्ड बोलता तो शायद मैं उसे कच्चा ही चबा जाता, पर ऐसी स्थिति आने न पायी।

मैंने चुपचाप वह चिट्ठी मोड़कर उसके सामने फेंक दी और बड़ी टेढ़ी आवाज में बोला—"लीजिए आपकी आज्ञा का पालन हो गया। अब अपना कलेजा ठण्ढा कीजिए।"

इस समय वह बिल्कुल शान्त था। बड़ा सज्जन दिखायी दे रहा था। उसने पत्र उठाकर पढ़ा। फिर उसे रखकर चुपचाप कमरे के बाहर चला आया। उसने सोचा, इस समय कुछ बोलना ठीक नहीं, और अब वह तो चली ही गयी है।

मेरे पिंजड़े का तोता तो उड़ गया था, पर बूढ़ी अब भी तोता पढ़ा रही थी।

—तीन

हिन्दी में अधिक बिकने वाला यह अपने ढङ्ग का अकेला अखबार है। प्रति दिन इसके तीन संस्करण निकलते हैं—प्रातः, सायं और डाक संस्करण। प्रातः संस्करण निकलने में अभी देर है। चार बजने में कुछ मिनट बाकी हैं।

कम्पोजिंग विभाग का काम करीब करीब खतम हो चुका है। केवल दो आदमी अखबार के दूसरे फरमे के मेकअप-प्रूफ का करेक्शन कर रहे हैं। बाकी सब घर जा चुके हैं। मशीन की गड़गड़ाहट सड़क पर से ही सुनायी पड़ रही है। दैत्य की गति से काम करने वाली मशीन दैत्यों सी चिंघाड़ती भी है।

जब वह सम्पादकीय विभाग में पहुँची, तब वहाँ केवल दो ही व्यक्ति थे। यों तो यह विभाग बहुत बड़ा है। आठ बड़े बड़े टेबुल हैं और बीस के करीब कुर्सियाँ, किन्तु सभी खाली पड़ी थीं। केवल एक टेबुल पर

दो व्यक्ति बैठे थे। ये अखबार के अन्तिम फरमें का पहला मेकअप-प्रूफ पढ़ रहे थे। दोनों दत्तचित्त अपने अपने काम में लगे थे क्योंकि प्रूफ पढ़ने का काम बालों से जूँ निकालने के काम से कम पित्तमारी का काम नहीं होता। एक में बालों की छपाई होती तो दूसरे में छापे की। अन्तर केवल इतना ही है कि एक को निरक्षर भट्टाचार्य भी कर सकता है और दूसरे को करने के लिए पढ़ा लिखा होना जरूरी है।

सरला अपने जीवन में पहली बार किसी अखबार के दफ्तर में आयी थी। इस वक्त बिल्कुल शान्त दिखायी दे रही थी। उसकी व्यग्रता कदाचित हृदय में ही थी पर चेहरे से कुछ मालूम न पड़ रहा था।

सम्पादकीय विभाग का यह कमरा बहुत बड़ा और हवादार है, पर केवल दो ही खिड़कियाँ खुली है। जिनसे सनसनाती तीर सी ठण्ढी हवा का झोंका आ रहा है। यहाँ उसने जो कुछ देखा वह उसकी कल्पना से बिल्कुल भिन्न था। उसने सोचा था सम्पादक बहुत प्रभावशाली आदमी होता है। वह बड़े से बड़े पूँजीपति, बड़े से बड़े राजनीतिक, बड़े से बड़े विचारक सबकी मरम्मत करता है—जरूर वह बड़ा आदमी होगा। जहाँ वह रहता होगा वह किसी पूँजीपति के ड्राइङ्गरूम से कम न होगा। पर यहाँ उसे कुछ दूसरा ही दिखायी दिया। जमीन पर जली सिगरेट और बीड़ियाँ पड़ी थीं। कुछ टेबुलों पर कागज सरिया कर रखा था। कुछ पर बिखरा था जैसे किसी फूहड़ की गृहस्थी। कुछ टेबुलों के नीचे रद्दी कागज की टोकरी खाली पेट केवल रद्दी टोकरी के रूप में पड़ी थी और फर्श पर कागज के टुकड़े बिखरे पड़े थे, जो कभी कभी हवा के झोंकों के साथ इधर-उधर आवारा की तरह निरुद्देश्य घूमते थे। सामने

दीवार पर चार बड़े बड़े चित्र टँगे थे। जिनमें तीन, गांधी, जवाहर और राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के थे। चौथा चित्र अखबार के संस्थापक का था जिसे बिना परिचय के पहचाना नहीं जा सकता था।

कमरे के उत्तरी ओर खिट-खिट की आवाज करता और कागज उगलता टेलीप्रिन्टर यहाँ की शान्ति को धीरे-धीरे जैसे कुतर रहा था। उससे कुछ दूरी पर एक बड़ा रेडियो सेट था और इसी के बगल में वह टेबुल जिस पर वे दोनों सम्पादक काम कर रहे थे। दोनों सिगरेट पी रहे थे और बीच-बीच में बगल में पड़ी खाली चाय की जूठी प्याली में सिगरेट का गुल गिराते जाते थे। आँखें प्रत्येक अक्षर के पीछे पडी थीं।

वह सहमती हुई किसी प्रकार टेबुल के निकट पहुँची। कुछ ऐसी आहट लगी कि दोनों की आँखें साथ ही उसकी ओर घूमीं। इस समय इस तरुणी को अप्रत्याशित दफ्तर में देखकर उनके कुतूहल का ठिकाना न रहा। दिल्ली की कुतुबमीनार यदि नाचने लगती फिर भी उन्हें इतना आश्चर्य न होता। उनमें से एक ने अपना सम्पूर्ण विस्मय अपने स्वर में भरकर पूछा—"कहिए क्या बात है ?"

वह कुछ बोल न सकी। अपनी महीन साड़ी में सिकुड़ती हुई उसने एक कागज उनकी ओर बढ़ा दिया। दोनों की निगाहें उसकी ओर से हटकर कागज पर लगीं। उनमें से एक बड़े अदब से बोला—"कृपया बैठ जाइये।"

पहले वह सकपकायी, फिर कुछ हिम्मत कर पास से एक कुर्सी खींच टेलीफोन के स्टूल के बगल में बैठ गयी। दोनों बड़े ध्यान से वह कागज पढ़ते रहे। इस बीच इनमें से न तो किसी की निगाह हटी और न किसी

ने सिगरेट की एक भी कश ली। जिज्ञासा कुछ समय के लिए उन्हें एकाग्र बना चुकी थी।

एक साँस में पढ़ लेने के बाद उसे गौर से देखते हुए उनमें से एक ने पूछा—"तो क्या आपके ही सम्बन्ध में कल अनाथालय वाली खबर छपी थी।"

उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया—'जी हाँ'।

उसने सिगरेट की एक तेज कश ली और फिर कुतूहलपूर्ण स्वर में कहा—"बड़ा आश्चर्य है?......यों तो अनाथालय के प्रति शिकायतें थीं, पर ऐसे रहस्य का कभी भण्डाफोड़ नहीं हुआ था। और मज़ा तो यह कि आपके कथन के अनुसार पुलिस भी ऐसे कुकृत्यों में शामिल रहती है।"

"अरे जनाब यदि पुलिस का योग न हो, तो ऐसा दुष्काण्ड ही न हो।" —दूसरा बोला।

पुनः पहले ने पूछा—"क्या आप बनारस अपने जीवन में पहली बार आई हैं?"

"जी हाँ!"

"तो इन अनाथालयवालों के चक्कर में आप आते ही कैसे फँसीं?"

किन्तु पूरी कहानी सुनाने के पहले उसने अपनी मनस्थिति पर अच्छी तरह नियन्त्रण किया और अत्यन्त शान्त भाव से बोलना आरम्भ किया "चक्कर में नहीं—जाल में फँसी।"

"तो क्या बहुत बड़ा इनका जाल है?" उसने पूछा।

"जी हाँ, स्टेशन से ही इनका जाल बिछा रहता है।" अत्यन्त संभल कर उसने कहना जारी रखा—"ट्रेन से उतर कर अपना सामान स्वयं उठाकर जब मै स्टेशन के बाहर आई तब हमारे पीछे लगे दो व्यक्ति साथ ही बाहर निकले। उनके साथ एक पुलिस भी थी। दोनों खद्दर का कुरता, धोती और टोपी पहने थे। बाहर आकर मैंने रिक्शे वाले से किसी अच्छे धर्मशाला में चलने को कहा। तब उनमें से एक बड़े प्रेम से बोला—"किस धर्मशाला में जाना चाहती हो बहन?"

"जो भी यहाँ पास में हो और जहाँ रहने को सुविधा हो।" मैंने कहा।

फिर उन दोनों आदमियों ने आपस में संकेत से कुछ बातें की, पर इससे अपने से क्या मतलब, (इतना कहते हुए उसे जोर की खाँसी आयी; वह कुछ क्षण के लिए चुप रही। पुनः बोलना आरम्भ किया... 'मैं सामान रखकर रिक्शे में बैठ गयी।" फिर उसी आदमी ने कहा—"लगता है आप इस शहर के लिए नई हैं।" इतना कहकर वह अपनी बात के समर्थन पाने के लिये चुप हुआ, पर मैं कुछ न बोली। उसने बोलना जारी रखा—"समझ बूझ कर ही किसी धर्मशाले में जाइयेगा।"

दूसरा बोला—"हाँ भाई, यह बनारस है। यहाँ पुण्य और पाप दोनों ही अधिक होते हैं।"

पास खड़े पुलिस के आदमी ने कहा—"मेरे ख्याल से तो यहाँ आप के लिए एक ही धर्मशाला उपयुक्त होगी, पर वह यहाँ से कुछ दूरी पर पड़ेगी।"

तब मैंने पूछा—"कहाँ है वह ?"

उसने स्थान और मुहल्ले का नाम तो नहीं बताया, केवल दूसरे व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए केवल इतना ही कहा—"ये सज्जन भी उधर ही जा रहे हैं। आपको वहाँ तक पहुँचा देगें।"

दोनों सम्पादकों में से पतला दुबला साँवला व्यक्ति जो बड़े ध्यान से सरला की बात सुन रहा था, बीच में ही जिज्ञासा व्यक्त करते हुए बोला--"क्या वह भी आपके ही रिक्शे पर आया ?"

"जी नहीं। पहले तो उसने मेरे ही रिक्शे पर बैठना चाहा पर जब मेरी इच्छा नहीं देखी, तब दूसरे रिक्शे पर बैठा। आगे उसका रिक्शा चला और पीछे मेरा।"

"फिर दूसरा आदमी और वह पुलिस वाला कहाँ गया ?" अपनी ऊनी कोट की फटी जेब से दूसरी सिगरेट निकालते हुए सम्पादक ने पूछा।

"उसके सम्बन्ध में तो मैंने गौर नहीं किया।"

"तो इसके बाद क्या हुआ ?"

"करीब बीस मिनट चलने के बाद रिक्शा एक पुराने ढंग की बिल्डिग के पास पहुँचकर रुक गया। मैंने ऊपर देखा, लिखा था... अनाथालय काशी।"

बातचीत चल ही रही थी कि बीच में चपरासी दालभात में मूसल चन्द की तरह पहुँचा, बोला—"बाबू प्रूफ तैयार है ?"

"हाँ, यह लेते जाओ। बाकी अभी देता हूँ।" उसे कुछ कागज देते हुये उसने कहा। तब तक दीवार पर लटकी घड़ी ने साढ़े चार बजने की सूचना दी। निगाह घड़ी पर जानी स्वाभाविक थी। उनमें एक थोड़ी

व्यग्रता प्रदर्शित करते हुए बोला—"लगता है आज अखबार लेट हो जायगा। आखिरी फरमा मशीन पर कसते कसते साढ़े पाँच बजेगा।"

"तो कब पैकेट बनेंगे और कब स्टेशन भेजा जायगा?"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि आज गाड़ी मिल न सकेगी।"

"तब तो बड़ा मुश्किल होगा ..।" इसके बाद दोनों अपने काम मे पहले जैसे लग गये।

"आप मुझे क्षमा करें, मैंने आपका बड़ा अमूल्य समय नष्ट किया।" सरला बोली।

"नहीं, नहीं कोई बात नहीं।" अत्यन्त शिष्टता व्यक्त करते हुए उसने कहा और फिर मुस्कराया, बोला—"आपने नहीं, बल्कि हमीं लोगों ने दो घन्टा सोकर समय नष्ट किया। यदि आज नींद न आती तो शायद यह नौबत न आती। आप घबरायें नहीं। यहीं रहिये, हम आध घन्टे में ही खाली हो जायेंगे। फिर उसने निकट दीवार पर लगी स्वीच दबाया। बाहर घन्टी बजी। वही नेपाली चपरासी फिर भीतर आया।

"आप चाय तो पी सकती हैं?" उसने सरला से पूछा।

नारी सुलभ लज्जा के कारण सरला कुछ बोल न सकी।

फिर उसने चपरासी से कहा—"देखो, बिरजू की दूकान यदि खुल गयी हो तो मेरे नाम से तीन कप चाय लेते आओ।"

"लेकिन बाबू, बिरजू चाय नही देगा।" चपरासी छूटते ही बोला।

"क्यों?"

"वह कहता है कि इधर दो महीने से एक पैसा भी नहीं मिला है।

अब मेरे यहाँ चाय लेने मत आना। कल शाम को ही वह चाय दे नही रहा था। बहुत कुछ कहने सुनने पर किसी प्रकार दिया।"—चपरासी ने कहा।

अपनी झेंप मिटाने के लिए सम्पादक का स्वर बदला, वह बड़े नाटकीय ढङ्ग से बोला—"बड़ा बेवकूफ आदमी है। यदि पैसे अधिक हो गये थे तो उसे माँगना चाहिए था। किसी को इतना याद थोड़े ही रहता है कि कितनी प्याली चाय पी गयी और किसे कितना देना है। अच्छा, आप जाइए और कहिए कि पूरा हिसाब आज कृपाकर दे दें। दो दिनों के भीतर ही उसका सब चुकता हो जायगा।"

"अच्छा साहब।" चपरासी चला गया।

सम्पादक भुनभुनाया कि ये चाय वाले भी खूब हैं। फिर अखबार का मेकअप देखने लगा।

सरला चुपचाप बैठी सामने कैलेण्डर मे छपा दृश्य देख रही थी। अब वह प्रशान्त महासागर की भाँति हृदय में बड़वानल छिपाये हुए भी शान्त थी।

अचानक शान्ति भङ्ग करते हुए अपने काम में व्यस्त रहने पर भी उसकी दाहिनी ओर बैठे सम्पादक ने पूछा—"आखिर किस भावना से प्रेरित हो आप इस समय आफिस में चली आयीं?"

इस प्रश्न के लिए तो वह पहले से ही तैयार थी। उसने कहा—"आपके अखबार में प्रकाशित समाचार ने आज की रात को मेरे जीवन की सबसे भयानक रात बना दी जिसमें मैने अनुभव किया कि अब मेरे जीवन का एक क्षण भी समाज में रक्षित नहीं है। यदि किसी को

मालूम हो जाय कि अब उसकी मौत होने वाली है, तो उसमें जैसी व्याकुलता होगी वैसी ही व्याकुलता से प्रेरित होकर मै यहाँ तक चली आयी हूँ।"

"हूँ, तो मेरे अखबार ने आपके जीवन को अरक्षित कर दिया।" वह मुस्कराया, सरला कहना चाहती थी कि नहीं मेरे भाग्य ने ही सब कुछ किया है लेकिन वह कुछ कह न पायी। वह शीघ्र ही बोला—"अच्छा अब आप अपने को सुरक्षित समझती हैं कि नहीं।"

उसने छोटा सा उत्तर दिया - "जरूर।"

"चलिए तो काम बन गया। मेरे अखबार ने आपके जीवन को अरक्षित किया और अखबार के आफिस ने सुरक्षित" वह जोर से हँसा। उसके सहयोगी की भी हँसी उसमें सम्मिलित हो गयी। सरला के सूखे अधर भी हरे हो गये।

चपरासी जाली के स्टैण्ड में जब चाय के तीन गिलास लेकर आया तब वह घबराया हुआ था। आते ही उसने कहा—"बाबू बाबू, छोटे सरकार अभी अभी मोटर पर आये है। दरवान गाड़ी का दरवाजा खोल रहा था।" इतना कह कर उसने सबके सामने गिलासें रखीं और फिर जल्दी से बाहर चला गया।

'छोटे सरकार!' नाम सुनते ही दोनों घबरा उठे। "क्या बात है जो इस समय आये? देखें अब क्या होता है। अखबार भी लेट हो गया है।" इसके बाद वे कुछ बोल न सके। अब उन्हें सरला की उपस्थिति भी खटक रही थी। "पता नहीं इसे देखकर वे क्या समझें।" वे सोच रहे थे।

सरला भी उनकी घबराहट से किसी आपत्ति की कल्पना करने लगी। 'छोटे सरकार! यह क्या है? कोई पुलिस का बड़ा आफिसर तो नहीं।' उसने अपने अनुभव के अनुसार अनुमान लगाया।

□ □ □

यों तो यह अखबार निकालने वाले प्राइवेट लिमिटेड संस्थान के सर्वेसर्वा का नाम रमेशचन्द्र गुप्त है, किन्तु लोग उन्हें छोटे सरकार कहते हैं। इनके पिता बड़े सरकार खानदानी रईस थे। उन्होने समाज में अपने दानी स्वभाव और मिलनसार व्यक्तित्व के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त की थी, पर पुत्र ठीक उनसे उलटा निकला। उनके घर के दो एक व्यक्तियों को छोड़कर इस विशाल संसार में कदाचित् ही कोई ऐसा हो, जो उनकी प्रशसा करता हो। कंजूसी, बेईमानी, धूर्तता, जाल-साजी गोया कि जितने भी गुण आज के रईसों के लिए जरूरी हैं, वह सब उनमें थे। ऐसे प्रत्येक गुण के साथ ही साथ छोटे सरकार का एक सांकेतिक नाम भी प्रचलित हो गया था। व्यवसायी इन्हें जालिया, कर्मचारी बेईमानमल और मजदूर हड़प्पू सरकार कहते थे। जैसे आज के युग में नकली चीजों की चलन असली से अधिक होती है वैसे ही आपसी बातचीत के समय इन सांकेतिक नामो का चलन भी असली नाम से बहुत अधिक रहता था।

अखबार का काम ये स्वयं देखते थे। मशीनमैन के काम से लेकर सम्पादन, व्यवस्थापन और प्रकाशन सभी कामों में छोटे सरकार दखल

रखते थे। अपने को आलराउण्ड चैम्पियन समझते थे। किसी की हिम्मत नहीं जो इनकी बातों का विरोध करे और झगड़ा मोल ले।

जरा जरा सी बात में छोटे सरकार का बिगड़ जाना साधारण सी बात है। जब किसी पर एक बार भी क्रोध आ जाता है तो उसके दस पुस्त की खबर वे बड़ी आसानी से ले लेते हैं। उसको ही नहीं उसके पूर्वजों को भी वे सूअर, गधा और उल्लू बना डालते हैं। इसी से उनका पूरे प्रेस में विचित्र आतंक छाया रहता है। जो कुछ वह कहते हैं, सब उनका आँख मूँदकर समर्थन करते है।

पर सम्पादकीय विभाग पर उनका रोब कुछ कम चलता है। इन पढ़े लिखे लोगों से बात करते समय उनकी शब्दावली में पशुओं के नाम भी अपेक्षाकृत कम आते हैं। फिर भी इस विभाग पर हावी होने की इनकी चेष्टा में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। आये दिन किसी न किसी सम्पादक से झड़प हो ही जाती है।

इस समय भी उन्होंने न आव देखा और न ताव प्रेस में आते ही जैसे बरस पड़े। पहले मशीन विभाग में गये और चिल्लाने लगे—"तुम लोग क्या करते रहते हो, अभी तक अखबार नहीं निकला—अब ३३० अप से कैसे भेजा जा सकेगा। तुम लोगों की लापरवाही से तो जान आजिज आ गयी है। इधर हर महीने घाटा होता चला जा रहा है और तुम सबका रवैया यह है। तुम तो डूबोगे ही, हमें भी क्यों डुबोते हो।" चिल्लाने तथा इधर उधर कवायत करने के बाद वह लोहे की चमकदार सीढ़ी से ऊपर सम्पादकीय विभाग की ओर बढ़े। तीन मन के भारी शरीर से लोहे की सीढ़ियाँ भी जैसे दहल उठीं।

सम्पादकीय विभाग में पैर रखते ही दोनों सम्पादक उठकर खड़े हो गये। सरला भी खड़ी हुई। उसे देखते ही वह चकराया। उसका माथा ठनका। रात की ड्यूटी में यहाँ औरत! क्या रहस्य है? आज कई वर्ष पर मै इस समय यहाँ आया हूँ। क्या रोज रात यहाँ कोई न कोई औरत आती है?

वह बिना किसी हिचक के सरला से बोला—"कहिये आप यहाँ कैसे?"

सरला कुछ उत्तर दे इसके पहिले ही सम्पादक जी ने उसका लिखा कागज दिखाकर कहा—"कल जो समाचार अनाथालय के सम्बन्ध में छपा था आप उसका यह स्पष्टीकरण लेकर आयी हैं।"

"तो क्या आप अनाथालय की सेविका हैं?" उसने पूछा।

"जी नहीं, आप ही के सम्बन्ध में अनाथालय से भागने का अपराध लगाया गया है।" सम्पादक का स्वर जितना क्षिप्र था उतना ही व्यग्र भी।

यही अवारा लड़की है! अखबार के मालिक को जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। वह उसे कुछ क्षणों तक बड़े गौर से देखता रहा। वह जमीन में जैसे गड़ी जा रही थी, वह जितनी सलज्ज, जितनी शिष्ट और जितनी भोली दिखायी पड़ी उससे उसे अवारा होने का जरा भी भान नहीं हुआ। पतले आइवरी कागज में लिपटी वह गुलाब की उस कली के समान जान पड़ी, जो मुस्कराते ही किसी आँधी का झोंका पाकर डाली से चू पड़ी हो।

फिर वह उस कागज को बड़े ध्यान से पढ़ता और उसे देखता रहा।

पर वह कागज पर लिखे चित्र सी खड़ी थी। उसकी निगाह टेबुल पर रखे चाय के गिलास से निकलती भाप में उलझ रही थी। फिर छोटे सरकार ने कुछ सोचते समझते हुये सरला की ओर देखकर कहा—'यह तो बड़ा विचित्र और पेचीदा मामला मालूम होता है।...पर इतने से ही कोई बात स्पष्ट नहीं होती। आप मेरे आफिस में चलें मैं कुछ और जानना चाहता हूँ।

सम्पादक ने घन्टी बजनेवाली स्वीच दबायी। चपरासी आया और उसे छोटे सरकार के कमरे में लिवा ले गया।

उसके जाते ही छोटे सरकार की आवाज में तेजी आयी और वह कड़कते हुये बोले— "अभी तक अखबार नहीं निकला, आखिर रात भर आप लोग क्या करते हैं?"

वे क्या कहें कि क्या करते रहे। बेचारे चुप थे।

पर छोटे सरकार दहाड़ते ही रहे—"देखिये मैं काम चाहता हूँ काम! आपकी खूबसूरत शकल देखने के लिए आपको यहाँ नहीं रखा गया है।"

पढ़ा लिखा आदमी कभी इतना अपमान चुपचाप नहीं सह सकता। उसने नौकरी अवश्य की है, पर अपने को बेचा नहीं है; अपनी आत्मा को बेचा नहीं है। उसके जीवन का उद्देश्य केवल पैसा कमाना ही नहीं है कुछ और भी है। उनका आन्तरिक विरोध मुखरित हुआ—"रात का काम केवल दो आदमी के बूते का नहीं है। मैंने कई बार कहा कि आदमी बढ़ाइए, पर हमी से काम निकाला जाता है। हम जानवर तो हैं नहीं जो लगातार पिसते रहेंगे।"

यदि आप नहीं पिस सकते तो कोई और ठिकाना ढूँढ़िए। हम तो आप ऐसे आदमी को न रखकर, जानवर ही रखना ठीक समझते हैं।"

इसके बाद वे कुछ न बोले। पेट कितनी बड़ी लाचारी है यह उनका मौन बता रहा था।

छोटे सरकार ने पुनः अपनी मुद्रा बदलते हुए पूछा—"क्या सुखाड़िया जी के गिरफ्तार होने की खबर छप चुकी है?"

"जी नहीं, इस फरमे में जा रही है।"

"तो फरमा तोड़कर पूरी खबर निकाल दीजिए।"

कुछ क्षणों तक सोचने के बाद उसने कहा—"किन्तु यह जनता के रुचि का समाचार है। यह पहला पूँजीपति है जो ब्लैक मारकेटिंग में पकड़ा गया है। और अखबार तो इसे टाइटिल पृष्ठ पर ही फ्लैस करेंगे पर हम लोगों ने तो इसे भीतर के पन्ने में कोने में छापा है।"

"इसका क्या मतलब? क्या अखबार के भीतर का पन्ना नहीं पढ़ा जाता?"

"नहीं, पढ़ा क्यों नहीं जाता। किन्तु ऐसा महत्वपूर्ण समाचार कहीं न कहीं छपना ही चाहिये। जनता की रुचि का ख्याल रखना सफल पत्रकारिता के लिए आवश्यक है।" सम्पादक ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से कहा। उसे अपनी कला का गला घोटना स्वीकार नहीं था।

किन्तु छोटे सरकार कभी अपनी आज्ञा का उल्लङ्घन सह नहीं सकते थे। वह भी ऐसे समय जब बम्बई से उनके पास सीधे फोन आया था कि सुखाड़िया जी की गिरफ्तारी का समाचार जहाँ तक हो दबाया जाय। हिन्दुस्तान के किसी भी समाचार पत्र में यह खबर न छपनी चाहिए।

फोन पर उसे यह भी मालूम हो गया था कि इस अवसर पर डालमिया और बिरला के सभी अखबार सुखाड़िया जी की प्रशंसा में विशेष लेख प्रकाशित करेंगे।

आज की रात भारत के चोटी के व्यवसायियों और पूँजीपतियों के लिए जागरण की रात थी। कल शाम को ही देश के उद्योगपतियो और बड़े व्यवसायियों की एक बैठक बम्बई में सुखाड़ियाजी के निवासस्थान पर हुई थी, जिसमें विचार हुआ था कि हम सबको एक होकर सरकार के इस रवैये का परोक्षरूप में विरोध करना चाहिए। हम प्रत्यक्ष तो सामने आ नहीं सकते पर परोक्ष में ही बतला सकते हैं कि हम मे कितनी शक्ति है। इसके लिए सबसे पहले रातोरात देशभर के सभी प्रमुख पत्रों के मालिकों के पास यह समाचार न छापने के लिए फोन किया जाय। छोटे अखबार तो बड़े अखबारों की कटिंग छापते हैं। उनको टेलीप्रिन्टर रखने की कहाँ हिम्मत। इस प्रकार देश का एक व्यक्ति भी यह समाचार न जान सकेगा। निःसन्देह उनका यह निश्चय अचूक था।

आठ बजे सबेरे तक अजगर की तरह विस्तर पर पड़े रहने वाले छोटे सरकार भी आज तीन बजे से ही जाग रहे हैं। दौड़े हुए अपने जीवन में पहली बार इतने सबेरे कार्यालय में आये हैं। फिर भला ये सम्पादक के ज्ञान की बातें कैसे सुन सकते थे। वे कड़कते हुए बोले—

"तुम्हारी पत्रकारिता रहे या भाड़ में जाय, किन्तु मैं जो कह रहा हूँ, अभी कीजिए। तोड़िए फरमा और निकालिए वह खबर।"

"तो फिर सात बजे के पहले अखबार न निकलेगा। बाहर भेजने के लिए कोई भी गाड़ी नहीं मिलेगी।"

"न मिलेगी, नही सही। जो कुछ शहर में बिकेगा—बिकेगा। बाकी सब जला दिया जायगा।" इतना कहकर वह उठा और जल्दी ही अपने आफिस की ओर चला।

मन मसोसकर वे सम्पादक रह गये। उनका मन कह रहा था—"तुम्हारा काम जनता की आवाज बुलन्द करना है, उस आवाज का गला घोंटना नहीं।" पर बुद्धि कह रही थी, पहले अपने गले को सही सलामत रखो।

इसके बाद उन्होंने मौन होकर गिलास में पड़ी ठण्ढी चाय की घूँटें गले से नीचे उतारी।

□ □ □

वह उस आलीशान कमरे के कोने की कोच पर बैठी थी। यह कमरा उसे अपनी कल्पना के सम्पादक के कमरा जैसा था। फर्श पर कालीन बिछी थी उत्तरी ओर एक किनारे पर आधुनिक ढङ्ग के टेबुल पर रेडियो सेट था, दूसरे कोने में रखा हीटर कमरे को गरम कर रहा था। बेलजियम के बहुमूल्य शीशे से ढके टेबुल पर दो दो टेलीफोन थे और टेबुल के पास गद्दीदार रिवाल्विंग (घूमने वाली) चेयर थी। इनके अतिरिक्त तीन अच्छी कोचें।

छोटे सरकार उससे बड़े प्रेम से मिले और बड़ी सहानुभूतिपूर्वक अपनी सहृदयता प्रकट की। बड़ी नम्रता से बातें पूछीं। सब कुछ जान लेने के बाद अन्त में मुस्कराते हुए बोले—"आप भी बड़ी भोली मालूम

होती है। आपने जब देखा कि बाहर फाटक पर अनाथालय लिखा है तब भी आप भीतर चली गयी।"

"जी ऐसी बात नहीं। दरवाजे पर आते ही मुझे यह बात खटकी थी। मैंने उस नीच से पूछा। उसने कहा—"बाहर अनाथालय का साइन बोर्ड है, पर भीतर धर्मशाला है।"

"अरे वाह, बाहर अनाथालय और भीतर धर्मशाला। यह भी खूब रहा।" वह जोर से हँसा, फिर बोला—"कभी कभी ऐसा भी होता है जिस पर हमें हँसी भी आती है और रुलाई भी। आपको देखकर मेरी कुछ ऐसी ही स्थिति है। आशा है मेरी इस बेवकूफी के लिए आप क्षमा करेंगी।"

वह मारे लज्जा के जैसे गड़ गयी। चुप ही रही।

इसके बाद उसने घन्टी बजाई और चपरासी को बुलाकर दो कप चाय और टोस्ट लाने को कहा।

"जी, मेरे लिए यदि चाय न मगाये तो बड़ी कृपा हो।" सरला ने विनीत स्वर मे कहा।

"क्यों? मेरे सम्पादकों की चाय से मेरे चाय में मिठास कम होगी क्या?" वह मुस्कराते हुए बोला। इस बार उसके स्वर में नम्रता से अधिक वासना थी। कहने का ढङ्ग भी कुछ अशिष्ट था।

सरला को यह बात अच्छी न लगी। हर बुरी बात का विरोध करने की उसके जबान में शक्ति नहीं थी, पर मन विरोध कर ही बैठता था। इसी से चुप रहकर भी उसने इसका विरोध किया। उसकी आँखों के भाव को देखकर वह ताड़ गया। अपना स्वर बदलते हुए बड़ी गम्भीरता से

बोला—"क्या कहा जाय ? यह अनाथालय वाले भी बिल्कुल पशु होते हैं, पशु ।... लेकिन इनकी दवा मैं अच्छी तरह जानता हूँ । आप घबरायें नहीं, मैं इन्हें अच्छी तरह ठीक करूँगा । केवल डी० एम० के यहाँ जरा सा फोन भर करने की देर है ।" दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देखकर वह बोलता रहा—"अभी तो कदाचित् डी० एम० साहब सो कर उठे भी न होगे ।...अच्छा तो आप यह तो बताइये कि आपने मेरा आफिस कैसे देखा जब आप शहर का एक धर्मशाला भी नहीं जानती थीं ।"

"ईश्वर की कृपा से स्टेशन से अनाथालय आते समय मेरी निगाह इस बिल्डिंग पर लगे साइनबोर्ड पर पड़ गयी थी ।"

"अच्छा तो आप ईश्वर मे भी विश्वास करती हैं । लेकिन ऐसा प्रायः देखा जाता है कि अधिक सताये लोग ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते ?"

"यह उनका दृष्टि-भ्रम है । वे भाग्य और ईश्वर को एक ही समझते है और अपने भाग्य को दोषी न ठहराकर ईश्वर को दोष देते हैं ।" वह सोचते हुए बोली ।

"आप ठीक कहती हैं ! कम्युनिस्ट भी ऐसी ही भूल करते है । भाग्य में तो गरीबी है, लेकिन परमात्मा की परवाह न कर वे पूँजीपतियों को खाने दौड़ते है ।" उसने अपने ढंग से सरला की बात का समर्थन किया ।

"पर कम्युनिस्ट न तो भाग्य को मानते हैं और न परमात्मा को इसलिए उनके यहाँ ऐसी गलती करने की नौबत ही नहीं आती । वे तो

अपनी दयनीय स्थिति के लिए समाज को कोसता है और विशेषकर पूँजीवाद को जिसे वे आधुनिक समाज का भयंकर दोष समझता है।"

सरला की बुद्धि और वाक्पटुता का वह कायल हुआ और कुछ विस्मय व्यक्त करते हुए बोला—"आप तो अधिक पढ़ी लिखी मालूम होती हैं। आपकी शिक्षा कहाँ तक हुई है।"

अपनी प्रशंसा सुन कर कौन नहीं प्रसन्न होता और वह भी एक औरत! वह और भी प्रसन्न हुई। उसने अपनी प्रसन्नता छिपाते हुए कहा—"मैंने किसी विद्यालय में शिक्षा नहीं पायी है। घर पर ही थोड़ा बहुत पढ़ लिया है।"

'असली शिक्षा तो घर ही पर होती है। तुलसीदास, शेक्सपियर, गेटे, प्लेटो, आदि किसी विद्यालय में तो पढ़े नहीं थे, पर वे प्रतिभाशाली होने के साथ ही साथ कितने विद्वान भी थे। मैं मुँह पर आपकी बड़ाई नही करता पर मुझे लगता है कि आपके सोचने की शक्ति हमारे यहाँ के कई सम्पादकों से भी अच्छी है। पर आश्चर्य होता है कि इतनी होशियार होकर भी आप ठगी गयीं।"

प्रशंसा परी लोक का वह सोने का पिंजरा है जिसमें औरत की बुद्धि मुग्गी बनकर प्रसन्नता से बन्दी हो जाती है। फिर उस मुग्गी से जो रटाइए रटती रहती है। छोटे सरकार ने सरला को अपने वश में करने के लिए इसी अस्त्र का सहारा लिया। उसकी खूब प्रशंसा की। उसे खूब चढ़ाया।

चपरासी चाय और टोस्ट लेकर जब आया। सरला चाय बनाने के लिए आगे बढ़ी, पर छोटे सरकार ने उसे रोक दिया और कहा—"अरे

वाह, आप काहे को कष्ट करती हैं। मै स्वयं बनाता हूँ। आप तो हमारी अतिथि हैं। अतिथि को किसी प्रकार का कष्ट देना हमारे यहाँ का नियम नहीं है।"

सलज्ज मुस्कराहट के साथ सरला पुनः बैठ गयी।

आपत्ति के समय जैसे भगवान याद आता है वैसे ही चाय पीते समय धूम्रपान करने वालों को सिगरेट याद आती है। छोटे सरकार ने जेब में हाथ डाला पर सिगरेट-केश खाली निकला। उन्होंने चाय की पहली चुस्की के साथ ही चपरासी को बुलाया और सिगरेट लाने को कहा। इस बीच भी वह धीरे-धीरे चाय का स्वाद लेते रहे।

फिर भी बातचीत का सिलसिला किसी न किसी रूप में चलता ही रहा।

"आप कहाँ की रहने वाली हैं?" उसने पूछा।

वह पहले इस प्रश्न को सुनकर अनसुनी कर गयी। पर सोचती रही, उसके चेहरे का रंग कुछ फीका पड़ने लगा, किन्तु छोटे सरकार की उत्कण्ठा शान्त न हुई। उसने इसी प्रश्न को दूसरे ढग से पूछा—"आप इस शहर में कैसे चलीं? आपके परिवार में कितने लोग हैं?"

अब तो उसके चेहरे की हवाई उड़ चली। हाथ भी कुछ काँपने से लगे। वह क्या उत्तर दे कुछ समझ नहीं पा रही थी। इसके पहले भी उसके मन में ऐसे प्रश्न उठे थे। उसने सोचना चाहा था कि यदि कोई पूछेगा तो क्या जवाब दूँगी पर जब-जब वह सोचने की चेष्टा करती, घबरा जाती। उसका सिर चकराने लगता। एक विचित्र

काली छाया उसकी आँखो के सामने नाचने लगती। इस समय भी उसकी कुछ ऐसी ही स्थिति थी। वह चाय की प्याली अधरों तक ले जाती और फिर कुछ सोचती हुई उसे टेबुल पर रख देती। मस्तक पर कुछ पसीने की बूँदें आ गयी थी।

एक ही बार देखकर अनेकों को अच्छी तरह पहिचानने वाली छोटे सरकार की नजर ने उसे कई बार गौर से देखकर खूब अच्छी तरह पहचान लिया। उसे इस नारी के कोमल शरीर मे छिपी एक अपराधी आत्मा दिखायी दी। उसने व्यंग्य में मस्तक पर बिखरे पसीने की ओर संकेत करते हुए कहा—"क्या आपको गर्मी मालूम हो रही है? हीटर बन्द कर दूँ?"

यह व्यंग्य उसे विष का बुझा बाण सा चुभा। अब वह अपने को संभाल न सकी, आँखें डबडबा आयीं। वह गिडगिड़ाती हुई बोली—'परमात्मा के नाम पर मुझसे यह तीन प्रश्न मत पूछे—"कहाँ की हो, कौन हो, क्यों आयी हो?"

व्यक्ति की कमियाँ जानकर उससे लाभ उठाना छोटे सरकार अच्छी तरह जानते थे। इसी से जिस किसी से भी उन्हें अपना काम निकालना होता था वह उसके व्यक्तित्व की कमियो को किसी न किसी प्रकार पता लगाते थे और उसे बिना किसी विवाद के अपने मस्तिष्क के कोने में रख लेते थे। पर सरला की कमी जानने मे उन्हे किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पडा। इसलिये वह मन ही मन प्रसन्न थे। उन्होंने अपनी मुद्रा बदलते हुये कहा—"कोई हरज नहीं, इसमें गिड़गिड़ाने की क्या बात है। यह तो दोष मेरा ही है। किसी की प्राइवेट लाइफ जानने से

मुझे क्या मतलब ?" पुनः उसने बात बदलते हुये कहा —"अच्छा अब काशी में क्या करने का विचार है ?"

अब वह शान्त हुई, बोली—"यदि इस जाल से छुटकारा पा गयी तो कहीं न कहीं जीवनयापन के लिये छोटी मोटी चाकरी करूंगी।"

"जाल से छुटकारा ? . अरे मै तो फोन करना ही भूल गया था। अब तो वह जाग भी गये होंगे।" इतना कहकर उसने फोन मिलाया और बातचीत शुरू हो गयी। "...जी हाँ...आप कहाँ से बोल रहे है ? डी० एम० साहब के बंगले से ।.. साहब अभी सोकर उठे है या नही। ओ हो .. क्षमा कीजिये आप ही बोल रहे हैं, नमस्कार, नमस्कार। मै हूँ रमेशचन्द्र गुप्त। एक विशेष कार्य से मैंने इस समय आपको कष्ट दिया है। ऐ.. हाँ हाँ। अरे उसे क्या, जब आप आज्ञा दें तभी हो जायगा। मै...यह कह रहा था कि कल अनाथालय से लड़की भागने के सम्बन्ध में कोतवाली में एक रिपोर्ट दर्ज करायी गयी है। वह बिल्कुल झूठी है। जी हाँ, जी हाँ...उसके सम्बन्ध मे प्रमाण उपलब्ध हैं।...हाँ मजा तो यह है कि उस रिपोर्ट के आधार पर मेरे अखबार में भी वह खबर छप गयी है। और सही बात यह है कि वह लड़की निर्दोष है उसे फँसाने में अनाथालय और पुलिस के कर्मचारियों का हाथ है। जी . क्या कहा आपने ? . अच्छा ..मुकदमा चलने पर ही निश्चय होगा क्योंकि रिपोर्ट दर्ज करायी गयी है। . तो किसी प्रकार मामला दब नहीं सकता ?...जी, कुछ तो करना ही पड़ेगा। कोई उपाय निकालिए। ऐसा नहीं हो सकता कि थाने के दरोगा को बुलाकर आप समझा दें कि इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही न करें और लिख दें कि बहुत

तलाश करने पर भी लड़की का पता नहीं चला।....फिर क्या किया जायगा।...अच्छा यही कर दीजिए फिर कभी बात होगी तो देखा जायगा, फिल हाल तो ठीक हो जायगा। ...हाँ, हाँ बड़ी कृपा होगी आपकी। ... और बताइये सब ठीक तो है। मेरे योग्य कोई सेवा... अच्छा। नमस्ते। कृपा बनाये रहियेगा।"

उसने फोन रखकर सिगरेट की कश ली, और बोला—"देखिये सब ठीक हो गया। आप तो व्यर्थ ही घबरा रही थीं।"

"आपको बहुत बहुत धन्यवाद। भगवान आपको सदा सुखी रखे।" उसके रोयें-रोये ने छोटे सरकार के लिए शुभ कामना की।

"अब आप कैसी नौकरी करेंगी?'

"जैसी भी मेरे योग्य मिल जाय।"

छोटे सरकार को मौका मिला। वह जाल में फँसी मछली को हाथ से जाने देना नहीं चाहता था। उसने कहा—"मेरी श्रीमती जी अरसे से बीमार हैं। उनकी तथा बच्चों की देखभाल के लिए मुझे खुद एक पढ़ी लिखी और शिष्ट महिला की आवश्यकता है। मैं सोचता हूँ, आप इस काम के लिए बहुत ही उपयुक्त पड़ेंगी। आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेतीं तो बड़ी कृपा होती।"

उसे तो माँगी मुराद मिली। ऐसे आदमी के यहाँ जिसके हाथ में इतना प्रचलित अखबार हो, कलक्टर कमिश्नर हों, नौकरी करने में अपना लाभ ही समझा। स्वीकृति दे दी।

चाय पी चुकने पर छोटे सरकार ने कहा—"मैं तो अभी कुछ देर

तक रहूँगा। आपको मै नौकर के साथ कार में घर भेज देता हूँ। उसे सब समझा दूँगा। आपको वहाँ कुछ कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी।''

इसके बाद वह बाहर आया। नौकर से कुछ धीरे-धीरे बातें की। सब कुछ समझ लेने के बाद नौकर उसे लेकर चला।

जब कार स्टार्ट हुई तब सामने चाय की दुकान पर रेडियो फिल्मी गीत गा रहा था–'जीवन के सफर में राही मिलते हैं बिछुड़ जाने को।'

शहर से ५ मील दूर छोटे सरकार के बगीचे में रहते उसे करीब तीन महीने हो गये हैं। इतने कम दिनों मे ही वह वहाँ के सभी लोगों से हिल मिल गयी है और बिल्कुल उनके परिवार की ही मालूम होती है ऐसी सफलता उसे अपने मिलनसार स्वभाव के कारण ही मिल सकी है। बच्चे से लेकर बूढ़ा माली खदेरू तक सभी उससे प्रसन्न रहते हैं।

यों तो शहर में छोटे सरकार के कई मकान हैं, पर सभी किराये पर दे दिये गये है। उनका छोटा सा परिवार इसी बगीचे में रहता है।

मालकिन इधर सालों से बीमार हैं। उन्हें लकवा जैसा पता नहीं क्या है कि उनका दोनों पैर ही सुन्न हो गया है। वह बिस्तर से उठ तक नहीं सकती। बड़ी बीबी गृहस्थी का काम देखती थी, उन्हें इधर कई दिनों से मलेरिया बुखार आ रहा है। यों तो कई नौकर हैं। सारा काम

भी बड़े आसानी से हो जाता है। बड़ी बीबी की बीमारी के कारण माल-
काना अब सरला ही संभालती है। सुबह की चाय, दोपहर का भोजन, सन्ध्या का जलपान सब कुछ की जिम्मेदारी उसी पर रहती है। इतना होने पर भी वह मरीजों की सेवा सुश्रूषा में जरा भी ढिलाई नहीं करती। सबेरा होते ही मालकिन और बड़ी बीबी को बारी बारी से कुल्ली कराना, दवा देना और फिर दस मिनट बाद ही उन्हें चाय पिलानी पड़ती है। फिर वह थोड़ा दिन चढ़े उनके बिस्तर बदलती और कपड़े ठीक करती है। इतना करने के बाद ही वह घर के और लोगों पर ध्यान देती है।

छोटी बच्ची मुन्नी अब ५ साल की हो चुकी है। बात तो वह बूढ़ी दादी सी करती है पर दूध पीने के मामले में उसे एक वर्ष की बच्ची से भी कम ही समझिये। क्या मजाल है कि वह घण्टों परेशान किये बिना दूध पी ले। अनेक परियों की कहानी, बिल्ली, कुत्ता, तथा भूत का आमन्त्रण, शिकार के काल्पनिक संस्मरण, गोया कि छोटे बच्चों को दूध पिलाने के जितने भी हथकण्डे हैं, सब उसके सामने वैसे ही असफल हो जाते हैं जैसे नयी सभ्यता के सामने सादगी।

कंजूस के हाथ से पैसा निकलना भी मुन्नी के गले के नीचे दूध उतरने से आसान है। पर जब से सरला आयी है तब से उसमें भी कुछ सुधार हुआ है। अब किसी न किसी प्रकार वह दूध पी लेती है।

सरला को मुन्नी सिल्ली जीजी कहती है। मालकिन उसे नाम लेकर पुकारती हैं। बूढ़ा खदेरू का स्नेह उसे बेटी कहता है और नौकरों के लिये वह सिल्लो बीबीजी है।

मालिक और मालकिन के स्वभाव के कारण कोई भी नौकर डेढ़ दो महीने से अधिक यहाँ टिक नहीं पाता। यों तो कुछ स्वभाव ही तीखा है और लम्बी बीमारी के कारण मालकिन और भी चिडचिड़ी हो गयी हैं। दिन भर किसी न किसी पर अनायास ही बिगड़ा करती है। उधर जब छोटे सरकार घर में आते हैं तब तो पूरे घर की दीवार ही जैसे काँप उठती है। किसी नौकर की हिम्मत उनके सामने जाने की नहीं होती। केवल उनके बाप के समय का पुराना बूढ़ा नौकर खदेरू ही उनकी खिदमत में रहता है। किसी प्रकार बेचारा दिन काटे चला जा रहा है, कोई दूसरा होता तो कभी भाग जाता। तूफान का चपेटा लगे या नदी के बाढ़ का धक्का करारे के झुलझुले पेड़ के लिए क्या? उसे तो बस उसी करार का ही सहारा है। वही मुबारक रहे। इसी से लाख मन का न होने पर भी खदेरू अपने मालिक की भलाई ही चाहता है।

सुबह जब वह घण्टों मालिश करता तब कहीं हजूर बिस्तर छोड़ते थे। फिर तो जब तक वह आफिस नहीं जाते तब तक जैसे उसके जान की आफत रहती। दस बजे के करीब जब वह अपने मालिक को जूता पहना देता है तब वह राहत की साँस लेता है।

जहाँ घड़ी की दोनों सुइयाँ बारह पर पहुँचीं नहीं कि वह टिफिन कैरियर लेकर मालिक को खाना पहुँचाने चल पड़ता है। सूरज माथे पर चमकता है। धरती पैर के नीचे काँपती है। इसी तरह वह पाँच मील चलता है और डेढ़ बजे के करीब आफिस पहुँचता है। जहाँ इससे एक मिनट भी देर हुई तहाँ सूअर, हरामी, उल्लू के पठे आदि सुसंस्कृत शब्दों से उसका स्वागत होता, फिर भी वह चुप रहता है। मौन

ही लाचारी की सबसे बड़ी ढाल है, पर दुख है वह हथियार का काम नहीं करती—और फिर पैदल ही लौटता है।

इतना होने पर भी एक दिन खदेरू के प्रति अत्यन्त अप्रिय घटना घटी।

दिन के परिश्रम से आज वह कुछ थक सा गया था। उसकी तबीयत भारी थी। फिर भी दो घन्टों तक अपने छोटे सरकार की मालिश करता रहा पर उन्हें नींद न आयी; गर्मी की रात के बारह बज चुके थे। हुस्ना, बेला, रजनीगन्धा की सुगन्ध ने उपवन को मादक बना दिया था। पवन का प्रत्येक स्पर्श मन की कली खिला देता था, फिर भी छोटे सरकार अभी जाग ही रहे थे। पर बूढ़े को नीद आ रही थी। वह पैर दबाते-दबाते नीद में झूमने लगा।

छोटे सरकार को भारीपन का अनुभव हुआ। उसने देखा बूढ़ा सो रहा है। "कम्बख्त कहीं का, चला है मालिश करने।" उसे खींच कर एक लात मारी। जर्जर एवं वाग्बाणों से विधे कलेजे पर लगे प्रहार को वह सह नहीं सका और चारपाई से दो फीट दूर जाकर गिर गया।

'हरे राम' गिरते ही उसके मुँह से निकला। उसकी तन्द्रा टूटी, उसे लगा वह आकाश से धरती पर गिरा हो। उसके पैर में असह्य पीड़ा हो रही थी। वह उठ नहीं पा रहा था।

किन्तु छोटे सरकार तड़प रहे थे—"नमकहराम, उल्लू के पट्ठे, कमीने, जगँरचोर कही के! पकड़ कर भूल रहे हैं। लगता है कि यह पैर नहीं इनके बाप का भूला है।"

मालिक की एक तड़पन, वह भी इतनी रात को; सोये को जगा देने

के लिये काफी थी। जाग हो गयी। क्या हुआ इसका अनुमान सबको लग गया। सबने समझ लिया कि आज खदेरू की खैरियत नहो, पर आग के सामने भस्म होने कौन जाय? म्याऊँ का मुँह कौन पकड़े? सब समझते थे कि खदेरू के प्रति अन्याय हुआ, पर किसी में भी इस अन्याय के विरोध की शक्ति नहीं थी। पिसते-पिसते उनकी आत्मा मर चुकी थी। खा-पीकर काम करने वाले वे केवल मशीन मात्र रह गये थे।

पर सरला से रहा नहीं गया। वह वहाँ गयी। इतनी रात को जहाँ छोटे सरकार सोये थे। वहाँ वह जीवन में पहली बार जा रही थी। भय और क्रोध से उसका शरीर काँप रहा था।

उसे देखते ही छोटे सरकार पता नहीं क्यों चुप हो गये। वह भी थी विशाल फ्यूजीयामा ज्वालामुखी पर्वत की तरह जिसके अन्तर मे आग और मुख पर बर्फ जमी रहती है।

उसने खदेरू को उठाने के लिए उसका हाथ पकड़ा। वृद्धावस्था के कारण मांसपेशियाँ झूल गयी थीं। साठ वर्ष से अधिक जीवन-पथ पर चलते-चलते हड्डियाँ भी जीर्ण हो गयी थीं। उसे सहारा देकर किसी प्रकार उठाया। 'हे भगवान' वह कराहते हुए उठा।

अब एकदम शान्ति थी। उस बूढ़े के कराहने के अतिरिक्त और कुछ भी सुनायी नहीं पड़ता था। ऐसा लगता था जैसे छोटे सरकार सो गये हों। घन्टों चिल्लाने की शक्ति, स्वभाव और अभ्यास के होते हुए भी छोटे सरकार की जबान इस समय कैसे एकदम बन्द हो गयी, यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

सरला उसे बगीचे के किनारे पर स्थित उसकी कोठरी पर ले गयी। डेबरी जलाया। गुदड़ी बिछाकर उसे लिटा दिया। पुन: संसार की सारी मधुरता अपनी वाणी में भरकर बोली—"दादा, अधिक पीड़ा हो रही है क्या ?"

बूढ़े की आँखें भर आईं। उसके कण्ठ से केवल एक शब्द निकला 'बिटिया' फिर वह कुछ बोल न सका। आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली। सरला ने अपने आँचल से उसके आँसू पोछे और उठाते हुए बोली—"दादा, घबराओ मत मैं अभी हल्दी और चूना गरम करके लाती हूँ।"

ऐसी चोट बूढ़े की जिन्दगी में अनेक बार लगी है। सहते-सहते उसे गट्ठा पड़ चुका है। पर इस बार उसे बड़ा अखरा। उसने अत्यन्त वेदना भरे स्वर में सरला से कहा—"जाने दो बिटिया, भगवान सब कुछ ठीक कर देगा। जाओ अब तुम सोवो। तुमने इतना किया बहुत किया, बेटी।" उसकी आँखों मे पानी छलछला आया।

"अरे वाह, इसमें क्या दादा। मैं अभी पांच मिनट में आती हूँ।" इतना कह वह बाहर चली आयी।

बूढ़े का इस संसार में अब कोई नहीं था। वह पुत्र, पुत्रियां, पत्नी आदि सबको अपने जीवन में ही गंगा माता को सौंप चुका था। उसे जीने की भी विशेष इच्छा नहीं थी, फिर भी जी रहा था। और वह भी केवल छोटी बीबी को देखकर। उसे वह अपनी छोटी बच्ची से भी अधिक प्यार करता था। ऐसा क्यों ? यह भी एक विचित्र कहानी है जिसकी चर्चा मैं फिर कभी करूँगा।

उसको अब इस सूने संसार में वेदना और संघर्ष के मरुस्थल के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देता था, किन्तु सरला के इस व्यवहार से उसे ऐसा लगा जैसे किसी की मन्दाकिनी ने उसे सींचकर हरा भरा बना दिया है। एक क्षण पहले जो जीवन से निराश था, दम भरते-भरते आखिरी दम के लिए व्याकुल था; अब उसकी आँखो के सामने अतीत के सपने पानी के बुलबुलों की तरह बनने तथा बिगड़ने लगे— "मेरी भी लड़की जीवित होती तो आज इतनी ही बडी होती।...उसका मन बोला फिर उसी मन में आवाज आयी, "ऐसा क्यों सोचते हो, छोटी बीबी तो है ही।"

कुछ समय पहले जिस बूढ़े को जीवित रहने की आशा हवा के झोके में दीपक की लौ की तरह कापती रही, अब उसे लगा वह जीवन के नन्दन कानन में खड़ा है। उसकी हरियाली से, हवा के झोंकों में झूलती प्रत्येक मतवाली डाली से, उसकी घास के एक छोटे तिनके से भी उसका प्यार है, मोह है।

सरला ने बड़े प्रेम से उसके चोट पर हल्दी चूने का लेप लगाया और जब चलने लगी तब बोली—"अच्छा अब सो जाओ दादा। यदि भगवान ने चाहा तो सारी दरद रात भर मे ही खिंच जायगी।"

"भगवान तुम्हारा भला करे बेटी।" सरला के चलते समय बूढ़े के एक एक रोएँ ने उसे आशीर्वाद दिया। फिर वह बोला—छोटी बीबी की तबीयत कैसी है बिटिया ?

"अच्छी है दादा"

"हाँ बेटी, उसका जरा ख्याल रखना।" इसके बाद उसकी आँखें सपना देखने लगी।

सरला के लिए यह घटना अत्यन्त प्रभावकारी और अविस्मरणीय थी। किन्तु वहाँ के किसी भी व्यक्ति के लिए यह नयी बात नहीं थी। उस रात को भी सरला और छोटी बीबी के अतिरिक्त कोई कुछ नहीं बोला, जैसे किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी। जब तक बूढ़ा हल्दी चूना लगाता रहा तब तक तो इस घटना की चर्चा भी थी बाद में सब शान्त हो गया; जैसे तूफान के आने के बाद आकाश शान्त हो जाता है।

□ □ □

दिन में बहुधा कोई न कोई मालकिन को देखने आता ही रहता है। अभी बड़ी बीबी को बुखार ने नहीं छोड़ा है। इससे कोई भी दिन नागा न जाता जब कि लोग न आते।

कुछ इधर-उधर की, रोग, रोगी, दवा और डाक्टर के सम्बन्ध में बात करने के बाद लोगों के बातचीत का विषय सरला ही रहती। लोग उसे बड़े गौर से देखते और उसके सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा व्यक्त करते।

यों तो यहाँ कई नौकर तथा नौकरानियाँ हैं और कई आईं तथा गयीं भी, फिर भी सरला के ही सम्बन्ध में ऐसी जिज्ञासा क्यों? आप भले ही यह पूछें, पर मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि छोटे सरकार के घर में किसी ने इस प्रश्न पर विचार ही नहीं किया है। इस कारण यह सरला अपने रूप रंग चाल-ढाल और व्यवहार में कभी भी नौकरानी सी

न लगती। उसे देखते ही ऐसा भान हो जाता कि यह किसी बड़े खान-दान की सुशिक्षित लड़की है। वह; और नौकर तथा नौकरानियों मे तारों मे चन्द्रमा की तरह बिल्कुल भिन्न दिखाई देती थी। इसी से वह बड़ी आसानी से चर्चा का विषय बन जाती थी।

आज दोपहर को जब सेठ कानूमल केजरीवाल के घर की औरतें आयीं तब पहले सरला ने ही उनका स्वागत-सत्कार किया। मालकिन के पास बैठने के थोड़ी देर बाद ही वह जलपान लेकर पहुँची और जब वह ट्रे रखकर चली गई, तब कानूमल की नाटी, गोलमटोल धर्मपत्नी मालती ने मालकिन से पूछा—"क्यों बहन, यह लड़की कौन है?"

"यह नौकरानी है बहन।" मालकिन ने छोटा सा उत्तर दिया।

"नौकरानी है! यह इधर की तो नहीं मालूम होती।" मालती बोली।

"हाँ बहन, अलमोड़े की ओर की है। इसको कोई है नही।"

मालकिन जैसे कुछ अधिक बताना नहीं चाहती थीं! इस बार भी उन्होंने ऐसा उत्तर दिया जिससे जिज्ञासा शान्त होने के बजाय और बढ़ी ही।

उसने पुनः पूछा—तो क्या अभी यह क्वारी है?

"नहीं, विवाह हुआ था। एक साल ही सुहागिन रही। एक दिन नदी में स्नान करते समय इसका पति डूबकर मर गया।" एक सांस में ही उन्होंने कह डाला।

अत्यन्त शोकाकुल स्वर में मालती बोली—"तो यह विधवा है! तभी बेचारी इतनी दुखी दिखाई देती है। भगवान ने जब ऐसा रूप दिया तब उसपर वज्र गिराकर इस रूप की हँसी क्यों उड़ाई?" पास बैठी अन्य औरतों ने भी दुखभरी साँसें लीं।

अपनी माँ की चारपाई के पैताने बैठी छोटी मुन्नी सब कुछ देखती सुनती और अपने विचार के अनुसार समझती रही। इतने दिनों के बाद वह आजही अपने सल्लो दीदी के सम्बन्ध में कुछ सुन पायी थी। इसके पहले उसने कई बार जानने की कोशिश की थी, पर उसकी बात को इधर-उधर करके टाल दिया गया था।

मालकिन चुप थी। वह सोच रही थी कि सभी सरला के सम्बन्ध में तीन ही प्रश्न पूछते हैं। कहाँ की है, कौन है और क्यों आयी। पर जब सरला से ये तीन प्रश्न पूछे जाते है तब वह कहती है—भगवान के लिए मुझसे यह न पूछो! पर, समाज के लिए तो कुछ न कुछ बताना ही होगा। मैंने कल्पना करके सब कुछ बता दिया, किन्तु कब तक ऐसा चलता रहेगा। और कहीं यह कल्पना भी उसके अनुकूल न ठहरी तो? अच्छा हो मैं जो भी कहूँ उसे पता न चले।

उसका झोंक देखकर मालती ने सोचा कि बहिन की आँखों में सरला के दुखपूर्ण भविष्य का काल्पनिक चित्र उतरता चला आ रहा है। इसीसे वे चुप हैं। असह्य न होते हुए भी उन्हें यह मूकता बोझिल सी जान पड़ी। उन्होंने बात चलाई—"विपत की मारी बिचारी इतनी दूर से यहाँ चली आई। क्यों बहन, यह किसके साथ आयी है।"

एक झूठ को सत्य सिद्ध करने के लिए सैकड़ों झूठ का सहारा लेना पड़ता है। मालकिन ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने कहा—"मुन्नी के पिता जी के एक दोस्त अलमोड़े में रहते हैं। करीब ६ महीने हुए वे आये थे। उन्हीं से उन्होंने कहा था कि भाई इनकी बीमारी

से तो गृहस्थी का काम हो नही पाता। यदि कोई गृहस्थी सँभाल सकने वाली दाई दिखलाई पड़े तो कहना। तो उन्होंने ही इसे भेजा है।"

"अच्छा अब समझी।" जैसे बहुत बड़े रहस्य के जान लेने के बाद कोई बूढ़ी औरत बोलती रही—"तुम्हारा भी भाग्य बड़ा अच्छा था बहन। जो तुमने अपने योग्य ही इसे भी पा लिया। बिल्कुल घर की लड़की जान पडती है।"

मालकिन कुछ न बोली। कल्पना कभी कभी सत्य से सजीव होती है फिर भी उसके अस्तित्व पर कल्पना करने वाले को विश्वास नही होता। ऐसा ही अविश्वास उसे भी था। उसने सरला के सम्बन्ध में उठायी जाने वाली सभी शंकाओं के उत्तर अपने मन में ही गढ़ लिए थे। इसलिए वह बहुधा इन उत्तरों के सम्बन्ध में कुछ सोचने लगती थी।

इसी बीच सरला भुने पापड़ लेकर आयी। 'अरे इतना सामान तो था ही, इन पापड़ों के पीछे क्यों परेशान हुई?' मालती तकल्लुफ दिखाती हुई बोली।

'इसमें परेशान होने की क्या बात है यह तो हमारा भाग्य है जो मैं आपकी सेवा कर सकूँ।' ठीक उसी लहजे में सरला ने भी कहा। और सबके सामने उसने पापड़ की प्लेटें धीरे-धीरे रख दीं। आखिरी प्लेट मालकिन के सामने रखकर वह मुन्नी की ओर देखकर अपनी भूल पर हँसने लगी, क्योंकि उसके लिए पापड़ बचा नहीं था।

"अरे वाह रे सिल्लो दीदी सबको तुमने पापड़ दिया और मुझे नहीं। अब मैं तुमसे नहीं बोलूँगी। आओ कुट्टी।" मुन्नी ने अत्यन्त

नाराज हो अपनी कानी अँगुली कुट्टी करने के लिए बढ़ा दी। उसका मुह गोलगप्पे सा फूल गया।

सब हँस पड़े। सभी ने अपने में से उसे पापड़ देना चाहा पर उसने नहीं लिया। उसके साथ अन्याय हुआ था, वह असहयोग करेगी, उसके बाल-स्वभाव ने यह निश्चय कर लिया था।

पर यह असहयोग भी कितना आनन्दप्रद था। सरला ने आगे बढ़कर जबरदस्ती मुन्नी को गोद मे उठा लिया। 'अरे आओ मेरी रानी मुन्नो! तू कितनी अच्छी है। मै भला तुमसे कुट्टी करूँगी।' इतना कहकर उसका फूला गुलाबी गाल चूम लिया और उसे लेकर वहीं बैठ गयी, फुसला फुसलाकर मालती के प्लेट से उसे पापड़ खिलाने लगी।

फिर बातचीत शुरू हुई।

"मुझे तो तुमसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।" इसके बाद मालती एक क्षण के लिए रुकी, फिर अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में बोली—"क्या कहूँ विधाता भी कितना निष्ठुर है···।"

मालकिन ने बीच में ही बात काटते हुए कहा—"सरला, समय हो चला है। मुन्नी को दूध पिला दो।" वह नहीं चाहती थी कि मालती सरला से ऐसी बातें करे जिससे उसने उसके सम्बन्ध में जो कुछ बताया है, उसे सरला जान सके।

"नहीं, मै दूध नहीं पीयूँगी।" दूध पीने के मामले में मुन्नी ने अपना सदा जैसा नकारात्मक उत्तर दिया।

"नहीं रानी बिटिया, थोड़ा सा ही पीलो। चलो बेटी, मै तुम्हें खिलौने वाले कमरे मे लिवा चलूँ।" सरला ने पुचकारते हुए कहा।

"नहीं, नहीं, मै वहाँ नहीं चलूँगी। बगीचे में चलूँगी।" मुन्नी बोली।

"तो इसे बगीचे में ही ले जाकर दूध पिला दो न।" मालकिन बोली। अब वह एक क्षण भी उसे यहाँ रहने देना नहीं चाहती थी।

□ □ □

सड़क के किनारे वाले बगीचे की चहारदीवारी के पास ऊँचे चबूतरे की ओर मुन्नी और सरला गयीं। साथ में एक लोटे में दूध और छोटे छोटे दो गिलास भी थे।

मुन्नी कुछ समय तक मस्त बुलबुल की तरह इधर उधर चहकती और फुदकती रही। इस बीच सरला ने कई बार दूध पीने को कहा, पर वह उसे किसी न किसी बात में बहकाती और दूध पीने की बात टालती रही। अन्त में उसने जब बहुत पुचकारा और उसे अपनी गोद में लिटा लिया और जब उसने यह पूरा समझ लिया कि अब पीना ही पड़ेगा तब वह बोली—"हूँ...। दीदी एक बात बताओ तो मै दूध पीऊँगी।"

"क्या ?"

"तुम विधवा हो न ?" मुन्नी ने अत्यन्त सरल ढङ्ग से अपनी जिज्ञासा व्यक्त की।

सरला को मुन्नी का यह प्रश्न कुछ विचित्र सा लगा। वह इसका भला क्या उत्तर दे, केवल मुस्कराते हुए बोली—"क्यों ?"

"नहीं, नहीं, हम जानते हैं तुम विधवा हो।" मुन्नी ने हँसते हुए कहा, पर सरला ने नकारात्मक ढङ्ग से मूड़ी हिला दी। मुन्नी कभी भी उसका 'नहीं' स्वीकार करने वाली नहीं थी, "ना, मैं कभी नहीं मान सकती। अभी अभी अम्मा ने मालती चाची से कहा था—"विचारी विधवा है, गरीब है।" उसने मुँह बनाते हुए कहा।

सरला ने अब समझा कि मालकिन ने मेरा परिचय देते हुए ऐसा ही कहा है। अब उसे उसका समर्थन करना पड़ेगा। उसने मुस्कराते हुए स्वीकार कर लिया कि हाँ मैं विधवा हूँ।

अब क्या था। मुन्नी सरला की गोद से उठकर नाचने लगी—"ए राम छीः छीः, ए राम छीः छीः। सिल्लो दीदी भी झूठ बोलती हैं। ऐ राम··छी, छी···।

जब वह जीभर फुदक चुकी और मूक तथा मुक्त वातावरण में अपनी तोतली वाणी में घोषणा प्रसारित कर ली, तो वह पुनः सरला की गोद में आ गयी। उसने दूध का गिलास उसके मुँह में लगाया पर उसने अपना मुँह हटा लिया और दूसरा प्रश्न किया—"क्यों दीदी विधवा गरीब को कहते हैं न?"

"हाँ" कितना छोटा उत्तर है। शायद उसके बाद मुन्नी चुप हो जाय, पर ऐसा नहीं था। वह तो इस विशाल संसार में केवल प्रश्न लेकर आयी है और यहाँ वह अन्त समय तक उन्हीं प्रश्नो का उत्तर खोजेगी, फिर इस समय भला वह चुप क्यों हो जाती। 'गरीब कौन होता है दीदी।" उसने पूछा।

"जिसे खाने को अन्न न मिले, पहनने को कपड़े न मिलें और पीने

को न दूध' • 'सुना ।" विचित्र लहजे में सरला ने कहा और उसके गालों को चूम लिया ।

"तब तो मैं भी विधवा बनूँगी । दीदी, मुझे दूध मत दो ।" यों तो सरला मुन्नी के भोलेपन पर हँसी पर उसके मन ने बड़े विश्वास के साथ कामना की—"भगवान तेरे दुश्मन को भी विधवा न बनावे, मेरी रानी ."

इतना होने पर भी बड़ी कसमकस के साथ उसने दूध पीना स्वीकार किया, किन्तु एक शर्त रखी कि एक घूट मैं पीऊँगी और एक तुम ।

अब सरला उसे एक बार पिलाती और दूसरी बार ऊपर से, गिलास मुँह में लगाये बिना ही थोडा सा दूध अपने मुँह में डालती जो उसके एक घूँट से भी बहुत कम होता । इस पर मुन्नी ने कई बार प्रतिवाद भी किया पर वह ऐसा ही क्रम चलाती रही ।

भंडारे का नौकर भगेलू तरकारी लेकर आ रहा था । सड़क पर ही उसने देखा सरला मुन्नी के साथ चबूतरे पर बैठी दूध पी रही है । सड़क के किनारे चहारदीवारी के पास एक पेड़ की आड़ में वह खड़ा हो गया और जब तक दूध खतम नहीं हो गया, वह वहाँ से हटा नहीं । चलते समय वह भुनभुनाया—एक कंकड़ी नमक के लिए हम चोरो की तरह पीटे जाते हैं और यह मस्ती से राजरानी की तरह दूध पीती है । कोई बोलने वाला नहीं ।"

इधर मुन्नी 'चुक्का पुक्का, खेल खतम पैसा हजम', कहती हुई उछलती-फुदकती बगीचे के फुवारे की ओर चली गई ।

□ □ □

छोटी बीबी का स्कूली नाम शशिबाला है। नाम के अनुसार उसका रूप भी है, किन्तु लगातार बीमारी के कारण शशि को जैसे राहु ने ग्रस लिया है। वह पीली हो गई है। इसी से उसकी पढ़ाई भी न चल सकी, नहीं तो वह बी० ए० की फाइनल परीक्षा देती।

अधिक मिलने आनेवालों में तीन लड़कियों को छोड़कर एक गोरे छरहरे बदन का लडका है, नरेन्द्र। वह एम० काम फाइनल में है। छोटी बीबी के बड़े भाई शशिकान्त आजकल अमेरिका मे इंडस्ट्रियल आर्गेनाइजेशन की विशेष शिक्षा ग्रहण कर रहे है। नरेन्द्र उन्हीं का सहपाठी है। वह उनके साथ यहाँ आया जाया करता था तभी से छोटी बीबी से उसका कुछ परिचय हुआ। और अब इतनी घनिष्ठता हो गयी है कि जब कभी नरेन्द्र चार छ दिन दिखलाई नहीं देता, तो छोटी बीबी कुछ अभाव सा अनुभव करने लगतीं। अब तक उनका यह अभाव मन का मन ही मे रहता था, किसी से कुछ कह नहीं पाती थी। जब से सरला इस घर मे आई है तब से छोटी बीबी की यह समस्या कुछ हद तक हल हो गई है। अतः वह नरेन्द्र के सम्बन्ध मे बहुधा सरला से बाते करती है।

इधर कई दिनो से छोटी बीबी को बुखार नही आया है। केवल कमजोरी है। जब शाम को उसका विस्तर ठीक करने सरला गयी तब बायीं करवट लेटी सूर का यह पद अत्यन्त मधुर स्वर में गुनगुना रही थी–'उधो मन की मनहा रही।'

"कौन सी चीज है बीबी जी, जो मन की मन ही में छिपाये रख

रही हो। अरे मुझे भी दिखाओ, चुरा थोड़े ही लूँगी।" सरला ने व्यंग्य करते हुए कहा।

छोटी बीबी झेंप गई। मुस्करा कर झेंप मिटाती हुई बोली—"कौन जाने तुम उसे चुरा ही लो।"

"दरिद्र हो सकती हूँ पर चोर नहीं हूँ।" बड़ी शान से उसने कहा। छोटी बीबी बड़ी जोर से हँसीं और उसका हाथ पकड़कर खींच लिया; वह चारपाई पर धम से बैठ गई।

"अरे जी, मुझे क्यों खींचती हो मेरे खींचने से तुम्हारा कोई लाभ तो होगा नहीं, और न तो दिल की जलन ही बुझेगी।" सरला का यह व्यंग्य अत्यन्त तीखा था। उसने मर्मान्तिक का ही स्पर्श नहीं किया उसमें पीड़ा भी उत्पन्न कर दी। वह मुस्कराई जैसे अपने आन्तरिक पीडा पर मुस्कराहट का पर्दा डाल रही हो, पर समझने वाले लिफाफा देखकर ही खत का मजमून भाँप लेते हैं। सरला सब भाँप गयी। फिर उसने जले पर नमक छिड़कते हुए कहा – 'मेरी बातों से आपको तकलीफ तो नहीं हुई।"

"नहीं, महारानी जी बिलकुल नहीं। यदि मुझे तकलीफ होती तो भला मैं आप को अपने पास बैठाती। यह तो मेरा भाग्य है जो आप मेरे पास बैठ जाती हैं। मुझे बड़ा ही आनन्द आता है।" कहते हुए छोटी बीबी खिलकर हँसी।

"ओ हो अब समझी। कभी कभी पीड़ा भी ऐसी होती है जिसमें बड़ा आनन्द आता है।" उसने नहले पर दहला रखा।

"अब तुम बहुत बोलने लगी हो, दीदी।" खीझकर छोटी बीबी ने कहा।

"अच्छा तो मेरा बोलना जब बुरा लगता है तो मैं कुछ न बोलूँगी।" वह चुप मुँह बन्दकर बैठ गई। कई बार उसे बोलाने की छोटी बीबी ने चेष्टा की पर वह न बोली। अन्त में लाचार होकर मुस्कराते हुए छोटी बीबी ने कहा—'इतनी मिन्नत यदि पत्थर के भगवान से भी की होती तो वह बोलने लगते।"

"पत्थर के भगवान भले ही बोले, पर अपमानित होकर मै नहीं बोलूँगी।"

"अरे, क्या मैंने तुम्हे अपमानित किया? मुझे तो मालूम ही नहीं था कि तू इसी से नाराज है। अच्छा जी, अब तो गलती हो ही गई, मुझे माफ कर दो"। कहते कहते वह उसके तन से लिपट गई।

"अच्छा जी माफ कर दिया।" एक झटके में सरला ने कहा। छोटी बीबी हँस पड़ी।

फिर बातचीत का सिलसिला दूसरी ओर बदला। छोटी बीबी ने सरला से बडी आत्मीयता से पूछा,—"दीदी एक बात पूछूँ।"

"जरूर।"

"प्रेम में इतनी व्यग्रता क्यों होती है?"

"यह सवाल तो ऐसा ही है जैसा यदि यह पूछा जाय कि आग में ताप क्यों होता है। ताप के बिना अग्नि नही और व्यग्रता के बिना प्रेम नही। प्रेम और व्यग्रता दो नहीं एक ही वस्तु के दो पहलू हैं।"

इस फिलासफी में छोटी बीबी की रुचि नहीं थी। वह तो अपने प्रश्न का कुछ और ही उत्तर सुनना चाहती थी। अब वह क्या कहे?

चुप भी नहीं रह सकती थी और बिना बोले भी नहीं रहा जाता था। वह बहुत सोच समझ कर बोली—"व्यग्रता तो प्रेम में डूब जाने के बाद उत्पन्न होती है जैसे पानी में डूब जाने के बाद झटपटाहट।"

"पर मैं यह नहीं मानती। पानी में डूबने के बाद भलेही छटपटाहट होती हो, पर व्यग्रता तो प्रेम में डूबने के पहले ही होती है, और मेरे विचार से तो प्रेम डूबने के लिए नहीं, बल्कि पार होने के लिए है।" इसके बाद वह जोर से हँसी और छोटी बीबी के मुँह के पास मुँह ले जाकर बोली—"और अब तुम भी पार होने की कोशिश करो।" दोनों हँस पड़ीं।

इसी बीच भगेलू आया और सरला को सम्बोधित करके बोला—"मालकिन दवाई बदे बुलावत हइन।"

सरला चली गई। छोटी बीबी भी बिस्तर से उठी, गुसलखाने में हाथ मुँह धोकर श्रृंगारदान के सामने बाल सँवारने लगी। शीशे में उसने देखा उसे अपना चेहरा पतझर में सूखी उस डाल सा लगा जो कभी फूलों के भार से झुकी रहती थी। इससे उसने एक बार अफसोस किया। "पर क्या यह अपने वश की बात थी, बीमारी पर किसका जोर।" उसने सोचा और लगी बालों पर कंघी चलाने।

बीमारी से वह अधिक कमजोर हो गयी थी, इसलिए थककर बीच बीच में श्रृंगारदान पर अपना सिर टेक लेती थी।

जब सरला दवा देकर आई तब उसे देखते ही बोली—"आज क्या बात है, छोटी बीबी?"

छोटी बीबी पीछे घूमकर मुस्कराई और बड़े प्रेम से बोली—मेरे बाल गूँथ न देगी दीदी।"

"हाँ हाँ जरूर। कहीं जाना है क्या?"

उसने केवल सिर हिलाया, जिसका संकेत था 'हाँ'

इतनी कमजोरी में उसका कहीं जाना ठीक नहीं। पर उसने कुछ कहा नहीं। बाल ठीक करते हुए बोली—"आज किधर सरकार की सवारी जाने वाली है।"

अधरों के बीच उसकी प्रसन्नता नाच गयी। उसने कहा—'सारनाथ!'

'क्या अकेले ही?"

'नहीं, नरेन्द्र भी आने वाला है वह भी साथ चलेगा।" उसका प्रत्येक रोम जैसे सिरह उठा।

सरला खिलखिला पड़ी। "तभी सोच रही थी कि तुम इतनी प्रसन्न क्यों हो। मन की बात मन में ही रखने की लाख चेष्टा करने पर भी मुँह से निकल ही गयी।"

झेंप मिटाती हुई छोटी बीबी ने कहा—"तुम भी चलो न दीदी।"

"मैं क्या करूँगी वहाँ जाकर, बेकार तुम दोनों के बीच में दीवार बनने के लिए। इधर तुम लिवा चलो, उधर नरेन्द्र जी मनही मन कुढ़े कि पता नहीं यह कलमुँही कहाँ से पीछे पड़ गई।"

"अरे कलमुँही नहीं गोरमूही, कहो दीदी।" वह जोर से हँसी और और कहती रही—"भला वह भी ऐसा कह सकता है? और तुम्हें जिसे वह बहुत मानता है। अभी परसों जब आया था तब कह रहा था—

'शशि, तुम्हारी यह दाई भी बिल्कुल तुम्हारे जैसी है। कितनी अच्छी है वह! जब बोलती है जैसे फूल झरता है।" उसकी आवाज में अनोखी लोच थी।

"हूँ..हूँ...। कुछ तुम्हारे बोलने पर फूल झरता है और कुछ मेरे।" सरला ने उसी लोच के साथ कहा।

इसी बीच फाटक पर मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। छोटी बीबी ने कलाई में बँधी घड़ी मे देखा, ५ बजकर ५ मिनट हो चुका था। 'देखो वह आगया, पर हम तैयार न हो सके।' जल्दी से चलने की तैयारी होने लगी।

साथ चलने की सरला की भी इच्छा थी, पर वह कैसे कहे? छोटी बीबी के बार बार कहने पर भी वह 'नाहीं नाहीं' करती जाती थी, पर उसके इस नहीं नहीं में ही उसका 'हाँ' छिपा था। अन्त में वह भी चलने के लिए आखिर तैयार हो ही गयी। साड़ी बदली, बाल ठीक किये।

अब सरला के सामने घूमने जाने के लिए मालकिन से अनुमति प्राप्त करने की समस्या थी। पर इसके लिए उसे अधिक परेशान नहीं होना पड़ा। उसने मालकिन से कहा—"छोटी बीबी अभी कमजोर हैं, कहिए तो मैं भी उनके साथ चली जाऊँ।"

फिर क्या था। अनुमति मिलते देर न लगी।

तैयार होकर जब दोनों बगीचे में आयीं तब छोटी बीबी ने नरेन्द्र से कहा—आपको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि आज हमारे साथ सिल्लो दीदी भी चल रही हैं।

"जरूर, जरूर मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता है सिल्लो दीदी आप

से मिलकर।" इतना कहकर नरेन्द्र ने हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ा दिया। सरला इस शिष्टाचार से अभ्यस्त न थी, फिर भी उसका हाथ आगे बढ़ ही गया। नरेन्द्र की हथेली के गरम स्पर्श की स्निग्ध मादकता ने उसके हृदय में एक सिरहन उत्पन्न कर दी, जो भले कुछ ही क्षण रही हो, पर जिसका प्रभाव सुखद स्वप्न की स्मृति की भाँति शीघ्र नष्ट न हुआ।

डाल पर मुस्कराते फूलों ने इन तीनों प्रेमियों को मोटर पर बैठते देखा। बूढ़े खदेरू ने दूर की क्यारी की छाती में खुरपी से प्रहार करना आरम्भ किया। गोल्डमुहर की हुलसती डाल पर एक पंछी मीठे स्वर से गा उठा, जिसका नाम मै नहीं जानता।

उस दिन के बाद से रास्ता खुल गया और सरला भी किसी न किसी बहाने से छोटी बीबी और नरेन्द्र के साथ घूमने जाने लगी।

—पाँच

कभी-कभी ऐसा होता है जिसकी कल्पना करना भी मानव मस्तिष्क की शक्ति के बाहर है। यह घटना कुछ ऐसी ही थी।

आषाढ़ का पहला बादल बरस कर निकल चुका था। दिन भर की तपन सन्ध्या को जैसे घुल-सी गयी थी। ठंडी हवा बह रही थी।

रविवार का खाली दिन और ऐसा सुहावना मौसम! मैं टहलता लहुराबीर चौमुहानी की ओर चला जा रहा था। अकेला था। कुछ आगे बढ़ने पर जहाँ रामकटोरा की ओर से सड़क आकर मिलती है वहाँ मैंने देखा श्यामदेव सिगरेट पीता हाथ में छोटा तथा मोटा रूल लिये अपने मैनेजर रामसमुझ के साथ चला आ रहा है। उसको देखते ही अपार घृणा से मेरा मन भर गया। मैंने अपना मुँह फेर लिया और चुपचाप अनदेखे ही आगे निकल जाने के लिए झटके से बढ़ा। पर श्यामदेव ने पुकारा ही तो—'मास्टर साहब, अरे ओ मास्टर साहब!"

अब रुकना ही पड़ा। आज के सभ्य संसार में शिष्टता की कारा में मनुष्य किस प्रकार बन्दी है, इसका अनुभव मुझे उस समय हुआ जब अपार आन्तरिक घृणा के होते हुए भी मै उसके निकट जाकर बोला—'नमस्कार भाई'

अभिवादन का उत्तर देने के बाद रामसमुझ ने पूछा—"इधर कहाँ सवारी जा रही है मास्टर साहब।"

"यों ही टहलता चलपड़ा हूँ। जहाँ तक चला जाऊँ।" मैंने कहा।

"तब क्यों ऐसे भागे चले जा रहे हैं। कोई पानी तो बरस नहीं रहा है।" श्यामदेव ने कहा।

लाचार हो उनके साथ हो लेना पड़ा। सिनेमा देखने का प्रोग्राम बना। उन दिनों प्रकाश टाकीज में 'अवारा' चल रहा था।

रामसमुझ टिकट लेने गया और हमलोग सामने पान की दूकान पर पान खाने बढ़े। आज भीड़ भी काफी थी।

इसी बीच सनसनाती एक 'फोर्ड' सामने आकर खड़ी हुई। मै तो पान खरीद रहा था, पर श्यामदेव सड़क की ओर खड़ा था। कार आते ही उसकी नजर उसपर पड़ी। वह एक टक देखता ही रहा मानों वह कुछ ऐसा देख रहा हो कि उसे अपनी आँखों पर ही विश्वास न हो।

मैने देखा, उस गाड़ी से चौबीस, पचीस वर्ष का आजकल के मन-चले लोगों जैसा तरुण निकल रहा था। उसके पीछे दो जवान लड़कियाँ थीं। गौर वर्ण, मझले कद और छरहरे बदन का वह युवक सफेद बुशसर्ट और सफेद पैन्ट पहने युनिवर्सीटी का छात्र मालूम हो रहा था। उसके घुँघराले बाल, प्रशस्त ललाट पर मोटी कमानी के

चश्मे के नीचे नाचती बड़ी बड़ी आँखें सौंदर्य के बाजार का सौदा करने में प्रवीण लग रही थी। इसके बाद वह दोनो लड़कियाँ बाहर आयीं।

पहली को ठीक तरह से देख न सका पर जब दूसरी पर निगाह पड़ी तब तो मैं अवाक रह गया। स्वयं समझ नही पाया कि यह सत्य है या स्वप्न। मस्तिष्क में स्मृति का चकाचौंध छागया और स्वप्न तथा सत्य के बीच की वस्तु सामने खड़ी दिखाई दी।

यह सरला थी। धानी रंग के जारजेट की साड़ी में वह ऐसी लग रही थी मानो हरे भरे झुरमुट के बीच मुस्कराता कोई सजीला गुलाब का फूल हो।

उसने हम लोगों को देखते ही अपना घूँघट खीच लिया और पहली लड़की की आड़ लेकर आगे बढ़ी।

श्यामदेव के जीवन की यह घटना अपने ढंग की निराली थी। ऐसा जीता जागता तिलस्म, ऐसी विचित्र जादूगरी न तो उसने कभी देखी थी और न कभी कल्पना की थी। उसका विस्मय सीमा पार कर चुका था। उसकी आँखें सरला के पीछे एक दम लगीं थीं। वह जिधर जाती उधर ही वह सिर घुमाता।

बल्कि मुझसे न रहा गया, मैंने उसका ध्यान दूसरी ओर खींचने की गरज से मजाक करते हुए कहा—"यार, सिनेमा तो भीतर हाल में दिखायी पड़ेगा, बाहर अभी से ही सिनेमा देखने की कोशिश मत करो।"

वह अनमना सा मुस्कराया और फिर एक दम गम्भीर हो गया जैसे गर्मी की दोपहरी में तपते पत्थर पर कोई पानी फेंके और फिर एक क्षण में वह पत्थर ज्यों का त्यों हो जाये।

फिर वह कुछ देर बाद बोला—'देखिए अभी तक रामसमुझ टिकट लेकर नहीं आया। अजीब आदमी है। आप यहीं रुकें, मैं उसे देखकर अभी आता हूँ।'

वह मुझे छोड़कर भीड में चला गया।

मैं तो जान ही गया कि वह रामसमुझ को देखने जा रहा है या सरला को। किन्तु मैंने कुछ कहा नहीं। उसकी दृष्टि में तो मैं सरला के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था, पर यार को क्या मालूम कि इस नाटक का एक पात्र मैं भी रहा हूँ।

थोड़ी देर बाद वह लौटा। आते ही मैंने पूछा—"क्या टिकट मिल गया?"

'हाँ।'

'तो रामसमुझ को कहाँ छोड़ा?'

उसे हाल में सीट रिजर्व रखने के लिए भेज दिया है।

फिर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर पुनः पान की दूकान की ओर बढ़ते हुए बोला—"यार, पान अच्छी तरह जमा नहीं। चलो चार-चार बीड़े और जमाया जाय।"

□ □ □

यह दो रुपये आठ आने वाला स्पेशल क्लास था। जब रामसमुझ हमें हाल में लिवा ले गया तब न्यूजरील चल रही थी। एक दम पीछे बाक्स के आगे की सीट हमारे लिए रीजर्व थी। इसके अतिरिक्त इस

क्लास में केवल पन्द्रह बीस लोग और थे। पीछे वाक्स में भी कुछ लोग बैठे थे। अभी अभी उजाले से अँधेरे में आये थे। अगल बगल के लोग दिखायी नहीं देते थे।

बात मैं उन दिनों की कह रहा हूँ जब सिनेमा हाल में धूमपान निषेध नहीं था। यारों ने सिगरेट जलायी और लगे अग्निहोत्र करने पर मै इस मर्ज का शिकार नहीं था। उनके धुओंधार में कभी कभी तबीयत ऐसी ऊबती कि मुझे प्राणायाम का अभ्यास सूझता।

थोडी परेशानी तब और बढ़ी-जब पीछे बाक्स में भी किसी ने दिया सलाई जलायी और अपने सिगरेट का मुँह फूँका। अरे यहाँ तो वे ही तीन प्राणी थे—सरला और उनके दो साथी। सिगरेट के गहरे कस के प्रकाश में मैंने देखा।

मैंने समझ लिया कि ये लोग बिल्कुल उसके पीछे पड़ गये है। जरूर वह किसी न किसी तरह पुनः विपत्ति में डाल दी जायगी। मन में तो बहुत बुरा लग रहा था पर करता क्या। कुछ कसमसाता हुआ धीरे से बोला—"रामसमुझजी ने भी पता नहीं क्या समझ कर इस कोने में सीट रीजर्व की।"

"नहीं, यहाँ कोई हरज तो नहीं है। ऊपर पंखा है। एक दम पीछे की सीट है। और क्या चाहिए। आपको कोई तकलीफ तो नहीं है।"

"नहीं साहब, मुझे तो कोई तकलीफ नहीं है। पर आप आराम से रहें। यहाँ मै यही सोचता हूँ।"

"मैं तो बड़े आराम से हूँ।" रामसमुझ ने कहा। श्यामदेव चुप ही रहा।

इसके बाद कुछ समय के लिए बात बन्द हो गयी।

पुनः श्यामदेव ने ही बातचीत का सिलसिला आरम्भ किया। उसने राम समुझ से इतने ऊँचे स्वर से पूछा जिससे वाक्स में बैठे लोग भी सुन लें—"क्यों जी, यदि कोई फरार चोर दिखायी पड़े तो क्या करना चाहिए?"

"इसके लिए पुलिस को सूचना देनी चाहिए।" रामसमुझ बोला।

"और मान लीजिए पुलिस उसे न पकड़ना चाहे तो?"

"भला ऐसा कैसे हो सकता है। पुलिस को उसे पकड़ना ही पड़ेगा। यदि वह पकड़ने में आनाकानी करती है तो कलक्टर से उसके विरुद्ध रिपोर्ट करनी चाहिए। उस पर भी मुकदमा चलेगा।" बड़े आधिकारिक रूप से रोबीले स्वर में वह बोला।

'तब तो उस फरार चोर पर आफत आजायगी।'

'जरूर।'

कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर बड़ी आत्मीयता से रामसमुझ बोला—"क्यों प्रधान जी वह किसी प्रकार बच नहीं सकता?"

"चोरी करेगा, माल लेकर फरार हो जायगा तो फिर बचेगा कैसे?"

"यदि चोर जिसका सामान लेकर गया हो, चुपचाप उसे लाकर लौटा दे और क्षमा माँग ले तो?"

"तब तो उसे छोड़ ही देना चाहिए।" दया दिखाते हुए श्यामदेव बोला।

"हाँ मैं भी यही सोचता हूँ, अवश्य छोड़ देना चाहिए। आखिर वह भी आदमी ही है, गलती तो हो ही जाती है।"

सुनते सुनते मेरे मन में आया कि मैं भी पूँछू कि जिसने किसी पर झूठा चोरी का अल्जाम लगाया हो यदि वह मिले तो क्या करना चाहिए ? इसका सीधा उत्तर होता—"उसका गला घोट देना चाहिए।"

पर मैंने कुछ कहना ठीक नहीं समझा। केवल उन दोनों की बात काटने की गरज से बोला—"यदि आप लोगों को इस प्रकार की बहस ही करनी थी तो यहाँ तक आने और पैसा खर्च करने का कष्ट क्यों किया। इसके लिए तो कम्पनी बाग का लान ही काफी था।"

"अरे शर्माजी, आप तो हम लोगों की जबान पर जैसे ताला लगा देना चाहते हैं। लीजिए अब हम नहीं बोलेंगे।" मुस्कराते हुए राम समुझ नाटकीय ढङ्ग से बोला।

फिर इन्टरवल तक दोनों शान्त थे।

मैं बराबर पीछे घूमकर सरला की ओर देखता जाता था। वह अब वैसी निश्चिन्त नहीं दिखायी पड़ी जैसी मोटर में थी। कभी अपने में ही सिमिटती, कभी माथे पर आया पसीना पोछती, कभी बगल में बैठी तरुणी के कन्धों पर सिर रखकर विश्राम करती। उसके कान और आँखें दोनों इधर ही लगी थीं। बड़ी घबड़ाई हुई थी।

जब दोनों खुरापाती सिनेमा देखने में लगे थे तब एकबार मेरी और उसकी आँखें चार हुई। मैंने दोनो हाथ जोड़कर नमस्कार किया, किन्तु उसने उसका कुछ भी जवाब नहीं दिया, बल्कि अत्यन्त घृणा प्रदर्शित करते हुए मुँह फेर लिया। उसके सिर से साडी सरक कर कन्धे पर आगई थी। उसने उसे शीघ्र ही ठीक किया और बगल में बैठी तरुणी की कलाई घुमाती हुई बोली—'क्या समय है, छोटी बीबी!'

"अभी तो आठ के आस पास ही है। क्या, चित्र पसन्द नही आ रहा है क्या?"

"नहीं। तबीयत कुछ घबरा रही है।" उसने धीरे से कहा, पर हम लोगों को अच्छी तरह सुनाई पड़ा।

"क्यों, क्या बात है।" वह युवक बोला।

"यो ही पेट में दर्द है और सिर चकरा रहा है।" सरला ने कहा।

युवक ने उसका हाथ पकड़ कर नाड़ी देखी। 'बुखार तो नहीं है' उसने कहा।

"पर मेरी राय से तो अब चलना चाहिए, क्योंकि जब से सिल्लो दीदी यहाँ बैठी है तभी से मै देख रही हूँ कि उनकी तबीयत ठीक नहीं है।" छोटी बीबी ने प्रस्ताव किया। नरेन्द्र को समर्थन करते देर न लगी और तीनों धीरे से हाल के बाहर होगये।

उसके बाहर जाते ही रामसमुझ भी अपनी सीट पर से उठा, पर श्यामदेव ने हाथ पकड़ कर उसे बैठा दिया।

सामने चित्र चला आरहा था। राजकपूर नर्गिस के साथ बड़ी मस्ती से गारहा था .....'अब रात गुजरने वाली है।'

□ □ □

रात को १२ बजे अनाथालय की छत पर बैठक हुई। इसमें चार ही व्यक्ति थे—श्यामदेव, रामसमुझ, सलोनी और एक दरबान। खा

पीकर लोग जमें थे और आज की सिनेमा वाली घटना की चर्चा हो रही थी।

"लेकिन उसके साथ वह युवक कौन था ?" श्यामदेव ने पूछा।

"उसे तो मैं नहीं जानता ?" रामसमुझ ने कहा।

'पर कार तो ... अखबार के मालिक गुप्त जी की ही थी।

'हाँ वही थी। मै उसके ड्राइवर को अच्छी तरह पहचानता हूँ।'

'तो क्या सरला को गुप्त जी ने ही अपने पास रखा है ?' श्यामदेव ने शंका की।

'हो सकता है—'रामसमुझ बोला।

"हो सकता क्या है, वही होगा।' बड़े विश्वास के साथ सलोनी ने कहा।

श्यामदेव कुछ समय तक चुप था। फिर विचार करते हुए बोला—"और यदि वह उस युवक के पास हो तो ?"

वास्तवमें उसने एक नयी समस्या की ओर संकेत किया। 'तब तो पता लगाना पड़ेगा कि वह युवक कौन था ?" राम समुझ ने कहा।

'हाँ, यही मैं भी सोचता हूँ क्योंकि जहाँ तक मेरा ख्याल है, गुप्त जी ऐसी औरत को जिसकी वल्दियत सकूनत का भी पता न हो, कभी अपने यहाँ न रखेंगे।" वह कुछ सोचते हुए कुछ रुक कर पुनः बोला—'अच्छा तो वह दूसरी लड़की जो उसके साथ थी उसे तुम जानते हो ?'

'हाँ, उसे तो मै जानता हूँ। वह गुप्त जी की ही लड़की है।" उसने छूटते ही कहा। जैसे वह उसे बहुत पहिले से ही जानता हो।

'तब गुप्तजी अपनी जवान लड़की को किसी भी अनजान आदमी के साथ सिनेमा देखने के लिए नहीं भेज सकते। जरूर वह युवक उनके घर से ही सम्बन्धित होगा।' सलोनी ने भी अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाया।

सलोनी के अनुमान का सभी ने समर्थन किया।

"फिर भी हमें पता तो लगाना ही होगा कि वह गुप्त जी के यहाँ है या नहीं क्यों कि मुझे विश्वास नहीं होता। एक तो वह वहाँ पहुँची कैसे? जब कि इस शहर के लिए वह बिल्कुल अनजान है। फिर उनसे उसका परिचय कैसे हुआ? और मान लीजिए किसी प्रकार उसका परिचय हो भी गया हो, फिर भी वह उसे अपने यहाँ कदापि रख नहीं सकते। मैं उनके स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हूँ।"

"यही तो मुझे भी आश्चर्य है। खैर, मैं कल ही पता लगाता हूँ।" रामसमुझ बोला।

"यदि वह कहीं गुप्त जी के यहाँ ही निकली तब तो वह यहाँ की बातें खूब प्रचारित करती होगी। हम लोगों की बड़ी बदनामी होगी।" सलोनी ने कहा।

"नहीं जी। वह वहाँ है ही नहीं। यदि वह वहाँ होती तो गुप्तजी के अखबार में अब तक कम से कम चार बार तो हमारे अनाथालय के खिलाफ न्यूज़ छप ही जाती।.....मुझे तो कुछ दूसरा ही राज दिखाई देता है।"

'क्या?' दोनों की जिज्ञासा जाग चुकी थी।

"मुझे तो उसके ड्राइवर पर ही सन्देह है।"

श्यामदेव की शंका सुनते दोनों अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में सोचने लगे।

पुनः श्यामदेव ने ही मौन भंग करते हुए रामसमुझ से कहा—"खैर इन बातों को अभी जाने दो। कल तुम वही पता लगाओ।...... अच्छा यह तो बताओ कि यहाँ से गये उसे कितने दिन हुए होंगे।"

"यह तो रजिस्टर में दर्ज होगा ही।"

'जरा रजिस्टर लेते आओ तो।'

रामसमुझ नीचे रजिस्टर लाने चला गया।

बादलों के बीच से चाँद आँख मिचौनी खेल रहा था। चारो ओर सन्नाटा छाया था। दूर गंगा के पुल पर से गाड़ी जाने की गड़गड़ाहट की डरावनी आवाज सुनाई पड़ रही थी। निस्तब्धता की छाती काँप रही थी। टूटे हृदय की आह की यह हवा गर्म और नम थी जिससे लगता था कि पानी शीघ्र ही बरसेगा।

"जरा एक गिलास पानी तो लाओ।' श्यामदेव की आज्ञा पर दरबान पानी लेने नीचे की ओर बढ़ा। उसने पुनः कहा, "और देखो आज मेरा बिस्तर नीचे ही बिछाना क्योंकि पानी जरूर बरसेगा।"

'अच्छा।' वह नीचे चला। अभी कुछ ही सीढ़ी नीचे उतरा होगा कि उसने उसे पुकार कर पुनः कहा—"जरा ध्यान से नीचे ऊपर के सभी दरवाजे देख लेना अच्छी तरह बन्द है या नहीं।"

फिर उसने सलोनी की ओर रुख करके पूछा—"जो परसों आरा से लड़की आयी है, वह किस कमरे में है?"

"दूसरी मंजिल में सीढ़ी से उत्तर की ओर, चौथे कमरे में।"

"वहाँ जाकर जरा आहट से पता लगाओ कि वह सो रही या जाग रही है।'

दरवान नीचे चला गया।

'और तो सब ठीक है न ?' श्यामदेव ने सलोनी से पूछा।

"हाँ कोई नई बात तो नहीं है। आज फूलकुँवरी और चमेली आपस में लड़ अवश्य गई थीं।"

'क्यों ?'

"यों ही, उन सबों का कुछ पता चलता है। छिन में कुछ, छिन में कुछ।"

'उनसे सतर्क रहना, दोनो बहुत बदमाश है।'

'और, आज शाम को कोई आदमी मुझे पूछता तो नहीं आया था ?'

'हाँ, एक पंजाबी आया था।'

'उसे दिखा दिया न ?'

'हाँ।,

'किसको पसन्द किया।'

'बलिया की रमदेइया को।'

'कुछ नकद के सम्बन्ध में भी बातचीत हुई।'

"हाँ, वह आठ सौ देना चाहता है।"

"नहीं, नहीं। बारह सौ से कम में बात मत करना। कोई कानी या लगड़ी है जो मिल जायगी, या मिट्टी का खिलौना समझा है।" उसने मुँह बनाकर कहा।

लेकिन उस आरे वाली लड़की का क्या करूँ? वह तो दिन भर नाक में दम कर डालती है। 'हमरा के इहाँ न रहब पहुँचा न देईं' जी।' की रट लगाये रहती है।

'हूँ।' विचार करते हुए वह बोला—"उसका भी प्रबन्ध करता हूँ। कल एक काम करो तुम। फूलकुँवरी जरा तगड़ी है। उसको लहका के उसे खूब मरवाओ। जब उसके हाथ पैर फूट जॉय तब बिस्तर पर लिटा कर उसकी खूब सेवा करो और उससे कहो कि प्रधानजी ने इसके खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट की है यह अब हवालात में बन्द करके खूब पीटी जायेगी। भला तुम्हारे ऐसी सीधी सादी औरत को इसने इतना पीटा, राम राम। घबराओ मत, मैं इसका इससे अच्छी तरह बदला लूँगी।"

प्रधान की तरकीब सुनते ही सलोनी मुस्कराई और बोली—अच्छी बात है।

"फिर तो चार महीने तक बिस्तर पर ही पड़ी रहेगी। सारा रोना चिल्लाना भूल जायगा।"

रामसमुझ भी रजिस्टर लेकर आ पहुँचा और पन्ना खोलकर हिसाब लगाते हुए बोला—'५ महीने २३ दिन।'

'तो ठीक है। कल आप पहले यह पता लगाइए कि गुप्तजी के परिवार में कोई नयी औरत साढ़े पाँच महीने से आयी है या नहीं। ' और तब कहीं कुछ और कारवाई करने की सोची जायगी, क्योंकि अब जो कुछ भी करना है बड़ा सोच समझ कर करना है। हो सकता है मामला तूल पकड़े।

'अच्छी बात है।'

—

—छः

उस दिन सिनेमा से लौटकर घर आने पर भी उसकी घबराहट कुछ कम न हुई। खाना भी नहीं खाया और बिस्तर पर पड़ गयी। घर के सभी लोग बिना बताये ही धीरे-धीरे जान गये कि सिल्लो दीदी की तबीयत कुछ भारी है।

नरेन्द्र तो कुछ ही देर रहा, पर छोटी बीबी सरला के पास करीब १० बजे रात तक बैठी रही। इस बीच किसी विशेष प्रकार की बात-चीत भी नहीं हुई। सरला शान्त थी। चारपाई के पास ही कुर्सी पर बैठी छोटी बीबी आज के अखबार के पन्ने उलट रही थी। बीच बीच में सरला की नाड़ी पकड़कर उसका हालचाल वह पूछ लेती थी। उसने इसके पहले सरला को कभी ऐसा अशान्त और घबराया हुआ नहीं देखा था। उसने सोचा, उसके इस घबराहट का कारण आज की असह्य गर्मी ही है। इसी से उसे कोई विशेष चिन्ता न थी।

जब वह वहाँ से चलने लगी, तब उसने सरला से कहा—"इस कमरे मे पंखा भी नहीं है। यहाँ तो बड़ी उमस मालूम हो रही है। यदि तुम कहो तो चारपाई बाहर दालान में निकाल दी जाय।......हाँ पानी जब तेज बरसेगा तब बौछार आवेगी। समझ लो।"

सरला कुछ समय तक चुप थी। बाद में अत्यन्त मन्द स्वर मे कुछ शब्दों में ही बोली—तो बाहर ही निकाल दो।

सरला ने शीघ्र ही नौकरों को बुलाकर चारपाई बाहर निकालने का प्रबन्ध किया। जब वह आकर आराम से लेटी तब एक बार फिर उसके कलेजे पर हाथ रखकर उसकी तबीयत का अन्दाज लगाते हुए अत्यन्त ममत्व भरे स्वर में बोली—"अब कैसा जी है।"

"ठीक है।"

तब तक नौकर सुराही और गिलास भी सिरहाने रखकर चला गया। अब सरला को अनुभव हुआ कि व्यर्थ ही मे छोटी बीबी को बोर किये हुए हूँ, अतएव वह बोली—'अब जाओ बीबी सोओ। रात बहुत हो गयी है।'

सचमुच छोटी बीबी कुछ भारीपन का अनुभव कर रही थी; फिर भी कुछ शिष्टता प्रदर्शित करते हुए वह बोली—तुम्हें और कोई चीज तो नहीं चाहिए।

'नहीं।'

"अच्छा तो मैं चली। लेकिन देखो, जैसे घबराहट बढ़े वैसे ही मुझे जगवाना। समझा।"

"अच्छा।" वह चली गई।

अब सरला अकेली थी। उस उमस की रात में उसे नींद न आई। बराबर करवटें बदलती रही। ज्यों ज्यों रात बीतती जाती त्यों त्यों उसकी घबराहट भी बढ़ती जाती थी। उसे लगता; इस अँधेरे का प्रत्येक पल मुझसे कोई भयानक प्रश्न पूछ रहा है।

अन्त में वह परेशान होकर बिस्तर से उठी और दालान के बाहर आयी। आकाश मे जैसे काजल के ढेर के ढेर उड़ रहे थे, पर पानी अभी बरस नहीं रहा था। रह रह कर बिजली चमकती और बादल गड़गड़ाता रहा।

छोटे सरकार की चारपाई अब भी बाहर ही पड़ी थी उसपर उनका भारी भरकम शरीर खर्राटे भरता रहा।

वह सोच नहीं पा रही थी कि वह क्या करे। स्मृति का निर्मम दर्पण उसकी आँखों के सामने था जिसमें वह अनेक तस्वीरों के साथ अपनी तस्वीर देख रही थी। एक के बाद एक चित्र आता और जाता रहा, पर हर चित्र को वह अत्यन्त भयभीत नेत्रों से देखती रही, कभी कभी आँखे बन्द कर लेती। पर इससे क्या? पलक का अप्रौढ़ यह पर्दा उन्हें एक पल के लिए भी हटा न पाता। वह जोर से कराह उठती। ओह, यह तस्वीरें कितनी भयानक थीं। प्रत्येक चेहरा उसे पाशविक वृत्ति से ओतप्रोत दिखाई देता था, पर उसे यह सब देखना पड़ता था। वह अपने काँपते कलेजे को फूल से भी कोमल हाथों से दबाने की चेष्टा करती मानों किसी प्रलयंकर प्रवाह को रुई के पहाड़ रोकने की कोशिश कर रहे हों।

अब यह मेरी तस्वीर थी। उसकी आँखों के सामने आते ही उसका

सारा शरीर जैसे जल सा गया। वह अप्रतिम घृणा और अपार भय से थरथराने लगी जैसे तूफान में कोई लता हो। उसने सोचा—"देखने में तो यह कितना सज्जन था। कैसी मीठी मीठी बातें करता था। लगता था, बिल्कुल दूध का धोया है, पर सचमुच यह भी काला नाग ही था। जब उसने मुझे अनाथालय के कारागार से निकाला था, मैंने समझा था कि सचमुच यह देवदूत है, जिसे भगवान ने मेरी पुकार सुनकर भेजा है, किन्तु जब वह दोनों राक्षसों के साथ कल सिनेमा में दिखाई दिया तब उस रंगे सियार की असलियत मालूम हुई।"

"'कितना बनावटी! कितना नीच!' ओह......संसार के क्या सभी मनुष्य ऐसे ही है? क्या किसी में भी पवित्र आत्मा नहीं है?"

'मास्टर है, अध्यापक है, मानवता के मन्दिर का मठाधीश है। सिद्धान्त की बातें तो खूब करता था पर कल जब उन दोनों ने हमारा पीछा किया, उनकी खौफनाक बडी बड़ी आँखें हमें निगल जाने के लिए आतुर हो गयीं, तब क्या उसके मुँह मे छेद नहीं था। एक बार भी उसने उन्हें मना नहीं किया।'

"यदि फरार चोर पकड़ा जाये तो क्या हो, इसपर विचार हो सकता था। किन्तु क्या वह यह नहीं पूछ सकता था कि यदि किसी पर चोरी का झूठा अन्जाम लगाया जाय तो क्या होगा? पर वह पूछता कैसे वह तो खुद अपराधी है। एक ही गाँठ का सट्टा बट्टा है। आस्तीन के नीचे का साँप है बनावट के भीतर छिपा हुआ पाप है।"

इतना सोचते सोचते उसके मन की घबराहट और भी बढ़ी। वह बगीचे में अब भी घूमती ही रही पर उसके मस्तिष्क को विराम न

मिला। वह सोचती रही—'क्या संसार के सभी मनुष्य ऐसे ही होते हैं, क्या सचमुच मनुष्य के शरीर में राक्षस का आत्मा निवास करता है। मैं आज के आदमी पर कैसे विश्वास करूँ? मेरे जीवन में तो जितने भी आये उन सबकी असलियत यमराज के दूतों से भी भयावह निकली।' उसका हृदय चीख रहा था, 'अब मैं क्या करूँ? किधर जाऊँ? किसे खोजूँ? हाँ, रास्ते पर मेरे लिए एक बहुत बड़ी दीवार—वह है मेरे कर्मों की दीवार जिसे मैंने ही बनायी है, पर अब टूट नहीं सकती। कितनी दुर्बल हूँ मैं। अब तो मैं उसे पार भी नहीं कर सकती।'

'तो क्या करूँ? अनाथालय में जाकर प्रधान से क्षमा मागूँ और कहूँ—मुझे भी इस नर्क में कीड़े की तरह सड़ने के लिए थोड़ा सा स्थान दे दो। सचमुच तुम्हारा नरक इस संसार से अच्छा है। या पागलों की तरह इस दुनियाँ में निरन्तर दौड़ती रहूँ और सबसे चिल्लाकर कहूँ—संसार में किसी का भी विश्वास मत करो। धोखा होगा। यहाँ सभी पशु हैं, यहाँ सभी राक्षस हैं, यहाँ के मनुष्य का शरीर शैतान का घर है। पर मेरे चारो ओर जो विशाल दीवारें हैं; मेरी आवाज क्या उनके पार जायगी? क्या इस विशाल संसार के नक्कारखाने में इस तूती की बोली का भी कुछ महत्व होगा?'

'अब मेरे चारो तरफ अन्धकार है—भयानक अन्धकार। एकदम काला, मौत जैसा शान्त, पर निगल जाने वाला अन्धकार।

'अब मेरा कोई सहारा नहीं है। छोटे सरकार के यहाँ हूँ। क्या यह भी तो वैसा भयानक नहीं निकलेगा.... ?' वह ऐसा ही सोचती रही।

सोचते सोचते वह उधर निकली जिधर छोटे सरकार की चारपाई थी। पास पहुँचकर वह उसे बड़े गौर से देखती रही। मस्तिष्क की अस्थिरता उसे पागलों जैसा बना चुकी थी। जब भी बिजली चमकती हर बार उसे छोटे सरकार का चेहरा बदला नजर आता और अन्त में उसे ऐसा लगा मानों एक बहुत भीमकाय दैत्य उसके सामने पड़ा है। उसका माथा चकराने लगा। वह सिर थामकर पास की पत्थर की चौकी पर बैठ गई। कुछ समय बाद जब कुछ शान्त हुई तब उठी। उसके खड़े होते ही कुछ दूरी से एक हल्की आवाज सुनायी पड़ी 'कौन है?'

उसने घूमकर देखा। यह छोटे सरकार का चपरासी है। आफिस का काम करता है और यहीं रहता है। सरकार के साथ ही फाइल लेकर आफिस जाता है और शाम को साथ ही आता है।

उसे अब अपनी स्थिति का ध्यान हुआ। वह आधी रात को एक पुरुष की चारपायी के पास है। वह उसे यहाँ देखकर क्या सोचेगा? लज्जा में वह छुईमुई की तरह सिकुड़ गयी। वह स्वयं भी सोच नहीं पा रही थी कि वह यहाँ तक कैसे चली आयी।

किन्तु आवाज सुनते ही वह वहाँ से हटी और महादेव के पास आकर धीरे से बोली—'मैं हूँ।' इस बीच महादेव वहीं खड़ा रहा।

'ओ हो, आप हैं? क्षमा कीजियेगा। मैंने नहीं जाना कि आपही हैं नहीं तो मैं न आता।' महादेव मार्मिक व्यंग्य करते हुए बोला।

सरला अब क्या कहे? वह तो जैसे धरती में गड़ी जा रही थी। इतनी हिम्मत भी नहीं कि वह उससे पूछे कि इतनी रात को तुम यहाँ

कैसे ? किन्तु, यदि यही प्रश्न महादेव उससे पूछे तो ? तो वह क्या उत्तर देगी ?

अतएव वह चुपचाप, बिना कुछ कहे उसके बगल से धीरे से आगे निकली। महादेव ने अत्यन्त मन्द स्वर में अपना दूसरा वाग्वाण मारा—'सरकार जी, सो गये क्या ?'

किन्तु सरला कुछ न बोली।

□ □ □

मेघों की मोटी परत के भीतर सूर्य चुपचाप बिना किसी आहट के आकाश में चढ़ने लगा। अँधेरे की रोशनाई धीरे-धीरे कुछ धुलने लगी, पर अब भी बादल वियोगिनी के नयनों की तरह टपकता ही रहा, हवा थरथराती ही रही जैसे नाजुक डाली पर फूला गुलाब भौंरे की चुम्बन के बाद थरथराता है। किन्तु सरला की आँखें न खुलीं। वह खर्राटे भरती चारपाई पर पड़ी ही रही।

छोटी बीबी को बुखार ने छोड़ दिया है पर कमजोरी जल्दी दूर नहीं हो रही है। इसलिए डाक्टरों ने मार्निङ्ग वाक (सबेरे घूमने) की सलाह दी है। इससे इधर दो दिनों से वह ५ बजे के पहले ही उठ जाती है और अपने बगीचे में ही टहलती है। यदि बहुत हुआ तो कभी कभी बगीचे के बाहर सारनाथ जाने वाली सड़क पर कुछ दूर तक निकल जाती है। इसके इस कार्य में सरला भी साथ देती है, पर आज वह दिखाई न दी।

अकेले उसे कुछ उदास सा लगा। एक ही बार उसने चक्कर लगाया और पिकार्डो में चली आयी। वहाँ पड़ी आराम कुर्सी के पीछे बरसाती कोट उतारकर रख दिया और उसी कुर्सी पर बैठ गयी। खुला हुआ अपना भींगा छाता विचित्र अदा से नचाती रही। साथ ही साथ मुजैक की चिकनी फर्श पर आराम से पड़े रबर के जूते में उसके दोनों पैर हिलते रहे। जैसे बरसाती हवा में हर वृक्ष हरे भरे और झूलते नजर आते हैं वैसे ही वह भी हरी भरी झूलती नजर आ रही थी।

कुछ देर तक वह बैठी रही। उसकी मुद्रा से एक मादक मस्ती झलक रही थी। एक तो यह उम्र, दूसरा ऐसा अकेलापन, और तीसरे यह मस्त मौसम—जिसमे पूरी प्रकृति ही मादकता की मदिरा पीकर झूमने लगती है। पत्थर भी हरा हो जाता है। तब भला इस सर्वव्यापी आनन्द की छाया में छोटी बीबी के मन का अचरा न भींजे यह कैसे सम्भव था। रह रह कर एक विशेष प्रकार की प्रछन्न गुदगुदी उसके मन में उठती थी। कभी तो उसे इसका अनुभव खुद भी न हो पाता, पर उसे ऐसा अवश्य लगता जैसे उसके पास किसी चीज का अभाव हो। इस अभाव की अनुभूति उसे व्याकुल तो न कर पाती, पर एक मीठा मीठा दर्द उठने लगता। तब उसकी दृष्टि सामने की क्यारी में बरसाती अंग्रेजी फूलों पर फिसलती और सँभलती रहती। कभी कभी उसे उन फूलो के स्निग्ध हास में नरेन्द्र की मुस्कराहट दिखाई पड़ती, तब उसके कलेजे पर छुन-सा कुछ करके रह जाता, जैसे लाल तवे पर पानी की कुछ बूँदें पड़ी हों।

इसी बीच तेज हवा आयी। उन फूलो को झकझोर कर आगे

बढ़ गयी। जब उस हवा का अंचल पास के कुंज में फँसा तब पत्तियों के पैर की पायल बजी। छोटी बीबी अपने मन की प्याली में भरे भावों को सँभाल न सकी। वे छलककर बाहर आये। और वह गुनगुनाने लगी—

'बहै पवन पुरवइया मन में पीर उठे।'

कहते हैं संगीत से मन को राहत मिलती है, पर उसे तो ऐसा कुछ भी अनुभव न हुआ। हाँ, वह कुछ समय तक अपनी ही स्वर लहरियों पर खेलती और अपने दिल का दर्द भूलती रही।

सामने फूल मुस्कराते रहे। हवा हँसती रही और वह वैसी ही भावना में विभोर गुनगुनाती रही, बहुत देर तक गुनगुनाती रही।

बूढ़ा माली खदेरू जब हाथ में खूरपी लेकर क्यारियों में उगी बेकार बरसाती घास साफ करता इधर निकला तब वह छोटी बीबी को देखकर बड़े प्यार से बोला—'क्यों बिटिया आज जिउ नाहीं नीक है का।'

'नहीं दादा, अच्छी तो हूँ।' छोटी बीबी की भाव-शृङ्खला टूटी। उसने छूटते ही जवाब दिया।

"तब इहाँ का बैठी हो। उठौ दुइ चार चक्कर लगाय लेव। अरे ई हवा अमरित है अमरित, रानी बिटिया।"

कोई पिता अपनी बेटी को क्या प्यार करेगा, जितना खदेरु छोटी बीबी को प्यार करता है। उसने अपने स्नेह का खजाना सदा उसके लिए खुला रखा था। आधी रात, पिछले पहर, जब भी छोटी बीबी जिस चीज की फुरमाइस. करती, बूढ़ा उसे कहीं न कहीं से लाने की कोशिश करता। वह उसे किसी प्रकार भी दुखी देख नहीं सकता था।

जब कभी वह बीमार होती, तब घर में सबसे अधिक बूढ़ा ही घबराता। उसे सदा ऐसा लगता जैसे छोटी बीबी अपनी ही है। उसके इस अपनत्व को किसी प्रकार की ठेस बूढ़ा सह नहीं सकता था। इसलिए कोई कभी उसके इस सम्बन्ध की चर्चा भी न करता।

छोटी बीबी भी अपने पिता की आज्ञा टाल सकती थी, पर बूढ़े की आज्ञा टालना उसे कठिन हो जाता था, क्योंकि जब कभी भी बूढ़ा कुछ कहता और छोटी बीबी न करती तब उसे अपार दुख होता। वह किसी से कुछ कहता तो नहीं, किन्तु चुपचाप अपनी कोठरी में जाकर रोने लगता, बिल्कुल बच्चों सा रोता, घन्टों रोता, फिर मनाये न मानता था और जब तक रोते रोते सो न जाता उसकी आँखें बरसती ही रहतीं।

जब कभी आप दो प्राणियों के बीच ऐसा अतिशय भावुक सम्बन्ध देखें तब समझ लीजिए कि जीवन की किसी न किसी अत्यन्त प्रभावकारी घटना से इसका कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य है। जी हाँ, बूढ़े और छोटी बीबी के इस भावुक सम्बन्ध के पीछे भी एक ऐसी विचित्र घटना जुटी है।

कहते है कि जब बूढ़े के परिवार के सभी लोग महामारी के शिकार हो चुके, तब उसके पास केवल एक लड़की रह गयी थी। वही उस बूढ़े की लकडी थी, सहारा थी। डूबते को किनारा थी। उसे देखकर उसने अपना सारा दुख भुला देने की चेष्टा की थी। उसी पर सारी उसकी आशाएँ आधारित थीं। पर विधाता का ऐसा वज्रपात देखिए कि एक महीने बाद ही वह लड़की भी महामारी में चल बसी। तब वह कटी पतंग की तरह बिल्कुल निःसहाय हो गया। वह धरती ही उसके पैर के

नीचे से खिसक गयी जिस पर उसकी जिन्दगी खड़ी थी। तूफ़ान में बिना पतवार की नौका की तरह अब उसे जीवन में किसी घाट पर लगने की आशा न रही।

और तब वह उसकी मृत्यु के बाद तीन दिन और तीन रात तक बराबर रोता रहा। आँखें थमने का नाम नहीं लेती थीं। धीरे धीरे दुख दर्द से सने दिन ऐसे ही बीते। घटना पुरानी होती गयी और बूढ़े की जिन्दगी फिर किसी न किसी प्रकार काँपती आगे बढ़ी।

पर दिल पर गहरा सदमा लगा था। जब कभी भी वह अकेला होता, उसकी आँखें टपकने लगतीं।

एक उदास और धुंधली सन्ध्या को वह सड़क के किनारे पुलिया के ऊँचे पत्थर पर बैठा था। आदमी जब भी अकेला होता है उसकी भावनाएँ उसे आ घेरती हैं। इस सूनेपन में उसके मन ने उसके साथ ऐसा ही अत्याचार किया। वह चुपचाप कुछ सोचता और अन्तर की पीड़ा सहता रहा। फिर जब बढ़ते बढ़ते यह पीड़ा असह्य हुई तब वह रोने लगा। वह ज्यों ज्यों अपने पर नियन्त्रण करने की कोशिश करता त्यों त्यो उसकी रुलाई बढ़ती जाती और अन्त मे फूट फूटकर रोने लगा। मार्ग के सुनसान में उसकी सिसकन और सन्ध्या की गुलाबी धूल में उसके आँसू खोते रहे।

जब कुछ अँधेरा हो चला, सारनाथ की ओर से एक गैरिक वस्त्र-धारी साधु आता दिखायी दिया। फिर भी बूढ़े की सिसकन शान्त न हुई। साधु उसे गौर से देखता और निकट आता रहा। पास आकर सहानुभूति भरे स्वर में उसने पूछा—'क्या बात है बेटा?'

सहानुभूति की आँधी आँसुओ की धार को और भी तेज कर देती है। खदेरू कुछ बोल न सका। जोर से फूट फूटकर रोता हुआ उसके चरणों पर गिर पडा।

गिरते ही साधु झुका और उसे उठाने की कोशिश की, पर वह पैर पकड़ कर रोता ही रहा। बहुत कुछ कहने और समझाने पर बूढ़े की आँखें कुछ थमीं किन्तु वह उसके पैर के पास बैठा ही रहा। साधु वैसे ही खड़ा था, बूढ़े ने अपनी सारी कहानी सिसकियों के बीच कह सुनायी।

अत्यन्त गम्भीर चिन्तन के स्वर में साधु बोला—'दुखी मत हो बच्चा, धीरज धरो। तुम्हारी प्यारी बेटी की आत्मा अवश्य किसी न किसी रूप में तुमसे मिलेगी।'

खदेरू साधु की बात सुनते ही विह्वल हो उठा। उसे ऐसा लगा, मानों कोई देवदूत अत्यन्त आश्चर्यजनक किन्तु मनचाही भविष्यवाणी कर रहा है। वह अत्यन्त कातर स्वर मे बोला—'अब वह कैसे मिलेगी, बाबा।'

"घबराओ मत बच्चा,··· जब तक आत्मा मोह के बन्धन से बँधी रहती है, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती। तुम अपनी बच्ची को बड़ा प्यार करते रहे, तब वह बच्ची भी तुझे खूब चाहती रही होगी?" वह प्रश्नवाचक मुद्रा में कुछ समय के लिए चुप हुआ।

'हाँ बाबा, खदेरू ने साधु के कथन पर सत्यता की मुहर लगायी। इसी से तुम्हारी बच्ची की आत्मा भी मोह के बन्धन में बँधी है। वह तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जायगी। उठो, भगवान को याद करो वह तुम्हारे

मन का मोह दूर करे।' इतना कहकर उसने उसे अपनी बाहीं का सहारा दिया। वह उठकर खड़ा हुआ।

'जाओ, परमात्मा से प्यार करो। ऐसे क्षणभंगुर मानव-शरीर से ऐसा मोह करते हो। यह जिन्दगी तो पानी का बुलबुला है। एक क्षण में बना, बड़ा हुआ, मुस्कराया और लुप्त हुआ। फिर पानी का पानी। तब इसमें ऐसी आशक्ति क्यों? .....

बूढ़े को सचमुच साधु के कथन से कुछ शान्ति मिली। उसके मन की निराशा कुछ धुँधली हुई। साधु चलने को हुआ। बूढ़े ने एक बार फिर झुककर उसका चरण स्पर्श किया। 'भगवान तुम्हें शान्ति दे।' इतना कहकर वह साधु चला गया।

अँधेरा बढ़ चला था। आकाश में शुक्र मुस्कराने लगा।

कहते हैं कि इस घटना के चौथे ही दिन छोटी बीवी का जन्म हुआ था। वह अपना दुख भूल गया। सचमुच उसकी बच्ची की आत्मा उसके पास आयी उसने समझा और तब से उसे वह अपनी बच्ची के समान ही मानने लगा।

इस बार भी छोटी बीवी उसका आग्रह टाल न सकी। ज्यों ही उसने टहलने को कहा। वह अपना छाता ले करके बाहर आयी। इस समय हल्की फुहार पड़ रही थी इसलिए उसने रेनकोट नहीं लिया।

वह पहले बूढ़े के पास गयी और बड़े प्रेम से बोली—'इस समय पानी में क्यों भींग रहे हो बाबा। जब बादल फट जाये तब इसे ठीक कर देना।

सुनते ही वह हँसा। 'कितना हमार मोह करत है बिटिया रानी।'...

•••अरे बिटिया, अभइन त धरती मुलायम है। आसानी से घास उपर जाई। सूखै पर तऽ परेशानी बढ़बै करी।

अब वह कुछ न बोली। वह बूढ़े के अत्यन्त निकट छाता लगाए खडी रही जिससे उस पर भी आड़ रहे। पूरब से महादेव भी आता दिखायी दिया। बूढ़े ने सोचा—'आज यह अकेली है। इसीसे टहलने मे इसका मन नहीं लग रहा है। उसने पूछा—कहो बेटी आज तुम्हार सिल्लो दीदी नाहीं आयीं का ?'

'नहीं बाबा।'

'जिऊ तो ठीक है न ?'

'का मालूम।'

तब तक महादेव पीछे से अत्यन्त निकट आकर बोला—"आजकल सिल्लो दीदी रात को ही टहल लेती है।" और फिर व्यंग्यपूर्ण ढंग से मुस्कराया।

'मतलब••?' बूढ़ा बोला।

"मतलब ई कि उन्हैं रतियै के घूमै में मजा आवत है।" फिर वह जोर से हँसा जैसे वह किसी घृणास्पद रहस्य पर अट्टहास कर रहा हो। किन्तु दोनों चुप थे। छोटी बीबी कुछ बोलना चाहती थी किन्तु उसके बोलने के पहले ही महादेव वैसे ही उपहास भरी आवाज में फिर बोला—'कुछ लोग अँधियारी अउर सन्नाटे में ही बगैइचा में घुमबै करत हैं।'

महादेव रदे पर रंदा दिये जा रहा था, पर दोनों पर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा। व्यंग्य के लिए सर्वदा पूर्व पीठिका की आवश्यकता पड़ती। ऐसी पूर्व पीठिका दोनों में से किसी के मस्तिष्क में नहीं थी।

इसी से महादेव के व्यंग्य भींगी आतिशबाजी की तरह खुद ही फुर्र से कर कर रह गये।

छोटी बीबी ने बड़े गम्भीर भाव से सोचते हुए कहा—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। कल शाम से ही उसकी तबीयत कुछ घबरा रही थी। शायद रात भर उसे नींद नहीं आयी। तभी वह बगीचे में टहलती रही।"

'का ओके दिल कऽ दौड़ा होत है का?' बूढ़े ने चिन्ता व्यक्त करते हुए पूछा।

'नहीं, कोई ऐसी बात तो दिखायी नहीं देती।......'

वह अपनी पूरी बात खतम करे इसके पहले ही महादेव पहले जैसे लहजे में बोला—दिल क दौउरा नाहीं .... दिल में दरद होत होई।

यह बात उसे अच्छी न लगी। उसके कहने का ढङ्ग भी बड़ा वाहियात था। नौकर होकर इस तरह बोले। छोटे मुँह बडी बात। उसने उसे डाँटते हुए कहा—'क्या बेकार की बकवाद करते हो। जरा सोच समझ कर बोला करो; और बोलने का तरीका सीखो। जिसे नहीं जानते, उसके सम्बन्ध में व्यर्थ टुप-टुप न किया करो।' महादेव अब दबा और चुप ही रह गया। फिर वह बूढ़े की ओर मुखातिब होकर बोली—नहीं, खाली घबराहट रहती है। मैंने तो कई बार कहा कि किसी डाक्टर को दिखाओ पर उसने कुछ ध्यान ही नहीं दिया।

'हाँ बेटी, ओके कउनो डाक्टर के देखाय दऽ। बिचारी कऽ इहाँ तोहरे सिवाय कउन बइठा है' जौन ओकर खियाल करी।'

'क्या करूँ? मैं तो कहती हूँ, पर वह सुने तब तो।'

फिर कुछ क्षणों तक चुप्पी रही। पुनः छोटी बीवी ने महादेव से पूछा—

'उसे बगीचे में घूमते हुए तुमने कब देखा था ?'

'रात में करीब दो बजे के।'

'तुम उस समय बगीचे में क्या करने आये थे ?'

'ठीक उसी समय सड़क पर कुत्तों के भूँकने और ढोलक की आवाज सुनायी पड़ी, उसी को देखने सड़क पर गया था।'

'तो क्या जब भी ढोलक की आवाज सुनायी पड़ती है, तुम देखने जाते हो ?'

'नहीं बीबीजी, पहड़िया पर महामारी है न। कल रात को वहाँ के लोग चलावा लेकर इधर ही आने वाले थे। हम लोग इसी से रात भर जागते रहे। हमारे रहते भला चलावा इधर आ सकेगा ?' उसकी आँखो से पौरुष टपक पड़ा।

'यह चलावा क्या होता है जी; जिसके लिये तुम रात भर जागते रहे ?'

'...बीमारी को गाँव से हटाने के लिए देवी की पूजा होती है। पूजा के बाद लोग बकरा छोड़ते हैं।'

'छोड़ते हैं तो छोड़ें। इसमें तुम्हारा क्या ?'

'अरे बीबी जी, वह बकरा जिस गाँव में जाता है उधर ही बीमारी आ जाती है।' वह अत्यन्त सशंक हो बोला।

मतलब यह कि तुम लोगों की बीमारी भी बकरे पर चढ़कर चलती है। फिर वह उसके अज्ञान पर जोर से हँसती रही, किन्तु बूढ़े ने कहा

'' महादेव ठीक कहत है अभी तू बिटिया हौ का जानो।' तब छोटी बीबी का हँसना रुका।

बूढ़े ने महादेव से पूछा—'तब उधर कऽ चलावा इधर नहीं आयल ?'

'नाहीं'

'तब किधर गयल ?'

"यही त पता लगावै जात हई।"

"हाँ भाई, पता लगावा कि निकलल कि नाहीं। नाहीं तऽ फिर अगले मंगर के ऊधम मची।"

इसके बाद महादेव बगीचे के बाहर निकल गया। 'अच्छा बाबा, अब मैं भी दो एक चक्कर लगा लूँ।' कुछ समय बाद उसने कहा।

'अच्छा बेटी।' छोटी बीबी आगे बढ़ी। जब दक्षिण के कोने में पहुँची तब दूर से अमराई में झूलती लड़कियों का मधुर स्वर सुनायी पड़ा—

"हरि हरि बेला फुलै आधीरात
चमेली झिनसहरा रे हरी।"

□ □ □

जब छोटी बीबी सरला के कमरे में पहुँची तब साढ़े सात के पार हो चुका था, पर घटा ऐसी घनघोर थी कि लगता था मानों अभी छह ही बजा है। महराज ने चाय बनाने के लिए अभी चूल्हा भी नहीं जलाया था।

छोटे सरकार भी अभी तक निद्रा देवी की गोद में पड़े थे। बहतुए साँड़ की तरह उनकी नाक 'घों.. घो' बोल रही थी। फिर भी खदेरू खिदमत मे हाजिर हो गया था और धीरे धीरे उनका पैर सहला रहा था मानों कोई मंत्र पढ़ने के बाद उनके पैर की पीड़ा झाड़ रहा हो।

मालकिन भी अभी जगी नहीं थीं, नहीं तो उनकी आवाज अवश्य ही सुनायी पड़ जाती। भला वह जागकर भी चुप रहें! यह कैसे हो सकता है? जागने से लेकर जब तक वह सो नही जातीं, उनकी जबान बराबर कतरनी की तरह चला करती है, गोया कि वह कोई आटा पीसने की चक्की है जो तब तक बोलती है जब तक बन्द नहीं हो जाती। घर वालों को वह भला क्या कह सकती है, केवल नौकरों पर ही बरसती हैं। बेचारों के नाक में दम हो जाती है। जहाँ एक से अधिक नौकर इकट्ठा हुए और मालकिन के सम्बन्ध में चर्चा छिड़ी तहाँ उनके मुँह से यही निकलता है। 'हे भगवान इस राक्षसिन से कब पाला छूटेगा। न पापी मरे न खंडहर ढरे। यह तो कहो बिस्तर से उठ नहीं सकती तब इतना परेशान करती है। यदि कही उठ पाती तब तो बादल में ही चकती लगाती।'

इतना होने पर भी मालकिन सरला से अधिक कुछ नहीं कहती। उनके स्वभाव की सारी क्रूरता उसकी आकृति देखते ही कपूर की तरह उड़ जाती है। सरला को ऐसी विजय पाने में उसे अपने स्वभाव से अधिक अपनी सेवाओं से ही सहायता मिलती है। इसीसे मालकिन जब कभी भी उससे कुछ कहतीं तब उनकी आवाज में कर्कशता के स्थान पर वात्सल्य की मधुरता रहती जो सहज ही में औरों के लिए आश्चर्य और चर्चा का

विषय बन जाती। पर सरला और मालकिन के सम्बन्ध में सामने कुछ कहने की किसी की भी हिम्मत न होती कौन व्यर्थ की आफत मोल ले? अरे जिसे पिया माने वही सुहागिन!

इसी से सरला कब सोती है, कब जागती है, कब क्या करती है, इस सम्बन्ध मे कभी कोई कुछ न कहता। आज भी उसके कमरे में उसे जगाने कोई न आया, केवल छोटी बीबी पहुँची।

पहुँचते ही उसने उसकी कलायी पकड़ कर देखा कि बुखार तो नहीं है। पर ऐसा कुछ मालूम न हुआ। तब तक सरला ने भी अँगड़ाई ली। छोटी बीबी बोली—'आज कब तक सोतो रहोगी, सिल्लो दीदी।'

'क्यों? कै बजा?' जमुहाई लेते हुए उसने पूछा।

'आठ बज रहे होंगे।'

'आठ बजे....!' वह अत्यन्त आश्चर्य से बोली।

'आज तो दिन का अन्दाजा ही नहीं लगा।' इतना कहते हुए वह एक झटके में उठ बैठी।

'तबीयत तो ठीक है न।' सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए छोटी बीबी बोली।

'क्यों मेरी तबीयत में क्या हुआ है?'

'हूँ...तुम समझती हो कि जैसे मैं कुछ जानती ही नहीं...। मेरी बात मानती नहीं हो आगे पछताओगी। कहती हूँ डाक्टर को दिखाओ पर ध्यान ही नहीं देती हो।...रात रात भर नींद नहीं आती और कहती हो मेरी तबीयत में क्या हुआ है।' उसने मुँह बनाते हुए कहा जैसे कोई बड़ी बूढ़ी अपनी बेटी या बहू को डाट रही हो।

उसके कहने के लहजे पर सरला को हँसी आ गयी, पर छोटी बीबी इतनी गम्भीर थी कि सरला की हँसी भी अधिक देर तक न टिक सकी और वह साधारण मुद्रा में बोली—'पर आज रात तो हमें नींद खूब आयी।'

'फिर वही झूठ बात। बार बार कहती हूँ कि आपस के लोगों से बातें कहीं छिपानी चाहिए...और फिर कुछ छिपाने लायक बात भी तो हो। पता नहीं तुम्हें हर बात छिपाने में क्या मजा आता है।...कहती हो, रात को नींद खूब आयी और रात भर बगीचे में घूमता कौन रहा।' उसका स्वर इस बार पहले से अधिक उग्र था।

सरला तो समझ रही थी कि इसे क्या मालूम होगा कि रात मे मै सोती रही या जागती रही, पर अब उसे अपनी भूल मालूम हुई। वह झेंप गयी। उसकी आँखें नीची हो जाती पर वह मुस्करायी। मुस्कराहट लज्जा के लिए कवच और ढाल दोनों का कार्य करती क्योंकि इससे वह छिप भी जाती है और इसी पर वह प्रहार भी रोकती है।

उसे आश्चर्य था कि छोटी बीबी को रात मे मेरे बगीचे में घूमने का समाचार मालूम कैसे हो गया। केवल महादेव ने ही तो देखा था। और कोई तो दिखलायी नहीं पड़ा। कौन जाने और किसी की भी छिपी आँखें मेरे पीछे पड़ी हों। पर ऐसा तो संभव नहीं लगता। तो क्या महादेव ने ही प्रचारित किया होगा? हे भगवान तब तो उसने और कुछ कहा होगा। चुपचाप एक ही क्षण में उसके मस्तिष्क ने यह सब सोच लिया। कुछ भयानक आशंकाएँ उसकी कल्पना में नाचने लगीं। भय से उसकी शिराओं में रक्त की गति कुछ तेज हुई। वह अत्यन्त चिन्तित और गम्भीर दिखाई पड़ी।

'सोचती क्या हो ? चलो आज शाम मैं तुम्हें डा० शुक्ला के यहाँ लिवा चलूँ। अभी से ही इलाज हो जायगा तो जल्दी छुट्टी मिल जायगी।...रोग और पाप छिपाने से सदा बढ़ते ही हैं।'

सरला पुनः मुस्करायी और मुस्कराती ही रही फिर बहुत सम्भल कर बोली —'आखिर तुम्हें मेरे बगीचे में घूमने की बात कैसे मालूम हुई।'

'क्यों बताऊँ ? इससे तुमसे मतलब ?'—शोख भरी अल्हड़ आवाज थी उसकी।

'भला सुनूँ तो !'

'जी नहीं, भला सी० आई० डी० डिपार्टमेन्टकभी बताता है कि अमुक बात मुझे कैसे मालूम हुई। उसका काम तो सही बात मालूम करके बताना है।'

'अच्छा जी, तो आप सी० आई० डी० हैं।'

'जी हाँ। आप ऐसी डूबकर पानी पीनेवालों के लिए मैं सी० आई० डी० का ही काम करती हूँ।'

चोर का जी आधा। पर वह तो चोर नहीं थी, फिर भी 'डूबकर पानी पीने' इस मुहावरे के प्रयोग ने सरला की आशंका को और भी प्रौढ़ बना दिया। उसने सोचा महादेव ने यहाँ जरूर प्रचारित किया है कि सरला रात को छोटे सरकार के पास गयी थी, तभी तो इसने डूबकर पानी पीने की बात कही।

सरला के मन में भय के साथही साथ क्रोध का भी जन्म हुआ क्योंकि इस झूठे लांछन का विरोध करने की प्रबल कामना उसके मन में तूफान की तरह उठ रही थी, फिर वह कुछ सोच समझकर चुप ही रही।

अपने को बहुत दबाकर स्वाभाविक आवाज में बोली—'अच्छी बात है। अभी तक तो मैं कुछ ही बाते छिपाती रही, पर अब इस सी०आई०डी० से सभी बातें छिपाऊँगी।' वैसी ही शोख अल्हड़ता का प्रदर्शन उसने भी किया।

'..... और यह सी०आई०डी० सभी छिपी बातो का पता लगा लेगी, समझी।' छोटी बीबी बड़ी तपाक से बोली। और फिर जोर से हँस पड़ी।

उसकी हँसी का साथ सरला की हल्की मुस्कराहट ने दिया।

'तुम चाहे बताओ; चाहे न बताओ, पर मैं तो समझ ही गयी कि तुमसे किसने कहा।'

'बड़ी आयी है समझने वाली। .....अच्छा बताओ, मुझसे किसने कहा?'

'महादेव ने' उसने झट से जवाब दिया।

'चलो......चलो, खूब समझा है आपने।' जिस सूत्र से सूचना मिली थी उसे छिपाने के लिए छोटी बीबी ने गहरा रूपक दिया। पर उसकी हँसी ने सब पर पानी फेर दिया। सरला ताड़ गयी और अन्त में उसने भी स्वीकार किया कि महादेव ने ही उसे बताया है।

'तब वह कुछ और भी कह रहा था?' सरला की जिज्ञासा ने उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित किया, यद्यपि वह इस प्रकार का प्रश्न पूछना नहीं चाहती थी।

'हाँ, हाँ..... बहुत सी बातें उसने कहीं।' वैसे ही इठलाती हुई छोटी बीबी ने कहा।

'क्या बताया ?'

'यही कि सिल्लो दीदी रात को बगीचे में घूमती रहीं, कूदती रहीं... दण्ड बैठकी करती रहीं..... ।'

'बस...बस...बस । अब मत बताइये । मुझे मालूम हो गया कि उसने बहुत कुछ बताया है ।' वह खुलकर हँसी । उसे कुछ सन्तोष हुआ । अपने प्रति अनर्गल प्रचार की आशंका उसे कुछ कम हुई ।

फिर उसने बिस्तर लपेटा और छोटी बीबी के साथ ही मालकिन के कमरे में आयी ।

□ □ □

जैसे कठोर अध्यापक की कक्षा से जँगरचोर विद्यार्थी भाग जाते हैं वैसे ही इस समय मुन्नी भी कहीं खिसक गयी थी, क्योंकि यह उसके दूध पीने का समय था ।

पानी बरसना बिल्कुल बन्द था, पर आकाश में बादल अब भी वायु के पंखों पर उड़े चले जा रहे थे । हवा मस्त थी । वह वृक्षों को झकझोर कर जब सनसनाती आवाज पैदा करती तब लगता जैसे पृथ्वी की रागिनी फूट पड़ी हो ।

जब सुखिया ने आकर कहा कि मुन्नी तो मालकिन के पास भी नहीं है, तब सरला खुद उसे खोजने निकली । ज्योंही वह बाहर बगीचे में गयी त्योंही उसी सड़क के किनारे वाले ऊँचे चबूतरे पर वह फुदकती

नजर आयी। उसे देखकर वह चुपचाप लौटी और भोजनालय की ओर दूध लेने बढ़ी।

यहाँ घर के सभी नौकर बैठकर चाय पी रहे थे। रोज का ही यह नियम था कि जब घर के सभी चाय पानी कर लेते थे तब ये नौकर भोजनालय में ही बैठकर चाय का आनन्द लेते थे। इसमें उन्हें किसी प्रकार की रुकावट भी नहीं थी। छोटे सरकार और मालकिन को क्या मालूम कि घर में क्या होता है। छोटी बीबी सब कुछ अवश्य जानती हैं, पर वह भी किसी से कभी कुछ कहती नहीं।

इस समय चाय की चुस्की के साथ ही साथ उनकी बातचीत भी बड़े नाटकीय ढंग से चल रही थी। कभी वे गम्भीर दिखाई देते और कभी जोर से हँस पड़ते थे। कभी उनका परिहास अट्टहास के रूप में परिणत हो जाता था। इस नाटक की प्रमुख भूमिका कर रहे थे भगेलू और महादेव। विचित्र अदा से भगेलू ने मुँह बनाकर और कमर हिला कर कुछ कहा। ठीक वैसे ही महादेव ने उसका जवाब दिया और फिर सब हँस पड़े।

सरला ने दूर से ही यह नाटक देखा, किन्तु बातचीत क्या हो रही है इसका वह अनुमान न लगा सकी। किन्तु उसे यह विचित्र और रहस्यमय अवश्य जान पड़ा। वह वहीं खड़ी थी। सुखिया उसी ओर आयी और बिना उससे कुछ बोले घृणाभरी कनखियों से उसे देखकर उसकी उपेक्षा करती हुई आगे बढ़ गयी।

आज उसे सब कुछ नया-नया लगा, बिल्कुल नया। सारे आदमी ही आज उसे बदले नजर आ रहे थे मानो सबपर एक दूसरा ही रंग चढ़

गया हो। आखिर यह रंग किसका ? उसके दिल और दिमाग में यही प्रश्न था।

धीरे-धीरे अत्यन्त अनमनस्क सी भोजनालय की ओर बढ़ी, पर उस मार्ग से नहीं जो सीधे उसके द्वार की ओर जाता था, वरन् किनारे किनारे, जिससे लोग उसे आती देख न सकें। आज पता नहीं क्यों वह किसी के सामने जाना नहीं चाहती थी। पता नहीं क्यों आज हर व्यक्ति से वह अपने को छिपा रही थी। पर क्या ऐसा सम्भव हो सकता था ?

जब वह निकट पहुँची तो भोजनालय में होती हुई बातचीत स्पष्ट सुनाई पड़ी।

महाराज—...पर देखने में तो वह बड़ी सीधी लगती है।

रामसमुझ—जरूर, जरूर।...भला आपको सीधी क्यों न लगेगी। आपभी तो हड़प्पू (छोटे सरकार) के ही गोल के जो ठहरे।

सब जोर से हँस पड़े।

भगेलू—हाँ रामसमुझ, ठीक कहते हो। यह बूढ़ा ब्राह्मण भी कम लासा लगानेवाला नहीं है। क्या जानते हो। हो सकता है, रात को वह हड़प्पू की सेवा में रहती हो और दिन में इस बूढ़े बाबा के पद पखारती हो।

महाराज—भाई मुझे, इसमें मत सानो।

भगेलू—अरे, इसमें सानने की क्या बात है। यह तो अपने अपने दिल की बात है, प्रेम का सौदा है...।

रामसमुझ—सो तो है ही।......लेकिन जरा महाराज, उससे और प्रेम से बोलो।

भगेलू—और जरा उसकी दाल में और घी छोड़ दिया करो।

महादेव—अरे वाह! तब तो मैदान तुम्हीं मार लोगे, महाराज। अगर एक रात भी तुम्हारे पास आगयी, तब सरग ही दिखाई पड़ेगा, ...स्वर्ग। जिन्दगी सुफल हो जायगी।

भगेलू—कैसी अच्छी तरकीब है, महाराज। बस आज से ही आजमाइस करो।...है बड़ी करारी औरत।

फिर सबके सब खिलखिलाकर हँस पड़े। वातावरण जैसे काँप उठा। इसके बाद शान्ति तो नहीं थी, पर कुछ ऐसी बात होने लगी, जिसका सम्बन्ध इन बातों से नहीं था, किन्तु इतना आकर्षक एवं मनोरंजक विषय इतनी जल्दी छूट कैसे सकता था। सरला को पुनः सुनायी पड़ा।

महाराज—क्यों महादेव, क्या वह सचमुच रात में हड़प्पू के पास गयी थी?

महादेव—तो क्या आपको मेरी बातों का विश्वास नहीं होता।

महाराज—नहीं भाई विश्वास तो है, पर कभी कभी तुम भी तो हवा में सुतली बटते हो।

महादेव—नहीं महाराज, विश्वास करो। यह उतना ही सत्य है जितना यह कहना कि तुम जीवित हो।

रामसमुझ—क्यों रे, तुमने उसे सचमुच हड़प्पू के पास देखा था। क्या कर रही थी वह।

महादेव—यह तो मैने नहीं देखा।

रामसमुझ—हाय रे, तब तुमने देखा ही क्या ? असली चीज तो देखी ही नहीं।

भगेलू—अच्छा हुआ जो नहीं देखा, नहीं तो जब ताव चढ़ता तो क्या करता ?

रामसमुझ—करता क्या ? किसी पेड़ के तने से लिपट जाता और बोलता—अरे आओ मेरी जान।

सब बड़े जोर से हँस पड़े।

अब एक क्षण भी सरला का वहाँ रुक सकना कठिन हो गया। उसके सामने जैसे सारी पृथ्वी नाच रही थी। उसका सिर चकराने लगा। उसे स्वयं लगा जैसे वह धरती में समा जाना चाहती है और धरती की गरम गरम उसाँस उसके दिमाग में समा रही है। उसका मस्तिष्क जलता जा रहा है। यह आग धीरे-धीरे नीचे उतर कर उसके दिल में समा गयी। दिल और दिमाग के जलन में उसे सारा विश्व जलता दिखायी दिया। उसे लगा जैसे उसके चारों ओर आग जल रही है और बीच में वह खड़ी है।

उसी दम वह उलटे पाँव लौटी, पर अत्यन्त शीतलता से; बड़े धीरे-धीरे। मानों उसके चारों ओर जलने वाली आग भी उसके साथ ही चल रही हो और वह सम्हल-सम्हल कर कदम रखती चली जा रही हो कि कहीं यह आग अँचरा न पकड़े।

सबसे अच्छा और सच्चा साथी मनुष्य का हृदय होता है। जब आपत्ति में कोई साथ नहीं देता; उसकी आवाज तब भी ढाढ़स बँधाती है। सरला के हृदय ने भी उससे कहा—सरला घबराओ मत यह तुम्हारी

अग्नि-परीक्षा है। ऐसी ही चारों ओर अग्नि की विशाल लपटें थीं और बीच में निर्दोष सीता खड़ी थी। क्या वे लपटें सीता का कुछ बिगाड़ सकीं?

किन्तु उसके मस्तिष्क ने दिल को शीघ्र ही जवाब दिया—'पर सीता को भी तो लांछन लगा। अग्नि की ज्वाला में सोने की तरह तपकर निकलने पर भी उसे जीवन भर दुख और विषाद की ज्वाला में निरन्तर जलना ही पड़ा।'

□ □ □

वह बाहर बगीचे में आ चुकी थी। अत्यन्त शिथिल और विषण्ण दिखायी पड़ी। उसके मस्तिष्क में मंथन चल रहा था और धर्म के चरण जीवन-पथ पर बड़ी तेजी से काँप रहे थे जैसे तूफान में दीपक की लौ।

उसे लग रहा था; मानो वह विशाल उद्वेलित सागर के वक्षस्थल पर बिना पतवार की नौका में है। न आर सूझता है और न पार। घने अँधेरे में ऊपर आकाश और नीचे भूखे सागर की मौत से भी भयानक चीख है। वह घबरा कर चारों ओर सहारे के लिए हाथ बढ़ाती है, पर कहीं कुछ नहीं। हाथ में आती है सर्वव्याप्त अन्धकार की अस्तित्वहीन केवल कालिख।

वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो बगीचे के बीच के फव्वारे के पास खड़ी थी। उस समय प्रकृति अपने रङ्ग में बाउर थी। पर उसके लिए तो वह रेगिस्तान के जलते हुए बालू से भी अधिक जल रही थी।

किन्तु उसका स्वप्न उस समय भंग हुआ जब मुन्नी उसके पैरो से लिपट कर झकझोरती हुई बोली—'सिल्लो दीदी, सिल्लो दीदी, देखो तो सड़क पर क्या है ?' उसकी ध्वनि में भय और शंका थी।

'क्या है बेटी ?' सरला ने पूछा।

'अरे दीदी, ढेर से सिपाही बहुत से आदमियों को रस्सी में बाँधकर पकड़े लिए आ रहे हैं। उनके पीछे ढेर के ढेर आदमी हैं।' मुन्नी की मुखमुद्रा आश्चर्य एवं भय दोनों का प्रदर्शन कर गयी।

जब मुन्नी उसकी धोती पकड़ कर आगे चली, तब उधर जाने की इच्छा न होते हुए भी सरला बढ़ी चली गयी जैसे ढाल की ओर पानी बढ़ता है।

जब दोनों सड़क के किनारे वाले ऊँचे चबूतरे पर चढ़े तब भीड़ बिल्कुल निकट आ चुकी थी। रस्सी में बँधे तो थे केवल सात आदमी, पर पुलिस की संख्या बीस पच्चीस से भी ऊपर थी। उनके पीछे बड़े बूढ़े और बच्चों का भारी समुदाय था।

दोनों गौर से देख रहे थे, पर सरला से अधिक जिज्ञासा मुन्नी के चेहरे पर थी। वह कभी भीड़ की ओर देखती और कभी उतनी ही गम्भीरता से अपने सिल्लो दीदी का चेहरा निहारती।

गहरे होहल्ले के बीच भी अत्यन्त निकट होने के कारण भीड़ के कुछ लोगों की बातचीत इस चबूतरे से साफ सुनाई पड़ रही थी। इसी से सरला ने किसी से कुछ पूछा नहीं पर सब समझ लिया।

मुन्नी बार-बार टोकती जाती थी—'क्या है दीदी ?'

जब वह सब समझ गयी तब बोली—'पास के गाँव में पुलिस

ने धावा मारा है। ये लोग शराब बनाने वाले हैं। इन्हें वह पकड़ कर ले जा रही है।'

'शराब क्या होता है, दीदी?'

अब सरला क्या जवाब दे कि शराब क्या होती है, किन्तु मुन्नी को तो अपने प्रत्येक प्रश्न का उत्तर चाहिए। उसके सिर पर परमात्मा ने प्रश्नो और शंकाओं की बहुत बड़ी गठरी रखकर इस संसार में भेजा है। जब से उसकी चेतना की आँखें खुलीं तब से वह बराबर उन्हीं प्रश्नो का उत्तर खोजती। ऐसे प्रश्नों की कभी भी उसके पास कमी न रहती।

वह कुछ न कुछ उत्तर पाकर ही सन्तुष्ट होती है। सरला मुन्नी के इस स्वभाव को अच्छी तरह जानती थी। अतएव उसने इस बार भी कुछ न कुछ उत्तर दे ही दिया—'शराब एक ऐसी चीज होती है, जिसके पीने से नशा हो जाता है।'

'ओऽऽहो, अब समझी। वह लाल-लाल होती है न। बोतल में रखी जाती है?'

सरला ने चुपचाप 'हाँ' का संकेत किया।

'तब तो पापा के पास भी है।'

'तुझे कैसे मालूम रे?'

'एक दिन जब पापा आफिस गये थे तब भगेलू ने मुझे बोतल दिखाकर कहा था देखो इसे पीने से नशा होता है।··· ·····वह कहता था, 'पापा रोज शाम को इसे पीते हैं। उन्हें बहुत अच्छा लगता है।' वह बड़े ही आकर्षक ढङ्ग से मुँह बनाते हुए बोल रही थी और अन्त में

विनम्र याचना के स्वर में कहा—'दीदी एक दिन मुझे भी पापा से माँग कर पिला दो।'

'धुत, इसे बच्चे नहीं पीते।' श्री को यह बात अच्छी नहीं लगी। शायद वह पूछती 'क्यों?' पर उसने हठ करते हुए इतना ही कहा—'नहीं, नहीं, मैं जरूर पीयूँगी, जब पापा पीते हैं तब मै भी जरूर पीयूँगी।'

'नहीं बेटी, तुम्हारे पापा तो दवा की तरह इसे पीते है।'

'तो क्या पापा बीमार हैं?'

अब वह 'हाँ' करने के लिए विवश थी।

कदाचित् अब उसका प्रश्न होता कि पापा को क्या हो गया है? पर वह कुछ पूछ न सकी, उसकी निगाह दूर निकल गयी भीड़ की ओर मुड़ी और उसने फिर पूछा—'तो शराब बनाने वाले को पुलिस पकड़ती क्यों है, दीदी।

'क्योंकि यह नशीली चीज है। इसे सरकार खुद बनवाती है।'

'तो क्या पुलिस सरकार को नहीं पकड़ती?'

सरला बालिका के अज्ञान पर हँस पड़ी। वह बोली—'नहीं'

'तब वह और लोगों को क्यों पकड़ती है; पहले सरकार को पकड़े।'

'और लोगों के लिए शराब बनाना जुल्म है, पर सरकार के लिए नहीं।' सरला ने समझा तो दिया, किन्तु उसके समझ में कुछ न आया। पर उसने कोई दूसरा प्रश्न नहीं किया। उसके दिमाग में तो गूँज रहा था—शराब कैसी होती है? यह पापा को क्यों अच्छी लगती है? दवाई तो कभी खाने में अच्छी नहीं लगती।

बालकों का मस्तिष्क बालू के उस समतल ढेर के समान होता है जिस पर बड़ी आसानी से लिखा जाता है और जो आप से आप मिट भी जाता है। पर मस्तिष्क पर ऐसे सभी मिटी लिखावटों का अप्रत्यक्ष प्रभाव तो रहता ही है। इस समय भी ऐसा ही हुआ। उधर फूलों पर मडराती रंगीन तितली दिखायी पड़ी, इधर मुन्नी सब कुछ भूलकर उसके पीछे बेतहासा दौड़ी और फिर सरला भी चली।

अपना नन्हा सा हाथ बढ़ाए मुन्नी इस फूल से उस फूल पर तितली का पीछा करती रही। अन्त तक तितली उसके हाथ न आयी। तब सरला हँसती हुई बोली—'अब तो तुम हार गयी, मुन्नी। अब कहो तो मै इसे पकड़ लूँ।'

'हाँ पकड़ो, दीदी।' वह प्रसन्न हो बोली।

'अच्छा, मैं तुम्हें पकड़ कर दूँ, तब तो तुम दूध पी लोगी न।'

मुन्नी ने कहा—'हाँ'।

—सात

पहली घटना के ठीक एक दिन बाद।

सन्ध्या के करीब साढ़े चार बज रहे थे। आज आकाश बच्चों के हृदय की तरह निर्मल और वृक्षों की शिखर पर चमकती धूप जवानी के जोश की तरह तेज थी। छोटे सरकार के बगीचे में 'मारवाड़ी व्यापारिक संघ' की मीटिंग होने वाली थी। यह अखिल भारतीय संस्था है। इसकी वाराणसी शाखा के सेक्रेटरी छोटे सरकार हैं। नगर के सभी व्यापारी इस संस्था के सदस्य हैं, किन्तु चार पाँच व्यापारियों को छोड़कर शेष उतने सक्रिय नहीं हैं।

सभा की तैयारी शुरू हो गयी थी। खुले लान पर ही टेबुल लग रही थी। भीतर कमरे से शोफा सेट बाहर निकाला जा रहा था। घर के करीब-करीब सभी नौकर तैयारी में लगे थे। छोटे सरकार खुद खड़े होकर कुर्सियाँ लगवा रहे थे। सारा बगीचा जाग उठा था, क्योंकि बीच-

बीच में वे व्यर्थ ही तड़प उठते थे। कभी कहते—तुम सब गदहे हो। इस कुर्सी को इधर नहीं उधर लगाओ और कभी कहते कि नहीं जहाँ पहले रखी थी वहीं रखो। इससे प्रत्येक कुर्सी लगाने में चार बार इधर से उधर करना पड़ता था। जो काम एक नौकर से हो जाता, वह छोटे सरकार की शान और बुद्धिमानी से चार नौकर भी नहीं कर पा रहे थे।

यों तो गर्मी नहीं थी, पर जब कुर्सियाँ लग गयीं तब छोटे सरकार ने पेडेस्टल फैन लाने के लिए कहा। भगेलू और रामसमुझ ड्राइङ्गरूम की ओर फैन लाने बढ़े, पर आफिस का अर्दली और छोटे सरकार का मुँहलगा नौकर महादेव बोल उठा—हुजूर, फैन की कोई जरूरत तो नहीं मालूम होती। हवा तो यों ही बह रही है। धीरे धीरे अब रात तक ठंढक बढ़ती ही जायगी।'

प्रबन्ध के मामले में छोटे सरकार को किसी दूसरे की राय किसी परिस्थिति में भी पसन्द न थी। अच्छा हो या बुरा वह करता अपने मन का ही था। इसी से महादेव की बात सुनते ही वह तड़पा—तुम गदहों से राय कौन माँगता है। सब जगह अपना दिमाग लगाने की कोशिश मत किया करो।

वे दोनों नौकर जो पंखा लेने जा रहे थे और महादेव की बात सुन कर रुक गये थे, तड़प सुनते ही चुपचाप कमरे की ओर दौड़े। महादेव भी भींगी बिल्ली बन गया किन्तु मन ही मन सोचने लगा कि यदि पानी आ जायगा तो इतना सामान कैसे हटाया जायगा? पर अब कुछ बोलने की उसकी हिम्मत नहीं थी।

इसके बाद वह भीतर गया और लकड़ी का लम्बा ऊँचा लान लैम्प

ले आया। पंखा और लैम्प दोनों ठीक स्थान पर लगा दिये गये। तब खदेरू टेबुल पर गुलदस्ता सजा गया।

इस प्रकार तैयारी पूरी हो गयी। अब सन्ध्या अपना रंगीन अञ्चल भी बटोरने लगी थी। सूगर मिल के कनोड़िया, मोटर्स फिटिंग वर्क्स के केजरीवाल, सुभाष आयल मिल के ढुनढुनियाँ आदि आ गये थे। उनमें प्रत्येक के साथ दो एक आदमी और थे, जिनसे आप से मतलब नहीं, पर यही समझिये या तो उनके मुनीम थे या उनके प्राइवेट सिक्रेटरी।

जब तक सभी लोग नहीं आये हल्की फुल्की बातचीत चलती रही।

'क्यों सेठ जी, आज मीटिंग तो—क्या नाम है कि-आपने रखी, पर कोई दिल बहलाव का प्रोग्राम रखा कि नहीं, ऐ जी।'—कनोड़िया जी ने कहा।

'इस दिल बहलाव से आपका क्या मतलब है?' मुस्कराते हुए केज-रीवाल ने पूछा।

'यह भी भला पूछने की बात है जी। अरे अपने दिल से पूछो, तुमने भी तो बहुत दिनों तक तबला बजाया है। ढुनढुनियाँ जी बोले।'

सब ठहाका मार कर हँस पड़े।

'भला बताओ जी, अपने राम को तो मीटिंग उटिंग से विशेष मतलब नहीं—क्या नाम है, जी-एकाध जरा छलककर आसावरी की ठुमरी हो जाय और हल्की हल्की जानी वाकर की खुमार हो, फिर मजा आजाय।' अपने विशालकाय उदर पर हाथ फेरते हुए कनोड़िया जी बोले। उनकी बतीसी खिल गयी।

'अरे वाह रे कनोड़िया जी। क्या फरमाया है आपने कि हम सबका

मन डंड-बैठकी करने लगा।' छोटे सरकार बोले। फिर जोर की हँसी हुई।

'लेकिन डंड-बैठकी करने के बाद ही तो चाहिए।' केजरीवाल के साथ आया हुआ अधेड़ व्यक्ति कहते हुए मुस्कराया।

'हाँ, यह पते की कही कालूरामजी। क्या नाम है कि...।' कनोड़िया जी ने हाथ मारते हुए कहा।

इसी प्रकार व्यर्थ की बातों में कुछ समय बीता। अब तक और भी लोग आ चुके थे। इनमें छोटे सरकार के अखबार के प्रधान सम्पादक और मैनेजर भी थे। यों तो नरेन्द्र आमन्त्रित नहीं था फिर भी छोटी बीबी से मिलने आया था, इसलिए वह भी पीछे की कुर्सी पर चुपचाप जाकर बैठ गया। छोटी बीबी अपने पिता के बगल मे सोफा पर बैठी थी।

सरला महाराज के साथ रसोई घर में जलपान तैयार करने मे लगी थी। वहाँ सुखिया और रमदेई भी उसकी सहायता में थीं। सरला अत्यन्त गम्भीर हो काम कर रही थी, वह पहले जैसी न तो लोगों से बोल रही थी और न वहाँ पर आत्मीयता का ही अनुभव कर रही थी। महाराज भी शान्त था। बीच-बीच में अन्य नौकर आकर रसोई घर मे झाँककर विचित्र ढंग से मुस्कराते हुए चले जाते थे।

एक बार भगेलू भी आया और अत्यन्त बेहूदे ढंग से महाराज को सम्बोधित कर बोला—'क्या महाराज,' और कनखी मारकर मुस्कराता हुआ चला गया।

इधर सभा शुरू हो गयी थी। ढुनढुनियाजी भाषण कर रहे थे।

उनकी भाषा भाव से अधिक जोरदार थी। वह बोल रहे थे......'आज कल सरकार बराबर व्यापारियों को परेशान कर रही है। अब तक इंकम-टैक्स, सुपरटैक्स के अतिरिक्त बहुत सी डियुटियाँ तो थीं ही, पर अब यह सेल टैक्स, सम्पत्तिटैक्स, उपहार टैक्स, एक्स्पेन्डिचर टैक्स, डेथ डियुटी आदि अनेक और प्रकार के टैक्स लगाती जा रही है। जिधर देखिए उधर से ही पैसा चूसना चाहती है। केवल इतनी बात होती तो भी गनीमत थी। अब हमारी प्रतिष्ठा पर भी आँच आ रही है। आप सब जानते हैं कि देश के चोटी के व्यापारी सुखाड़ियाजी को पुलिस किस प्रकार हथकड़ी लगाकर थानेपर ले गयी। भला कभी अंग्रेजों के जमाने में भी ऐसा हुआ था? आज तो दो दो, तीन तीन सौ रुपये मासिक पानेवाले ये इंकम टैक्स और सेल टैक्स के इन्सपेक्टर हम लोगों पर कैसा रोब गालिब करते हैं जैसा दरोगा शायद ही चोरो पर करता हो। तेल मिलवालों की तो जान में हरदम आफत रहती है। जब देखिये तभी इन्स्पेक्टर आ जाता है और लगता है तेल की प्यूरिटी देखने। अरे इन सालों से कोई पूछने वाला नहीं है, नहीं तो पूछता कभी किसी ने तुम्हारे माँ-बाप की भी प्यूरिटी देखी है। पहले तुम उनकी प्यूरिटी का पता लगाओ तब चलना तेल की जाँच करने। हियर...हियर.. ताली बजती है और सब जोर से हँस पड़ते हैं।

और तो और राहू केतू की तरह सदा पीछे पड़े रहते है ये कम्यूनिस्ट और फैक्टरी ऐक्ट। चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण की तो कोई निश्चित तिथि भी होती है, पर ये कम्यूनिस्ट और फैक्टरी ऐक्ट कब ग्रस लेंगे, इसका कुछ ठीक नहीं। जरा सा किसी कर्मचारी को निकालिए, बस

लाल झण्डा फैक्टरी के फाटक पर गड़ जायगा और लगेंगे नारे लगाने मानो मिल इनके बाप की है, ये जो चाहें वे करा लेंगे।

ये कम्युनिस्ट कमीने तो अब बिल्कुल माथे पर चढ़ गये हैं। कहते हैं, मिल हमारी है और हम सब उनके नौकर हैं। दिल कहता है कि कह दूँ, पहले जाकर शीशे में अपना मुँह तो देखो तब चलना हम लोगों को नौकर रखने। पर क्या करूँ, कुछ करते भी तो नहीं बनता है। 'जबरा मारे रोवै न दे' वाली कहावत है ···।

भइया यदि अब हम लोग नही जागे और एक होकर इन सारी परिस्थितियों का सामना नहीं किये तो वह दिन आते देर नहीं है जब हम सबको मजदूरी करनी पड़ेगी। "......अब तो सरकार और जनता हमें दोनों का ही सामना करना...।"यह जोशीला भाषण देर तक चलता रहा पर इन विचारों के अतिरिक्त उनमें और कोई दूसरी बात नहीं थी।

फिर और लोगों ने भी अपने अपने विचार व्यक्त किए। सबने बड़े जोर शोर से श्री ढुनढुनियाँजी का समर्थन किया, पर सबकी बातें एकही किस्म की थीं कि...हमारा मोरचा बहुत तगड़ा होना चाहिए। आज तक हम समाज पर शासन करते रहे हैं। अब समाज और सरकार दोनों को अपनी मुट्ठी में रखना होगा तभी हम जीवित रह सकेंगे, तभी हमारा अस्तित्व रहेगा।

इसके लिए निश्चित हुआ कि प्रत्यक्ष तो कांग्रेस की मदद करनी चाहिए और छिपे-छिपे विरोधी पार्टियों की भी मदद करनी चाहिए जिससे वे कमजोर न होने पायें। तब कांग्रेस इन्हीं से भिडने में फँसी रहेगी और हम लोगों की कौड़ी चित्त पड़ती रहेगी।

इस विषय में केजरीवालजी ने शंका प्रकट की कि विरोधी पार्टियों से आपका मतलब क्या है ? क्या कम्यूनिस्टों की सहायता करनी चाहिए ? गुप्तजी—इसमें हरज क्या है ? खुलेआम कुछ मत कीजिए। प्रत्यक्ष में तो आप कांग्रेस के इलेक्शन फंड में रुपया दीजिए। गाँधी-स्मारक-कोष में धन दीजिए। लेकिन यदि कोई कम्यूनिस्ट भी आपकी सहायता चाहे तो उसे भी दो चार हजार दे दीजिए। इसमें क्या जाता है ?

कालूरामजी—हाँ यह तरकीब है अच्छी। इसमें तो दोनों हाथों लड्डू है। कांग्रेसी तो खुश रहेंगे ही। इसमे कम्यूनिस्ट भी सोचेंगे कि बिचारे ने नाजुक समय में हमारी सहायता की है। फिर लाल झण्डा उतनी जल्दी से आकर फैक्ट्री के फाटक पर नहीं गड़ेगा और यदि गड़ेगा भी तो उसमें ललाई वैसी नहीं रहेगी।

केजरीवालजी—ठीक तो है, पर इतना रुपया आखिर दिया कैसे जायगा। हम लोग तो बिक जाँयगे।

कनोड़ियाजी—और क्या नाम है—कि सबको खुश करना तो बहुत कठिन है जी। कहावत है कि सबका मन रखते रखते वेश्या हो जाये बाँझ।

कनोड़ियाजी की बात पर सब हँस पड़े।

गुप्तजी—नहीं कनोड़ियाजी। भला हम लोगों के रहते आप बाँझ हो जायेंगे। (इस बार बड़ी जोर की हँसी हुई।) इसकी भी तरकीब है। देखिए फैक्टरी के सभी कर्मचारियों पर जो जैसा हो आठ आने से लेकर पाँच रुपये तक गाँधी-स्मारक-निधि का चन्दा लगा दीजिये। बड़े से बड़ा आफिसर भी आपको इस काम के लिए मना नहीं करेगा। और कम से कम इस प्रकार इस शाखा में पचास हजार रुपया आ जायगा। इतना

तो गाँधी-स्मारक-निधि के लिए यहाँ से बहुत है। अब रह गयी एलेक्शन फण्ड की बात। उसके लिए भी एक बहुत अच्छा तरीका है। जब कभी भी आपको अपनी फैक्टरी में आदमी रखने हों, तो उसका विज्ञापन कई अखबारों में खूब कराइये और उसमें यह लिख दीजिए कि आवेदन छपे फार्म पर करना होगा; यह फार्म दो रूपये में फैक्टरी के आफिस में मिलेंगे और फिर दस बारह हजार फार्म बिक जाना कठिन नहीं। इसकी आमदनी उठाकर एलेक्शन फण्ड में दे दीजिए। अब आपका जो दान खाता बच जाता है उसका रुपया आप बड़ी आसानी से गुप्त रूप में विरोधी पार्टियों को दे सकते हैं।

बही में लिख दीजिए कि इतने रुपये का कंगलों में कम्बल बाँटा गया और दे दीजिये किसी प्रभावशाली नेता को एलेक्शन लड़ने के लिये।

सेठफकीरदास—यह तरकीब तो अच्छी है। साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

केजरीवालजी—लेकिन जब आवेदन पत्र के फार्म दो रूपये के बेंचे जायँगे तो सरकार उसका विरोध न करेगी?

गुप्तजी—विरोध क्या करेगी, सरकार खुद ऐसा ही करती है। रेलवे की अभी वाण्ट निकली थी उसमें भी फार्म के दाम लगते थे।

"लेकिन मैं सोचती हूँ कि जो रुपया आप इस तरह देना चाहते है वही रुपया आप अपने मजदूरों को दे दीजिये और अपनी नीयत साफ रखिये। जब मजदूर प्रसन्न रहेंगे और किसी प्रकार की बेइमानी न होगी तब क्या कांग्रेस, क्या विरोधी पार्टी कोई भी आपका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकतीं।" छोटी बीबी अचानक बोल उठी। क्योंकि बोलने के बाद उसने

शीघ्र ही अनुभव किया कि इस समय न तो मुझे बोलने का अधिकार है और न मुझे बोलना ही चाहिये। पर अब तो गलती हो ही गयी थी।

छोटों की अच्छी से अच्छी बात भी बड़ों के विवेक की आँधी में धूल की तरह उड़ जाती है। यहाँ भी छोटी बीबी के विचार को लोगों ने हँसकर टाल दिया।

केवल कनोड़ियाजी बोले—'अरे क्या कहती हो बेटी, अभीतक—क्या नाम है कि—हम लोगो ने मजदूरों को क्या नही दिया। जो पहिले चार आने पाते थे वह अब दो दो, तीन तीन रुपये पाते हैं।...अरे तुम्हारा क्या नाम है कि भगवान झूठ न बोलवाये जी, . तो अंग्रेजों के जमाने में केवल बड़े बड़े अफसरों को ही डालियाँ भेजी जाती थीं पर अब तो साहब से लेकर अर्दली तक सबको पूजा देनी पड़ती है। आखिर इतना खर्चा आयेगा कहाँ से, यदि सब सचाई से ही काम किया जाय तो। अरे, यह तो अपनी सरकार ही चोरी करना सिखाती है।'

नरेन्द्र और छोटी बीबी को छोड़कर सबने सिर हिलाकर और हुँकारी भरकर एक स्वर से कनोड़ियाजी का समर्थन किया। नरेन्द्र तो कुछ बोल ही नही सकता था वह मन मसोस कर रह गया; नहीं तो वह कुछ ऐसा कहता कि लोग जल उठते। उसके मन में प्रबल आवाज उठ रही थी कि एक ओर तो पानी की तरह पैसा बहाया जाता है और दूसरी ओर जनता भूखों मर रही है; यह दोनों अब अधिक दिनों चलने वाला नहीं है चाहे आप कितना हूँ हाथ पैर पटकिए?

छोटी बीबी को अच्छा नहीं लगा कि बच्चों की तरह उसका गम्भीर विचार उड़ा दिया जाय। इसके बाद वह चुप ही रही और सभा समाप्त

होने के पहले ही वह वहाँ से उठ गयी ; पर नरेन्द्र बैठा रहा और सभा समाप्त होने पर छोटे सरकार से मिल कर गया ।

जलपान के बाद सभा विसर्जित हुई और निश्चय हुआ कि अगली सभा जल्दी ही केडियाजी के गंगा पार के बगीचे में होगी । जहाँ पीने के साथ ही राग-रस-रंग का भरपूर प्रोग्राम रहेगा । इस घोषणा के बाद कनोड़िया जी ने कहा—'हाँऽऽ, तब पता चलेगा कि रईसों की सभा है ।'

सब के चले जाने के बाद मैनेजर और प्रधान सम्पादक बहुत देर तक बैठे पत्र की नीति के सम्बन्ध में बातें करते रहे । जब वे चलने लगे तब छोटे सरकार ने सम्पादक जी को सम्बोधित करके कहा—'देखिए शायद हरिमोहन आपसे मिले और सिफारिश करने को कहे पर सिफारिश मत कीजिएगा ।'

'क्यों, आपने तो उसे नौकरी से पृथक कर दिया है फिर हमारी सिफारिश का क्या प्रश्न ।

'......आज वह आया था । बड़ा गिड़गिड़ा रहा था । कह रहा था, बीबी बीमार है । बच्चे भूखे मर जायँगे । कोई सपोर्ट नहीं है ।' तब मैंने कहा—'भाई मैं तो लाचार हूँ । वर्ष में दो लाख का घाटा हो गया । इतना घाटा सहकर अब मैं अखबार का चार एडिशन निकालने में असमर्थ हूँ । अब तो मैं दो एडिशन बन्द कर दूँगा । तब मैं व्यर्थ आपको रखकर क्या करूँगा ?'

'फिर उसने क्या कहा ?'

'फिर भी गिड़गिड़ाता रहा । तब मैंने जान छुड़ाने के लिए कह

दिया, अच्छा आप एक प्रार्थनापत्र प्रधान सम्पादक से सिफारिश लिखा कर भेज दीजिए। सोचूँगा।'

'अच्छी बात है।' सम्पादक ने सोचते हुए कहा।

'हाँ, वह कितना हूँ कहे पर सिफारिश मत कीजिएगा। मैं अब उसे अपने यहाँ रखने के पक्ष में नहीं हूँ। वह है बड़ा बदमाश आदमी। उस रात इतना कष्ट सह के मैं आफिस गया और जब सुखाड़िया जी की गिरफ्तारी का समाचार निकाल देने के लिए कहा, तो लगा सिद्धान्त बघारने।'

'हाँ हाँ, वह बड़ा विचित्र आदमी है। काम तो तेरह बाइस और बात बहुत।' मैनेजर ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा।

'हाँ भाई वह बड़ा विचित्र है।' वह आश्चर्य की मुद्रा बनाये बोलता रहा—'अरे एक बात का मैंने कभी आप लोगों से जिक्र तक नहीं किया। करता भी क्या, उसमे अपनी ही बेइज्जती थी। उस रात जब मैं दफ्तर मे गया तब देखा कि जनाब अभी अभी सो कर उठे हैं। अख-बार लेट हो गया है, फिर भी एक तरुणी से बैठे इश्क लड़ा रहे हैं। गरम-गरम चाय आ रही है। प्रेम की मीठी बाते हो रही हैं।...'

'रात को तरुणी ....?' सम्पादक को महान् आश्चर्य था।

'हाँ हाँ, दास बाबू रात में आपके विभाग में ही तरुणी थी। मेरा विश्वास न करें तो उस रात जो डियुटी पर कम्पोजीटर और चपरासी रहे हों, उनसे पूछ लें। झूठ थोड़े ही बोलता हूँ।

'तब तो सचमुच. वह बड़ा बदमाश है।' मैं तो उसे सज्जन समझता था।

'अरे छिपा रुस्तम है। डूबकर पानी पीता है।' मैनेजर ने कहा।

इसके बाद दोनो नमस्कार कर चले गये।

न घाटा हुआ था और न अखबार का कोई संस्करण ही बन्द होने वाला था। बात तो कुछ और ही थी। कभी हरिमोहन के मुँह से आफिस में ही निकल गया था कि सेठजी की औरत तो बहुत दिनों से बीमार हैं बिल्कुल बेकार हो गयी हैं। अब वह एक परदेशी तरुणी को रखने वाले हैं बस इसी बात को आफिस के एक कर्मचारी ने छोटे सरकार के कान तक तिल को ताड़ बनाकर पहुँचायी। मक्खनबाजों को जहाँ ऐसा अवसर मिला भला वह चूकने वाले हैं।

इसी पर वह उससे रुठ गये और उसे निकाल दिया।

□ □ □

बाहर से हटाकर सभी सामान कमरों में ठीक-ठीक ले जाया जा चुका था। छोटे सरकार डाइनिंग रूम में बैठकर पुत्री के साथ भोजन कर रहे थे। सरला परोस रही थी।

इसी बीच महादेव आया, बोला—'सरकार, आपसे मिलने एक सज्जन आये हैं।'

'अरे इस समय कौन है जी।' छोटे सरकार ने दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देखा। ११ बज रहे थे। फिर उन्होंने कहा—'जरा नाम तो पूछो।'

'यह जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है जिसमें भोजन करने में भी आफत हो।' अत्यन्त व्यस्तता व्यक्त करते हुए उसने सरला की ओर रुख करके कहा।

कुछ क्षणों में ही महादेव ने एक कागज का टुकड़ा लाकर सरकार को दिया। उसे ध्यान से पढ़कर मुस्कराते हुए उन्होने सरला की ओर बढ़ाया और फिर हँसने लगे।

सरला उस चिट को पढ़ते ही जैसे काँप उठी, मानों उसे बिजली का करेन्ट लगा हो। उस पर लिखा था—'श्यामदेव, प्रधान श्रीमद्भागवत अनाथालय, काशी।' इसके बाद वातावरण गम्भीर हो गया।

जब तक छोटे सरकार भोजन करते रहे तब तक श्यामदेव बाहर बैठा ही रहा। भोजन करने के बाद वे उससे मिलने चले गये।

अपने पिता की विचित्र हँसी, चिट को पढ़कर सरला का एकदम चुप हो जाना, अचानक उसका चेहरा गम्भीर हो जाना और फिर राज भरी खामोशी छोटी बीबी सब कुछ देखती रही। उसे इसमें गहरा राज मालूम पड़ा किन्तु उस समय वह कुछ बोल न सकी। पिताजी के बाहर जाते ही उसने सरला से पूछा—'कौन आया है दीदी।'

सरला सोचती रही। उसके मुँह से बोली न निकली। उसने चुपचाप वह चिट उसके आगे बढ़ा दिया। छोटी बीबी ने उसे पढ़ा। कुछ विचित्र बात तो मालूम न हुई। अनाथालय का प्रधान है; कोई चोर या डाकू थोड़े ही है कि उसके आते ही ऐसी भयमिश्रित गम्भीरता छा गयी। वह बोली—'इसमें कौन ऐसी बात है जो आप घबरा गयीं।'

सरला अब भी चुप थी। सोचती रही। उसकी आँखों के कोने में

आँसू झलक आये थे। सरला ने उसके चेहरे को कई बार गौर से देखा वह सूर्य के प्रकाश में जलते दीपक की भाँति हतप्रभ थी। छोटी बीबी को कुछ दाल में काला मालूम हुआ। अब वह सरला के पीछे ही पड़ गयी कि आखिर बात क्या है ?

दिल्ली की कुतुबमीनार चाँदनी चौक में आकर नाच सकती है, पर एक औरत दूसरी औरत से—और वह भी जो अत्यन्त घनिष्ट हो—बात छिपा नहीं सकती। किन्तु सरला ने अब तक अपने को छोटी बीबी से छिपा रखा था। नारी स्वभाव का यह विराट अपवाद आपको दुनिया का आठवाँ आश्चर्य लग रहा होगा, पर परिस्थितियों ने सरला के नारीत्व की जबान पर ताला लगा दिया था।

वह अब भी अपने सम्बन्ध में छोटी बीबी को कुछ बताना नहीं चाहती थी। पर वह पीछे पड़ी और ऐसी पीछे पड़ी कि कुछ जानकर ही दम लिया। सरला ने उससे अपने साथ घटी बनारस की सभी घटना बता दी।

छोटी बीबी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा—तो तुम अलमोड़ा से नहीं आयी हो

'नहीं।' उसने सर हिला दिया। दो बूँद आँसू आखों से ढुलक पड़े।

'तो तुम्हें मेरे पिता के दोस्त ने यहाँ नहीं भेजा है ?

'नहीं...।'

'तो क्या तुम विधवा भी नहीं हो ?'

'नहीं।' इस बार उसकी सिसकन कुछ तेज हुई।

छोटी बीबी ने जो कुछ उसके विषय में सुना था, सभी झूठा निकला। उसका कुतूहल बढा। वह कुछ भी समझ नहीं पा रही थी आज उसकी सिल्लो दीदी स्वयं एक विराट प्रश्न चिन्ह की भाँति दिखाई दी। उसका आश्चर्य ध्वनित हुआ—'तो तुम कौन हो? कहाँ की रहनेवाली हो? बनारस क्यों आयीं?'

इस बार उसकी सिसकन और तेज हुई। वह रोती हुई छोटी बीबी के गले से लिपट गयी, किन्तु न बोली। उसकी गरम और गहरी सिसकन के बीच उसे साफ सुनाई पड़ा—भगवान् के नाम पर मुझसे यह तीन प्रश्न मत पूछो।

□ □ □

कल अनाथालय का वार्षिक उत्सव होनेवाला था उसकी अध्यक्षता श्याम देव राज्य के एक मन्त्री से कराना चाहते थे। माननीय मन्त्री महोदय ने अध्यक्षता करने की स्वीकृति भी दे दी थी। निमन्त्रण पत्र पर उनका नाम भी छप गया था, पर ऐन मौके पर पता चला कि वे वाराणसी नहीं आ रहे है। मौत कब आयेगी और किसी मन्त्री महोदय का कार्य-क्रम कब बदल जायगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

आज श्याम देव के सामने यह बड़ी समस्या थी। बहुत सोचने समझने के बाद उसने रमेश चन्द्र गुप्त को ही अध्यक्षता के लिए चुना था इसीलिए वह आया था। यदि गुप्तजी अध्यक्षता करना स्वीकार कर लेते, तो बड़ा अच्छा होता। वह बाहर बैठा चुपचाप सोच रहा था।

गुप्तजी से अध्यक्षता कराने में उसके दो लाभ थे। एक तो इनका व्यापारियों पर प्रभाव था, इससे कुछ आर्थिक लाभ की सम्भावना थी। दूसरे अब उसे अच्छी तरह मालूम हो गया था कि सरला गुप्त जी के यहाँ ही है। वह डर रहा था कि उसने अनाथालय की सारी पोल तो इनसे बता ही दी होगी, यह हमारे अनाथालय का भण्डाफोड़ कहीं अपने अखबार में कर दें। इसीसे उसने सोचा कि यदि इन्हे अध्यक्ष बनाया जाता है तो हमारा विरोध नही करेंगे। फिर विरोध करने का मुँह भी तो नही रह जाता। जिस अनाथालय के वार्षिक उत्सव की आप अध्यक्षता करते हैं, जिसके तारीफ मे भाषण देत है उसी का विरोध क्या आप अपने अखबार मे छापेंगे ?

अतएव उसने सारी परिस्थित स्पष्ट करने के बाद अत्यन्त नम्र निवेदन करते हुए छोटे सरकार से कहा—'यदि आप मेरी प्रार्थना मान लेते तो बड़ी कृपा होती।'

'कल तो मेरा समय सुबह से शाम तक बिल्कुल इंगेज है। आप जब कहते ही हैं तो किसी प्रकार कुछ न कुछ समय निकाल कर उपस्थित होने की कोशिश करूँगा। किन्तु, यदि आप अध्यक्ष किसी और को बना लेते तो मुझपर बड़ी दया करते।'

श्याम देव चुप रहा। कुछ क्षणों के बाद पुनः बोला—''फिर आप ही बताइये किसे बनाऊँ ? मुझे तो आप से योग्य कोई दूसरा दिखाई नहीं देता।'

'क्यों...? और कोई मिनिस्टर, नेता या बडा आदमी नहीं मिलेगा।'

श्याम देव समझ गया कि गुरुजी बोली बोल रहे हैं। वह हँसते हुए बोला—'आपसे बड़ा बनारस में कौन मिलेगा ?'

'क्यों, बहुत से लोग है।' दाँतों के बीच ऐसी मुस्कराहट थी जो स्पष्ट दिखायी न पड़ी।

'अरे आप क्या कहते हैं ?...अब तो मैं कान पकड़ता हूँ कि इन मिनिस्टरों और नेताओं की चक्कर में कभी नहीं पड़ूँगा। . मैं कभी ऐसी गलती करता ही नहीं, वह तो अपना रामसमुज जो है उसी पर नेताओं का भूत सवार रहता है। उसी ने मुझे ऐसा फसाया कि क्या बताऊँ। ऐन मौके पर मामला फिस हो रहा है। यह तो कहिए कि आप ऐसे हमारे शुभ-चिन्तक है, जो हर आफत विपत में काम आते है।

छोटे सरकार कुछ सोचते और मुँह में भरा पान चबाते रहे। अत्यन्त गम्भीर मुद्रा मे वे बोले—'आज लोगों की धारणा अनाथालयों के बहुत खिलाफ है। जनता इन्हें भ्रष्टाचार का अड्डा समझती है। और बात भी सही है। नाना प्रकार के कुकर्म ऐसी संस्थाओं में होते है। किसी प्रकार की श्रद्धा लोगों की इनके प्रति रह नहीं गयी। और आप हमें अध्यक्षता करने के लिये कह रहे हैं।...भाई मेरा तो मन नहीं करता।

श्याम देव समझ गया कि सरला ने इन्हे सब कुछ बता दिया है। अतएव बहुत संभल कर बोला—'अब मैं भला आप से क्या कहूँ ? आप तो सब जानते हैं। कहीं दाई से पेट छिपता है ?...और यदि जनता बुरा समझती है तो समझे। जिसे ऐसी संस्था का संचालन करना पड़ता है वही जानता है। पर लोग किसे बुरा नहीं कहते। नेहरूजी की भी

बुराई करनेवालों की कमी नहीं है। इसी हिन्दुस्तान में गांधीजी को गोली मारनेवाला आखिर मिल ही गया। फिर हम लोगो की क्या बिसात।'

यों तो छोटे सरकार ऐसे निमन्त्रण, जिसमें किसी सभा की अध्यक्षता या किसी चीज का उद्घाटन करना होता है, बड़ी खुशी से स्वीकार करते हैं। फिर भी शिष्टता और अपने चापलूस पसन्द स्वभाव के कारण औरतों की तरह नहीं नहीं करते जाते हैं जिसका अर्थ 'हाँ' होता है। श्यामदेव द्वारा की गयी इस प्रशसा की हवा उनके मन के गुब्बारे को बहुत फुला चुकी थी। उन्होंने इधर-उधर की बातें करते हुए उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह बड़ी प्रसन्न मुद्रा में गया।

आकाश में पूर्णमासी का चाँद हँस रहा था। धरती पर जैसे मक्खन पोत दी गयी हो। रिक्सा न मिलने पर श्यामदेव पैदल ही बढ़ा।

यह सारी बात चीत सरला और छोटी बीबी छिपकर सुनती रहीं। उसके चले जाने के बाद वे भी भीतर गयीं।

छोटे सरकार ने सोने के कमरे के निकट पहुँचकर पुकारा 'खदेरू'। पहली आवाज में ही नींद से लड़खड़ाता खदेरू खिदमत में हाजिर हुआ।

छोटे सरकार जब सो कर उठे तो आकाश साफ था, पर अब घने काले बादल घिरते चले आ रहे थे। हवा में कुछ ठंडक आ गयी थी। पानी बरसने की सम्भावना हो गयी थी। घड़ी में साढ़े सात के करीब था और आठ बजे ही उन्हें जाना था। अतएव तैयारी में लगे थे।

रात एक तो बहुत देर से सोये थे, दूसरे सुबह जल्दी ही उठना पड़ा। इससे नींद की खुमारी बनी थी और रह रहकर जमहाई आ रही थी।

बाहर जानेवाला कपड़ा पहन कर वे सोफा पर बैठ गये। खदेरू उन्हें मोजा पहनाने लगा। गहरी अँगड़ाई लेते हुए उन्होंने महादेव को पुकारा और कहा—'जलपान लेते आओ, और देखो चाय और मीठा मत लाना केवल नमकीन ही लाना।'

नमकीन ही क्यों? महादेव समझ गया। वह मुस्कराया। पर सबेरे तो इड़प्पू पीते नहीं थे। आज क्या बात है? वह यह न समझ पाया। मन ही तो है मचल पड़ा होगा।

वह पलक मारते ही नमकीन की तीन तश्तरियाँ लेकर आ गया। तीनों तश्तरी में तीन प्रकार के पदार्थ थे। उसने ही टेबुल सरकार के सामने लाकर उस पर तश्तरियाँ रख दी और चुपचाप दरवाजे के पास खड़ा हो गया।

जूता पहन लेने के बाद छोटे सरकार खदेरू से बोले—'अच्छा अब जाओ। दोपहर का खाना आफिस में कब ले जाओगे?'

'जब हुकुम होय सरकार।'

वह कुछ समय तक सोचता रहा और फिर बोला,—'अच्छा, छोटी बीबी से कह देना कि ग्यारह बजे तक आफिस मे फोन करके मुझसे पूछ लेगी।'

'अच्छा सरकार।' और वह चला गया।

तब महादेव से उन्होंने बगीचे की ओर का दरवाजा बन्द करने के लिए संकेत किया और पान का चाँदी का खाली डब्बा उसे दिया, जिसका तात्पर्य था कि गिलौरियाँ इसमें भरवा कर जल्दी ले आओ। पहले उसने बगीचे की ओर का दरवाजा बन्द किया। फिर सहन की ओर

के दरवाजे से बाहर आया। इस दरवाजे का केवल एक ही पल्ला बन्द था।

अब वह स्वयं उठा और उसने आलमारी से स्काटजिन की बोतल निकाली। उसे टेबुल पर रखकर उसी आलमारी में कुछ और खोजने लगा। कई बार समान इधर उधर हटा कर देखा, वह वस्तु नहीं मिली। अब वह सोचने लगा—'यहीं तो रहती थी। कहीं दूसरे जगह तो नहीं रख गयी। बहुत सोचने पर उसे याद आया, अरे उस दिन सोते समय तो मैने उसे चारपाई के सिरहाने वाली आलमारी मे ही रखकर बन्द कर दिया था। उसने उसे आलमारी से निकाला। यह चाँदी का आकर्षक जाम था, विचित्र ढंग से बना था। ऊपर नीचे सकरा और बीच में चौड़ा था। उस पर बनी नक्काशी मुगल युग के शान शौकत का स्मरण दिला रही थी।

इसके बाद उसने सिगरेट जलायी। फिर बड़े प्रेम से नमकीन खाता और एक-एक घूंट पीता रहा। हर घूट के साथ वह सिगरेट की तेज कश लेता था और बडी मस्ती से ऊपर की ओर धूँआ फेकता था। सिलिंग फैन की हवा ऐसी धूम्र शृंखला को छिन्न-भिन्न कर बिल्कुल विलीन कर देती। यह क्रम ऐसा ही चलता रहा।

वह इस कोशिश मे दिखाई पड़ा कि गिलास में भरी इस शराब की अधिक से अधिक कितनी घूँटें बनायी जा सकती हैं। एक बार तो उसने केवल चुस्की भर ली और अपरमित आनन्द का अनुभव करते वह हुए गुनगुनाया—

इन गिलासों में जो डूबा फिर न उबरा जिन्दगानी मे।

हजारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में।

मुन्नी अभी जलपान कर उठी थी। वह हाथ मुँह धोकर बगीचे में झूला झूलने जारही थी। सहन की ओर के दरवाजे के खुले एक पल्ले से उसकी निगाह बैठक में बैठे अपने पापा पर पड़ी। उसने देखा टेबुल पर वही लाल चीजवाली बोतल खुली है और पापा गिलास में लेकर बड़े शौक से पी रहे हैं। क्या पापा की आज भी तबीयत खराब है? कोई दवाई तो इतने प्रेम से नही पीता। बालिका का मस्तिष्क अपने अनुभव के छोटे दायरे में ही सोचने लगा।

वह धीरे से दरवाजे में घुसी जैसे बिना आहट के बिल्ली घुसती है। छोटे सरकार के बगल में आकर बड़े प्रेम से बोली—'पापा, तुम बीमार हो न?'

'हुँऽऽ,..तुम यहाँ कैसे?'

वह मुस्कराई उसने पुनः पूछा—'दवाई पी रहे हो पापा?'

उसे वह कुछ जवाब दे इसके पहले ही उसने पुकारा— महादेव... ऐ महादेव....अरे ओ महादेव के बच्चे।' किन्तु कुछ उत्तर न मिला।

'लेकिन पापा, बीमारी में मठली नहीं खाते। जी और खराब हो जायगा।' उसने विचित्र ढंग से मुँह बनाते हुए कहा। यह निश्चित है कि किसी दूसरे समय यदि मुन्नी इस ढंग से कहती तो छोटे सरकार उसे हँसते हुए गोद में उठाकर चूम लेते। लेकिन इस समय वे दूसरी ही तरङ्ग में थे। वह उसे एक क्षण भी यहाँ रखना नहीं चाहते थे। वह पुनः तडपे—'भगेलू...अबे ओ भगेलू। पता नहीं कहाँ सब साले मर गये।'

मुन्नी को क्या मालूम कि पापा मुझे यहाँ से हटाने के लिये ही नौकरों को बुला रहे हैं। वह टेबुल के दूसरे ओर पहुँच कर बोतल छूने लगी। अब पापा बिगड़े—'भाग यहाँ से। जाकर अपनी माँ को ही दवाई पिला।' दुलार और प्यार में पली मुन्नी अपने पापा की इतनी तेज आवाज सुनकर सहम गयी। अपनी छोटी जिन्दगी में उसे इतनी तेज और रुक्ष आवाज में बहुत कम फटकार मिली थी। अतएव चुप खड़ी ही रह गयी। कुछ बोल न सकी, नहीं तो कदाचित कहती,—'यह दवाई कैसी लगती है पापा ? मुझे नहीं पिलाओगे।'

तब तक बगीचे से भगेलू और डब्बे में पान लेकर महादेव साथही दौड़े हुए पहुँचे। उन्हें देखते ही छोटे सरकार बिगड़ उठे, 'तुम लोग कहा मरे पड़े रहते हो, चिल्लाते चिल्लाते गला बाँस होजाता है पर कही जिन्दे रहो; तब तो बोलो। एक लड़की का भी ख्याल नहीं कर सकते।..., वह डाटता रहा। चुपचाप दोनों नीची निगाह किये खड़े रहे।

फिर महादेव की ओर देखकर बोला,—'मैने हजार बार कहा है कि जब मैं खातापीता रहूँ, तो इधर किसी को भी आने मत दो, पर ध्यान रहे तब तो...ले जाओ इसे यहाँ से बाहर। महादेव मुन्नी को उठाकर बाहर लेचला। भगेलू भी धीरे से वसका। मुन्नी अवाक रह गई। वह समझ नहीं पारही थी कि आज पापा को क्या होगया है।

शराब पीने के बाद पान खाना उतना ही जरूरी है जितना पाप करने के बाद झूठ बोलना। अतएव उसने डब्बे से निकाल कर दोनो गालों में पान भरे। डब्बा जेब में रखा। कन्धेपर बरसाती कोट लटकायी

और सिगरेट का धुँआ उड़ाता बड़ी शान से पोर्टिको में खड़ी कार की ओर बढ़ा। उसकी चालढाल से बिल्कुल मालूम नहीं होता था कि इसने शराब पी है। उसका मस्तिष्क अपने नियंत्रण में था। पुराना जो जो पियक्कड़ ठहरा।

कार के पास पहुँच कर उसने कलायी में बँधी घड़ी देखी। साढ़े आठ से भी अधिक था। कोई बात नहीं अध्यक्ष के लिए सभा में देर से पहुँचना भी एक शान की बात है।

□ □ □

श्यामदेव ने मुझे भी निमन्त्रण कार्ड भेजवा दिया था। कदाचित् यह पहला अवसर था जब उसने मुझे निमन्त्रित किया था। यह भी एक सोचने की बात थी, पर मैंने इस पर सोचा कम, क्यों कि जब भी मैं अनाथालय और उसके कार्य कलापो के बारे में सोचती हूँ, मेरा मन जल उठता है। इसी से ज्यो ही कालेज में निमन्त्रण का लिफाफा मिला, मैंने उसे अपने जेब के हवाले किया और उसे भूल जाने की कोशिश की, किन्तु सन्ध्या को जब घर लौटा और मेरे कमरे के सूनेपन ने मुझे घेर लिया, तब मैं यों ही जेब से वह लिफाफा निकाल कर पत्र पढ़ने लगा।...मन्त्री महोदय की अध्यक्षता में होगा। ओऽ...तभी उसने अधिक निमन्त्रण बाटा है। इसीलिए मुझे भी मिल गया। जरूर खासी भीड़ होगी। वृहद् आयोजन होगा।

राम राम, छीः छीः। जी कहता है कि इनके नाम पर थूक दूँ। ऐसे नारकीय पतित और भ्रष्ट संस्थाओं के उत्सवों की अध्यक्षता करना ये कैसे स्वीकार कर लेते है? क्या इनमें व्याप्त भयंकर भ्रष्टाचार का इन्हे बिल्कुल ही ज्ञान नहीं है। इसके आकर्षक रूप के मधु के नीचे जो समाज की असह्य सड़न छिपी है क्या उसकी दुर्गन्ध इन तक नहीं पहुँच पाती? यदि दरअसल नहीं पहुँचती, तो उनकी नाक की वह शक्ति अब नहीं रही जो बिना देखे पंक और पंकज का भेद बतलाती थी। या तो उनके और इन संस्थाओं के बीच हमारी दुर्बलताओं पर ही बनी कोई बहुत बडी दीवार खड़ी है, जिससे उनकी दृष्टि उस पार ही रहती है वे इस पार देख ही नहीं पाते। खैर यह सब सोचने का ठेका क्या मैंने ही उठाया है, आखिर आप किस मर्ज की दवा हैं।

मैने निश्चित किया कि कल कुछ पहले ही कालेज के लिए चल दूँगा और रास्ते में ही तो पड़ता है वहाँ भी हो लूँगा। देखूँ मन्त्री महोदय अनाथालय की तारीफ में क्या फरमाते है।

दस बजने में अभी कुछ बाकी ही था जब मैं अनाथालय के पास पहुँचा। फाटक के बाहर कई मोटरें खड़ी थीं। सड़क के आरपार बन्दर-वार झण्डियाँ लगी थी। फाटक के ठीक सामने इन झण्डियों के बीच बीच में गेंदे की मालाएँ लटक रही थीं। वातावरण में हवन का सुगन्धित धुआँ अच्छी तरह फैल गया था। मुख्य द्वार पर लाल खद्दर का फाटक बना था, उसपर स्वागतम् लगा था। इस फाटक से भीतर घुसने पर दरवाजे के ऊपर एक और लाल कपड़ा लटक रहा था जिस पर चमकती पन्नी से लिखा था—अनाथों की सेवा परमात्मा की सेवा है—महात्मा गांधी।

फाटक के ऊपर लगे लाउडस्पीकर से भाषण सुनायी पड़ रहा था। भाषण का प्रवाह सुन्दर था पर आवाज अत्यन्त कर्कश, किन्तु आकर्षक थी। बाहर कुछ लोग खड़े भाषण सुन रहे थे।

रात्रि कुत्सित कार्यों में बीताकर जब प्रात:काल कोई वेश्या कमण्डल और पूजा की डाली लेकर गंगा स्नान करने जाती है तब उसके चेहरे के जघन्य पाप पर शिष्टता, पवित्रता और भक्ति की जैसी परत जम जाती है और वह जैसी सौम्य मालूम पडती है, मुझे इस समय वैसा ही पवित्र सौम्य और पूजा की भावना से पूरित यह अनाथालय जान पडा।

भीतर घुसा। यहाँ बडी भीड़ थी। पूरा चौक खचाखच भरा था। मैंने देखा गुप्ता जी बोल रहे है। इनसे मेरा कोई घनिष्ट परिचत तो नहीं है, फिर भी मै इन्हें जानता हूँ। भूले न होंगे, तो वह भी मुझे पहचानते होंगे।

मै वैसे ही पीछे खड़ा रहा। चारो ओर निगाह दौड़ाई कि मन्त्री महोदय कहाँ विराजे है, पर कहीं दिखायी न पड़े। थोड़ी देर बाद राम-समुझ ने पास आकर नमस्कार किया और आगे मुझे लिवा ले चला। मैंने पूछा—'मन्त्री महोदय कहाँ हैं?'

'वह तो आ न सके। तबीयत खराब हो जाने से उन्हें वाराणसी का कार्यक्रम रद्द कर देना पड़ा।'

आगे ले जाकर उसने सम्मानित अतिथियों के बीच की एक खाली कुर्सी पर मुझे बैठा दिया। गुप्ताजी का भाषण अनवरत चल रहा था—

'.........कोई जमाबा था कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ देवियों की तरह पूजी जाती थीं। समाज में उनका सम्मान था।। राजनीतिक,

सामाजिक, व्यावहारिक, धार्मिक—सभी क्षेत्रों में पुरुष के साथ ही उनको समान अधिकार था।......और तब की नारियों में भी ऐसा चारित्रिक एवं आत्मिक बल था कि वे पुरुषों से क्या मृत्यु से भी नहीं डरती थीं, अपने इसी बल से सती सावित्री ने यमराज से भी टक्कर लिया था। अपाला, गार्गी, मैत्रेयी, सीता आदि हमारी आदर्श नारियाँ थीं, जिन पर आज तक समाज गर्व करता है और जब तक मानव समाज का अस्तित्व है, उस पर गर्व किया जायगा।'

'पर आज दशा बिल्कुल बदल गयी। अब तो हम नारी को अपनी वासना के तृप्ति का साधन समझते हैं। वह हमारे घरों में अब केवल भोजन बनाने और बच्चा पैदा करने की मशीन मात्र है। मशीन जबतक काम करती रहती है तबतक लोग उसे बड़े प्रेम से रखते हैं। जहाँ वह टूटी या खराब हुई, उसे घर के किसी कोने में फेक दिया जाता है। उस पर एक नजर डालना भी व्यर्थ समझा जाता था। वैसे ही आज हमारे समाज मे नारी है।'

'हमारे ऐसे व्यवहार और चरित्र की प्रतिक्रिया आज की नारी पर भी हुई है। अब वह फूलों पर फिरने वाली रंग बिरगी तितली बनी संसार के बगीचे में घूमती है। जहाँ तितली का रंग फीका हुआ, या पंख टूटे, वहाँ वह कीचड़ मे गिरी, तब कोई फूल उस पर आँसू नहीं बहाता। यह झूठ नहीं है, कल्पना नहीं है, सत्य है। जीता जागता सत्य है। बड़े-बड़े तीर्थ स्थानों में इस सत्य का आप नग्न एवं रोमांचक रूप देख सकते हैं।'

'हर बड़े मेले के बाद लोग सैकड़ों की संख्या में स्त्रियाँ छोड़ जाते हैं। ये उन तीर्थों में बिलखती असहाय भीख माँगती फिरती हैं। इनमें

से कुछ लूली होती है। कुछ लंगड़ी होती है। किसी को नाजायज गर्भ रहता है। आप के पाप का फल वह भोगती है। उनके जीवन का कोई सहारा नहीं रहता। तब ये अनाथालय उन्हे आश्रय देते हैं। पथ भ्रष्ट को रास्ता दिखाते हैं। निस्सन्देह इनका कार्य महान है।'

'इसके बाद उसने अपनी कलायी घड़ी देखी और फिर बोला,—'मैं आपका अधिक समय नहीं लेना चाहता। केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इन संस्थाओं का काम समाज के मुख पर लगी कालिख धोना है। उसकी बुराई समाप्त करना है। अतएव आपका भी ऐसी सस्थाओं के प्रति कुछ कर्त्तव्य हैं। आपकी ही सहायता पर यह जीवित रह सकती है। इन्हें तन मन धन से योग देकर समाज का कोढ़ मिटाने वालों में आप भी अपना नाम लिखाइए। याद रखिए अनाथालय वह मन्दिर है, जहा अनाथ देवियाँ आपकी पूजा चाहती है। आपके चढ़ावे का प्रत्येक पैसा उनकी सेवा में लगेगा। जयहिन्द।'

भाषस समाप्त होते ही तालियाँ गड़गडा उठी। आस-पास के सभी लोगों ने गुप्ताजी के भाषण की तारीफ की। इसके बाद दान देने का समय आया। कुछ लोग गोलक लेकर चारो ओर घूम गये। जो जितना दे सकते थे, रुपया अधेली, आना दो आना, पैसा-दो पैसा उस गोलक में डाल देते थे। इस बीच श्यामदेव का धन्यवाद भाषण भी चल रहा था। अन्त में कुछ सेठों ने अपने दान की बड़ी-बड़ी रकमें बोल कर लिखवायीं।

इस रकम के बाद जलपान की बारी आयी। अब मैंने वहाँ से खिसकना चाहता था। एक तो कालेज जाने के लिए देर हो रही थी। दूसरे उस

उल्लास और उत्साह पूर्ण वातावरण में भी मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मेरा दम घुट रहा है। दिमाग में यही चक्कर काट रहा था कि हाथी के दाँत खाने को और दिखाने को और। ज्योंही मैं आँखें बचाकर वहाँ से चलने को हुआ त्योंही बगल से आकर श्यामदेव ने मेरी बाह पकड़ ली वह बोले—'कहिए मास्टर साहब कहाँ चले ?'

'भाई, कालेज के लिए देर हो रही है।'

'अरे चलिए। आज थोड़ी देर ही हो जायगी तो क्या होगा।' वह मुझे खींचकर गुप्ताजी की ओर ले गया और उनसे मेरा परिचय कराते हुए बोला,—'यह मेरे पुराने साथी हैं। स्थानीय ········कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक हैं।'

'हाँ-हाँ, मैं इन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। आपको परिचय कराने की तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं है।'' मुझे छोड़ आस पास के और लोग हँस पड़े।

जलपान के समय भी गुप्ताजी से इधर उधर की बहुत सी बाते होती रहीं और लोग भी इस बातचीत में हिस्सा बटा रहे थे। उनकी बातों से ऐसा लग रहा था जैसे उन्हे इन संस्थाओं की अच्छाई ही मालूम है। इनमें फैली गन्दगी की बू भी उनके नाक तक नहीं गयी है। मैंने सोचा इन्हें इसकी असलियत से अवगत करा देना चाहिए। इसी से मैं इस बात चीत में खूब घुलकर रस लेने लगा। जिससे परिचय अधिक हो जाय और अवसर मिलने पर मैं इनसे अपनी बात कह सकूँ। कदाचित बदबू को उनके पास लाने पर उनकी नाँक भौ भी सिकुड़े।

अन्त में जलपान करके जब हम चले, तब गुप्तजी ने कहा,—'शर्मा

जी मैं तो आपको इधर कई दिनों से याद ही कर रहा था। यह तो हमारा भाग्य था जो आप यहाँ मिल गये।'

'कहिए क्या आज्ञा है?'

'आज्ञा वाज्ञा कुछ नहीं। आपको कुछ तकलीफ देना चाहता हूँ। मैं एक काम के लिए सोच रहा था। झुनझुनवालाजी ने मुझे उस काम के लिए आपको ही योग्य कहा है।........ आपसे भी कुछ उन्होंने चर्चा की होगी?'

'नहीं तो। मुझसे तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। कहिए कौन सा काम है? यदि मुझसे हो सकेगा तो जरूर आपकी सेवा करूँगा।'

'होगा क्यों नहीं। आपका ही काम है।' वह हँसते हुए बोला—'अच्छी बात है। इस सम्बन्ध में बाद में बात कर लूँगा। आपके कालेज में तो फोन होगा ही।

'जी हाँ।'

'क्या नम्बर है?'

'१२०६'

'ठीक है, मै आपको फोन करूँगा और यदि समय मिले तो दस और चार के बीच मे कभी आपही आफिस में फोन करने की कृपा कीजिए।'

'अच्छी बात है।' इसके बाद मैं वहाँ से सीधे कालेज चला आया।

□ □ □

आज स्थानीय समाचार पत्र के सन्ध्या संस्करण के मुख पृष्ठ पर जितने समाचार छपे थे, उनमें से तीन पर ही नजर पहले पड़ती थी।

पहला था—

'दुनिया पंचशील और युद्ध में से एक चुने।'

—नेहरूजी।

दूसरा था—

'पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए मारवाड़ी व्यावसायिक संघ कुछ उठा न रखेगा।'

—गोविन्दराम ढुनढुनिया।

तीसरा था—

अनाथालय निराश्रित देवियों का मन्दिर है।

—रमेशचन्द्र गुप्त।

—आठ

केले और बेर के पौधों की तरह मित्रता और सन्देह भी अधिक दिनों तक साथ नहीं रहते। अब छोटी बीबी और सरला में भी वैसी नहीं बनती थी। अब तो छोटी बीबी के लिए सिल्लो दीदी झूठ और फरेब से भरी हुई रहस्यमय पुतली जैसी थी। वह समझती थी कि वह अब सब कुछ मुझसे छिपाती है अबतक वह हमारे भोले-भाले विश्वास को धोखा देती रही है और यदि उसका रहस्य उद्घाटित न होता तो वह बराबर धोखा देती रहती। जिसके जन्म करम का ही कोई पता नहीं, उसका क्या ठिकाना। कबतक यहाँ रहेगी और कब ले देकर चल दे। उसके इस सन्देह को बढ़ाने में भगेलू और महादेव ने बड़ा योग दिया।

अब वह उसकी किसी बात पर विश्वास न करती थी। उसके विचार से वह कुछ भी सत्य नहीं कहती। उसकी प्रत्येक बात में झूठ और धोखा रहता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि दो अन्तरंग मित्र जो

बात करें वह सत्य ही हो। उनकी बातचीत में झूठ भी आ सकता है पर सत्य होकर। किन्तु सरला और छोटी बीबी के बीच बिल्कुल उलटा हुआ। यहाँ सभी सत्य झूठ हो गया। इसी से यह गड़बड़ी उत्पन्न हुई। अनाथालय के अत्याचार को भी उसने झूठ ही माना। समझा सब इसी का दोष है।

अब वह सरला से अधिक बोलती भी न थी। जहाँ वह सदा उसे अपने पास ही रखती थी, वहाँ अब वह उसकी छाया से भी घृणा करती थी। यदि किसी काम से कभी सरला उसके पास आती भी, तो वह उससे दो बातें कर शीघ्र ही हटने के लिए विवश करती थी या खुद ही हट जाती थी। उसके इस बदले हुए रुख और उसके कारण का अनुभव सरला करती थी,-किन्तु वह चुपचाप अपने जीवनाकाश में घिरने वाले इन नये बादलों की ओर देख रही थी।

धीरे-धीरे यह हालत बढ़ती गयी। एक दिन छोटी बीबी ने सरला के बारे में अपनी माँ से भी चर्चा की। मालकिन तो पहले से ही सब जानती थीं। वह उसकी प्रत्येक बात पर हुँकारी भरती गयीं और अन्त में सधे सधाये शब्दों में बोली—'जाने दो बेटी, जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।'

माँ की यह अन्यमनस्कता छोटी बीबी को अच्छी न लगी। उस समय तो वह वहाँ से हट गयी, किन्तु यह सोचती हुई कि फिर कभी जब माँ की तबीयत प्रसन्न दिखायी पड़ेगी, तो पुनः कहूँगी। इसे अब यहाँ अधिक दिनों तक रखना ठीक नहीं।

और फिर उसने किसी न किसी रूप में सभी नौकरों से भी सरला

के सम्बन्ध में चर्चा की। खदेरू ने तो बड़े गौर से सुना। उसने बहुत लम्बा संसार देखा था। वह जानता था कि संसार में बहुत से ऐसे सत्य हैं जो कल्पना से भी अधिक आश्चर्यजनक एवं रहस्यमय है, फिर भी उसे विश्वास न हुआ वह इतना ही बोला—'जो न हो जाय वह थोड़ा है बिटिया।'

इस सम्बन्ध में अधिक बात भगेलू और महादेव ने ही की। छोटी बीबी की बातें सुनकर महादेव बोला—'अरे बीबी जी आपको तो आज न पता चला है, मैं तो उसकी हर हरकत जानता हूँ। कोई भला आदमी उसकी हर हरकतों का बयान नहीं कर सकता।'

'अजी वह बिल्कुल रँगी सियारिन है सियारिन।' भगेलू बोला।

'लेकिन देखने में तो बड़ी सीधी मालूम होती है। मैंने कभी सोचा नहीं था कि वह ऐसी होगी।' छोटी बीबी ने कहा।

'सुना है अनाथालय से भी वह कुछ चुराकर भागी है।'—महादेव बोला।

'हाँ हाँ, तुम्हें कैसे मालूम ?'

'आप क्या समझती हैं, मैं जानता नहीं।' वह जोर से हँसा, फिर कहने लगा—'अनाथालय का जो मैनेजर रामसमुझ है, वह हमारा साथी है। एक दिन यहीं आया था। उसने कहा क्या वह लड़की तुम्हारे यहाँ है। पहले तो मैंने समझा नहीं, पर जब हुलिया बतायी, तब मेरा माथा ठनका। फिर भी मैंने उसे इधर-उधर की बातचीत में बहका देना चाहा। पर इसी बीच वह महरानीजी उधर से घूमती बगीचे में आ ही तो निकली।'

'तब क्या हुआ ?'

'हुआ क्या ! उसे देखते ही वह झेंप गयी और मुँह फेर कर कतरा कर निकल गयी। वह मुस्कराने लगा।'

'अरे राम, उसकी हिम्मत तो देखो अनाथालय से रुपया चुराकर भागी।' छोटी बीबी बड़े आश्चर्य से बोली।

'आखिर वह चोरी का समान ले कहाँ गयी ? यहाँ तो ले न आयी होगी।'

'यहाँ तो वह हाथ झुलाती आयी है। ··और उसे रुपया रखने की कमी थोड़े ही होगी। ऐसी चोट्टिन औरतों के पीछे बहुत बड़ा गिरोह रहता है। वही गिरोह वाले चोरी का माल रखते और पचाते है। तभी वह अपना 'नाव गाँव' कुछ नहीं बताती।'

'बीबीजी, तब तो आप लोगों को भी होशियार होना चाहिए।' भगेलू ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

'अरे मै क्या करूं। बाबूजी माने तब तो।'

'क्यों, बाबूजी जानते नहीं हैं क्या ?' भगेलू ने पुन पूछा।

'जानते क्यों नही होंगे पर वह उसे निकाल नहीं सकते।' यह कह कर महादेव जोर से हँसा।

इसी प्रकार सरला और छोटी बीबी के बीच की सन्देह की खाई बराबर बढ़ती गयी और ऐसी स्थिति आ गयी कि फिर वह एक दूसरे से कभी भी मिल न सकीं।

छोटी बीबी का कुछ ऐसा स्वभाव भी था कि जिसे वह चाहती थी; खूब चाहती थी जिसे वह घृणा करती थी, तो लाख इधर से उधर हो

जाय वह घृणा ही करती रहती थी। और इस मामले में तो खूब आग भड़काई गई। अब उसे सरला में एक भी गुण दिखाई नहीं देता था। उसके लिए उसमें सब दोष ही थे। सब कुछ ऐसे थे जिनसे हर आदमी को घृणा करनी चाहिए। तभी तो आज जब नरेन्द्र आया, तब मौका देखकर उसने उससे भी चर्चा चला ही दी।

सब सुन लेने के बाद नरेन्द्र कुछ समय तक मौन सोचता रहा। तब तक सरला स्वयं वहाँ पहुँच गयी। वह नरेन्द्र को नमस्कार कर पास की कुर्सी पर बैठ गयी और मुस्कराती हुई बोली,—'कहिए, बड़े दिन के बाद आज तकलीफ की है आपने।'

मस्तिष्क तो सोचता रहा, पर वाणी ने उत्तर दे दिया। 'इधर जरा कुछ काम आगया था। छुट्टी नही मिली।'

'अच्छा, तो अब आप भी काम की चिंता करने लगे हैं।'

छोटी बीबी से अब नहीं रह गया। पता नहीं कैसे वह उसे वहाँ क्षण भर बैठी देखती रही। तनक बोली—'चलिए पहले अपना काम तो देखिये, तब यहाँ चोचलाइयेगा।चाय बन गई कि नहीं?'

उससे बड़ी धीरे से कहा—'अभी नहीं।' उसके अधर तो अब तक मुस्कराते रहे, पर उसका हृदय चीख-चीख कर रो रहा था। वह कुर्सी से उठकर खड़ी हो गयी। उसने नरेन्द्र की ओर देखा। वह चुपचाप मुँह नीचा किये सोच रहा था।

'तब यहाँ क्यों खड़ी हो? जाओ चाय बनाकर ले आओ।' छोटी बीबी ने झटकते हुए कहा।

वह चुपचाप वहाँ से हट गयी।

उसके हटते ही नरेन्द्र ने छोटी बीबी को समझाते हुए कहा—'कोई बुरा है, तो इसका मतलब यह नहीं कि हम भी उसके साथ बुरा ही व्यवहार करें। मैल मैल से धोयी नहीं जाती। कल तक जिस सरला को तुम अपने हृदय का टुकड़ा समझती थी। सिल्लो दीदी, सिल्लो दीदी कहते चौबिसो घण्टे तुम्हारी जबान सूखती थी। अब तुम्हें उससे इतनी घृणा होगई कि एक मिनट भी तुम उसे अपने पास खड़ा देख नहीं सकती हो। यह कोरी भावुकता है। भावना और भावुकता से प्रेरित होकर जो भी निर्णय किया जाता है वह कभी ठीक नहीं होता। सम्भव है तुम्हारा यह सब कुछ सोचना गलत निकले तो।'

'पर यह कभी नहीं हो सकता। यह ठीक है कि मै अधिक भावुक हूँ, पर इस सम्बन्ध में मैने शत् प्रतिशत् बुद्धि का प्रयोग किया है। और जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल ठीक है।'

'तो क्या तुम्हारी बुद्धि ने यही कहा है कि उसे दुत्कारो।...घाव प्यार और दुलार से भरता है, प्रहार से नहीं।'

'लेकिन वह घाव नहीं है। वह तो सड़न है, बदबू है। जिसे काट कर ही निकालना पड़ेगा।'

छोटी बीबी आवेश में थी। आवेश में शक्ति होती है पर बुद्धि नहीं होती। यह सोचकर नरेन्द्र ने बात बढ़ाना ठीक नही समझा। केवल इतना ही बोला—'मेरा इसमे विश्वास नहीं है।' नरेन्द्र सोचने लगा कि छोटी बीबी में इतना शीघ्र परिवर्तन कैसे हुआ। पर उसे मालूम नहीं था कि महादेव और भगेलू बराबर उसकी घृणा की अग्नि में आहुति देते जाते हैं।

दोनों बहुत दिनों तक ऐसा मौका देखते रहे थे जब सरला के खिलाफ प्रचार किया जा सके, क्योंकि उससे उन्हें बड़ी हानि थी। जब से वह आयी थी, तब से उनकी दाल नहीं गलती थी। नहीं तो महाराज से मिलकर वे हर महीने भण्डार से घी, तेल, अनाज आदि गायब कर देते थे। कोई पूछने वाला नहीं था अब तो वह पूरी चौकसी रखती थी। और फिर सरला के सामने उनकी कोई पूछ भी नहीं थी। वह स्वयं मालकिन की तरह रहती थी। यह भी डाह का एक कारण था। अभी कल की आयी नौकरानी हमारे सिर पर होगयी और हम टापते रह गये। वे सोचते थे।

इस बार जब सरला चाय लेकर आयी; तो वह बिल्कुल ही नहीं बोली केवल टी. सेट रखकर जाने लगी। छोटी बीबी ने दूध के बर्तन में कम दूध देखकर व्यंग्य करते हुए कहा—'बड़ा ढेर सा दूध लायी हो। भला इतना दूध क्या होगा।'

नरेन्द्र को छोटी बीबी का ऐसा व्यंग्य करना और वह भी ऐसी स्थिति में अच्छा नहीं लगा, किन्तु वह कुछ बोला नहीं। उसकी आकृति की गम्भीर मुद्रा ही कह रही थी—'छोटी बीबी, तुम यह अच्छा नहीं कर रही हो।'

'अरे नरेन्द्र, तुमको क्या मालूम! यह चुराकर बिल्लियों की तरह दूध पी जाती है।'

'क्या वाहियात बात करती हो।'

'नहीं भइया, मैं ठीक कहती हूँ। भगेलू ने एक दिन अपनी आँखों देखा कि उस पश्चिम वाले चबूतरे पर बैठकर वह मुन्नी को दूध पिला

रही थी और बीच-बीच में एक-एक घूँट वह खूद भी पी लेती थी।... अरे दरिद्र है दरिद्र। कौन जाने यह भी दूध जूठा कर लायी हो।'

'नहीं जी, ऐसा नहीं हो सकता। नौकरों का विश्वास कम किया करो। वे आपस में खुद भी जलते रहते है और कभी-कभी बड़ा गलत प्रचार करते हैं।'

परिस्थिति यह थी कि सरला के मामले में न तो छोटी बीबी नरेन्द्र की बात मानने वाली थी और न नरेन्द्र छोटी बीबी की। एक आँखों देखी और कानो सुनी बात कहती थी और दूसरा मानवीय स्वभाव पर आधारित तर्क प्रस्तुत करता था। तर्क और तथ्य का यह संघर्ष घन्टों चलता रहा और अन्त तक सरला के प्रति नरेन्द्र का रुख सहानुभूति पूर्ण ही बना रहा।

□ □ □

अब उस परिवार में कोई भी उससे प्रेम से नहीं बोलता था सबकी जबान टेढ़ी ही रहती। कोई उसपर वाग्बाण छोड़ता, कोई उसे देखकर विचित्र ढंग से हँसता, कोई आँखों से कनखी मारकर मुस्कराता। गोया कि सब जगह उसके प्रति घृणा थी। इस घर की जैसे ईंट-ईंट उससे कह रही थी—'तुम चोर हो। बदमाश हो। तुम पतित हो।'

बगीचे के जिन हरे भरे पत्तों पर उसका उल्लास थिरकता था। आज वे ही पत्ते ऐसे लग रहे थे मानो तिरछी नजर से देखकर सिर

हिला रहे है और कह रहे हैं—'तुम मेरी आँखों के सामने से हट जाओ। जिन फूलों को देखकर पहले उसका मन हँस पड़ता था, अब आज वे ही फूल जैसे उसे देखकर हँस रहे थे।

केवल अब एक मुन्नी ही उसकी अपनी रह गयी थी। उसी के मुख से अब 'सिल्लो दीदी' सुनाई पड़ता था।

ऐसी घृणा और तिरस्कार का दिन बिताकर वह सन्देह और पश्चाताप की काली रात बिताने के लिए जब बिस्तर पर पड़ती तब नींद भी उससे घृणा करती थी, पर अब उसका साथ देने वाला कौन था?—खिड़की से उसकी बेकसी पर मुस्कराने वाले झिलमिलाते तारे या कमरे में लुक छिपकर चोरों की तरह घुस आनेवाली चन्दा की चाँदनी।

दिन में जब उदास बैठकर अपने बारे में वह सोचती, आँखों में आँसू भी सूखे नजर आते, तब केवल एक मुन्नी ही थी, जो उसके पास आकर बड़े प्रेम से कहती—'दीदी, आज ऐसे क्यों बैठी हो?' और वह उसके तन से लिपट जाती।'

सरला कुछ न बोलती, आँखे छलक आतीं।

'देखो दीदी, अब तुम मुझसे नहीं बोलोगी, मैं कुट्टी कर लूँगी, हाँ।' 'कुट्टी करना' मुन्नी के पास ऐसी रामवाण औषधि है जिसका प्रयोग वह हर रोग और हर परिस्थिति में अनुपान भेद से किया करती है।

और सरला हँस पड़ती। आँखों के आँसू भी मुस्करा पड़ते।

पर भगवान को यह भी मंजूर नहीं था। एक घटना घटी।

एक दिन दोपहर की बात है। खाना-पीना हो चुका था। खदेरू भी छोटे सरकार का भोजन लेकर जा चुका था। सुखिया मालकिन के

यहाँ सेवा में थी। छोटी बीबी उपन्यास पढ़ रही थी। सरला अपने कमरे में उदास बैठी हुई थी—नहीं मैं भूल करता हूँ—वह सोयी हुई थी। झपकी ले रही थी। बगीचे में और घर के बड़े दालान में कोई दिखायी नहीं देता था।

एकान्त पाकर मुन्नी अपने पापा के कमरे में धीरे से गयी और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया, पर सांकल नहीं लगायी। फिर कमरे में ही चारो ओर देखा कि कोई देख तो नही रहा है। एक बार वह पुनः बाहर आयी और दूर तक निगाह दौड़ा कर देखा, कहीं कोई दिखायी नहीं पड़ा। फिर वह भीतर आकर वैसे ही दरवाजा बन्द कर लिया। अब उसे अच्छी तरह विश्वास था कि मुझे कोई देख नहीं रहा है। तब वह उस शीशे की आलमारी के पास गयी जिसमें उसके पापा शराब रखते है। उसने उसे ध्यान से देखा और कुछ समय तक सोचती हुई शान्त खड़ी रही। ऊपर के खाने में बायीं ओर रखी बोतल में लाल शराब झलक रही थी। उसके बगल में ही चाँदी का वह गिलास रखा था वह चुपचाप देखती रही।

धीरे धीरे मानो उसके मन में कोई कह रहा था—'देखती क्या हो? जरा गिलास में उड़ेल कर चखो। देखो कैसा लगता है।······

कितना अच्छा रंग है! पापा क्यों इतने प्रेम से पीते हैं, और माँगने पर तुम्हें देते भी नहीं। कोई बात जरूर है।

वह अलमारी के पास गयी और उसका दरवाजा खोलना चाहा, पर ताला बन्द था, फिर वह खड़ी कुछ समय तक सोचती रही।

इसके बाद वह कमरे का दरवाजा खोल बड़ी शान्ति से बाहर आयी

और बगीचे से एक बड़ा पत्थर उठा ले चली। वह दोनों हाथ से पत्थर बड़े श्रम से उठाये थी। वह वजनी मालूम हो रहा था।

कमरे में पहुँच कर उसने अन्दाज लगाया। ऊपर के खाने तक तो पहुँचना बडा कठिन है। अब उसने एक तरकीब लगायी। निकट पड़ी कुर्सी आलमारी तक किसी प्रकार धीरे-धीरे घसीट कर ले आयी, फिर बाहर आयी और दालान में पड़ी एक स्टूल ले गयी जिस पर उसकी सिल्लो दीदी कभी-कभी टेबुल लैम्प रखकर रात में पढ़ती थीं।

उस स्टूल को फिर किसी प्रकार उस कुर्सी पर चढ़ाया। अब ऊँचाई काफी अच्छी हो गयी थी। इसके बाद वह पत्थर लेकर पहले कुर्सी पर चढ़ी; फिर बहुत समझ बूझकर स्टूल पर।

वह ऊपर चढ़ चुकी थी, पर स्टूल डगमगा रहा था। फिर भी उसने आलमारी के उस पल्ले की ओर जिधर बोतल रखी थी, जोर से पत्थर मारा। शीशा चूर हो गया, पर स्टूल भी सरक गया। वह फर्श पर धड़ाम से गिरी।

शीशा टूटने, गिरने और फिर मुन्नी के चीखने की आवाज अधिक दूरतक न फैली। सबसे पहले मुखिया ने सुना। वह मालकिन के कमरे से दौड़ी हुई वहां पहुँची।

पहुँचते ही उसने मुन्नी को उठाया, पर वह उठ नहीं पारही थी उसके बायें पैर और बायें हाथ मे असह्य पीड़ा हो रही थी। वह निरन्तर चीख रही थी। उसने उसे अपने गोद मे उठा लिया। तब तक छोटी बीबी और सरला भी वहाँ पहुँच गयीं। 'अरे राम, क्या होगया मेरी मुन्नी को?' यह कहते हुए सरला आगे बढ़ी और उसने उसे

सुखिया की गोद से अपनी गोद में ले लिया। कमरे में बिछी पलंग पर उसने उसे लिटा दिया और उसके हाथ पैर सहलाने लगी।

छोटी बीबी ने सुखिया से कहा,—'मेरे ड्रेसिंग टेबुल की दराज में जम्बक है। जा, जरा जल्दी से ले तो आ।'

वह चलीगयी। इसके पहले कि छोटे बीबी मुन्नी की ओर आई और उसका हाल देखे, वह आलमारी की ओर गयी। उसने देखा, आलमारी के बाएँ पल्ले के ऊपर का शीशे का पल्ला चूर-चूर है। भीतर स्काच जिनकी बोतल और बगल में चाँदी का गिलास रखा है। फर्श पर स्टूल ढुलकी पड़ी है। आलमारी के पास ही एक कुर्सी रखी है। उसने यह सब बड़े गौर से देखा।

सुखिया दौड़ी हुई आयी और सरला को जम्बक की डिबिया दे दी। सरला मुन्नी को पुचकारती हुई हाथ और पैर में धीरे-धीरे जम्बक मलने लगी। पर मुन्नी निरन्तर चीखती रही।

छोटी बीबी यह सब देखकर कुछ समय तक सोचती रही, फिर उसकी अचानक मुद्रा बदली। वह पलंग के पास आयी। चण्डिका की तरह आँखों से आँसू बरसाती वह कुछ समय तक सरला और मुन्नी को देखती रही। सरला ने उसे तो देखा पर उसकी उस दृष्टि को नहीं देखा। वह बराबर मुन्नी का पैर सहलाती और बोलती जाती थी,—'अरे, बेटी अभी अच्छा हुआ जाता है।...क्यों रोती हो। देखो दवाई लग रही है। रो ओ...मत मेरी रानी बिटिया...।'

अब तक वह पता नहीं कैसे खड़ी थी, पर अब वह अपने मस्तिष्क का सन्तुलन बिल्कुल खो बैठी थी—'रानी बिटिया, रानी बिटिया ..लगी

चोचलाने। चल हट यहाँ से कलमुँही। अब तेरी माया लगने वाली नहीं है।'

वह कुछ समझ न पायी। मुन्नी को छोड़कर पलंग के पैताने एक दम सन्न होकर बैठ गयी। उसे ऐसा लगा मानो वह कोई भयंकर सपना देख रही हो।

छोटी बीबी फिर तड़पी—'चल हट। अब भी बैठी है राक्षसिन कहीं की।'

अब सीमा से पार हो चुका था। अकारण वह इतनी जली कठी सुनने वाली नहीं थी। समय जो चाहे सो कराये। नहीं तो वह भी क्या छोटी बीबी से बोलने में कम थी, फिर भी चुपचाप कमरे के बाहर चली गयी। उसका अन्तर जल रहा था, क्रोध से सारा शरीर काँप रहा था।

किन्तु मुन्नी रोती चिल्लाती रही। उसे डाटते हुए छोटी बीबी ने कहा—'अरे अभी क्यों चिल्लाती है। जब पापा आयेंगे तब तुम्हारी खबर लेंगे। एक एक खुरापात अब तुझे सूझने लगी है। ज्यों-ज्यों बड़ी होती जाती है त्यों-त्यो नये नये ढंग होते जाते हैं।'

इतना सुनते ही मुन्नी का हृदय भय से काँप उठा। सचमुच मैंने बहुत बड़ा अपराध किया। पापा आवेंगे तो बहुत मारेंगे। अरे राम! यह सोच वह और भी तेज रोने लगी। यों तो उसको असह्य पीड़ा थी ही।

सुखिया उसे धीरे-धीरे मलती रही। अब हाथ और पैर दोनों की जोड़े सूज गयी थीं। वह छोटी बीबी को दिखाते हुए बोली—'देखिए, बीबी जी जोड़ों में सूजन आगयी है।'

छोटी बीबी ने सूजे स्थानों को दबाया। दबाते ही मुन्नी चीख उठी। फिर उसने उसके हाथ पैर मोड़ने चाहे। ओफ, इस बार तो वह और भी जोर से चिल्लाई और न हाथ मुड़ सका, न पैर। 'लगता है जोड़ों की हड्डियाँ खिसक गयी हैं।...जरा तुम इसे देखती रहो मैं डाक्टर को फोन करती हूँ।' छोटी बीबी ने कहा।

वह बाहर दालान में फोन करने गयी, किन्तु डाक्टर बनर्जी का नम्बर क्या है? उसे मालूम न था। डाइरेक्टरी भी तो यहाँ नहीं है। अच्छा इन्क्वायरी से पूछूँ। उसने दो बार इन्क्वायरी भी माँगी, पर वह खाली न थी। उनकी झुंझलाहट बढ़ती ही जा रही थी।

उधर बगीचे में भगेलू दिखाई पड़ा। छोटी बीबी ने जोर से अवाज लगाई। वह दौड़ा हुआ आया।—'तुम्हें डाक्टर बनर्जी का नम्बर मालूम है।' छोटी बीबी ने उसे पास आते ही पूछा। उसने देखा छोटी बीबी घबरायी हुई हैं। 'क्या बात है बीबी जी?' उसने पूछा।

'मुन्नी गिर पड़ी है। उसके हाथ और पैर के जोड़ों की हड्डियाँ खिसक गयी हैं।'

'अरे...कैसे?'

'क्या कहूँ भगेलू सब उसी कलमुँही की करनी से हुआ है। जल्दी करो डाक्टर को बुलाओ और फोन मिलाकर पापा से भी कह दो।'

'आप जरा भी मत घबराइये, मै अभी फोन मिलाता हूँ।...आप चलिए उसे देखिए...सब ठीक हो जाता है।'

जब से मुन्नी ने सुना था कि पापा आवेंगे तो बिगड़ेंगे, तब से उसकी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। वह पापा के स्वभाव को अच्छी

तरह जानती थी। वह नौकरों को एक-एक बात पर कैसा बिगड़ते हैं। रामू को तो चार आने पैसा चुराने पर कमरा बन्द करके कितना पीटा था, उसका सारा शरीर ही जैसे छिल गया था। फिर तो वह यहाँ आया ही नहीं, कभी नहीं आया। कितना अच्छा था रामू, मेरे साथ खेलता था। रामू चला गया...। अब पापा मुझसे पूछेंगे कि तुम क्यो आलमारी तोड़ रही थी, तो मै क्या जवाब दूँगी?' यह सोच वह और तेजी से चीखने चिल्लाने लगी। 'चुप रहो बेटी; डाक्टर साहब आते हीं होंगे। तुम्हारा दरद ठीक हो जायगा।' सुखिया उसे चुप कराती ही रही।

अब छोटी बीबी भगेलू को लेकर उस आलमारी के सामने खडी थी। गौर से देखने के बाद कुछ सोचकर भगेलू बोला—'छोटी बीबी आप ठीक कहती है। वही बात है। नहीं तों मुन्नी भला शीशा क्यों तोड़ती? इससे उसे क्या लाभ? इसमें तो कोई ऐसी चीज भी नहीं है जो उसके मतलब की हो।...यह भी बहुत बड़ी नीचता है। आखिर जब सरला को गिलास लेना था तो उसने मुन्नी से क्यों कहा? खुद शीशा तोड़कर क्यों नहीं ले लिया। बेचारी की व्यर्थ में जान हती गयी।'

'खुद कैसे लेती, तब तो चोर न बनती। ऐसे तो दूध सी धोयी बनी है न।'

'है, बड़ी चालाक...सोचा मुन्नी से निकलवा लूँ और फिर गायब करूँ,...खैर...।'

'लेकिन अब उसकी कोई न कोई दवा जरूर करनी है भगेलू, नहीं तो घर चौपट हो जायगा।'

'सो तो है ही।' भगेलू बोला। इसके बाद दोनों मुन्नी के पास गये। छोटी बीबी चारपायी पर बैठ गयी। भगेलू खड़ा रहा। मुन्नी चीखती रही।

"बाबूजी को फोन कर दिया है न ?' छोटी बीबी ने भगेलू से पूछा।

"हाँ, कर तो दिया है, पर मेरी बात सुनकर वह झुंझलाते हुए जोर से बोले—'तुमलोग रोज ही कुछ न कुछ खुरापात खड़ा कर ही देते हो। मेरी तो जान आजिज आगयी...।" फिर वह कुछ क्षण रुक कर सोचते हुए बोला —'बीबी जी आप यहीं रहिए, सरकार बड़े नाराज हैं। हो सकता है, वे आते ही न आव देखे न ताव; मुन्नी को पीटना शुरु करदें। आप रहेंगी तो बेचारी बच जायगी।'

मुन्नी अब छोटी बीबी की ओर देखकर अत्यन्त कातर स्वर में रोने लगी।

'आखिर तुमने शीशा क्यों तोड़ा, बेटी ?' छोटी बीबी ने सहानुभूति भरे स्वर मे पूछा।

'...........' वह चीखती रही।

'हाँ, हाँ मुन्नी, सही-सही बता दो। यदि तुम सब सच बता दोगी, तो कुछ नहीं होगा। नहीं तो पापा बहुत मारेंगे, हाँ।' भगेलू बोला।

'........' मुन्नी आखिर क्या बताये।

अन्त में छोटी बीबी ने कहा—'क्या सिल्लो दीदी ने तुमसे कहा था कि गिलास निकाल कर मुझे दे दो ?'

मुन्नी जिसके लिए इतनी व्यग्र थी वह जैसे अब उसे मिल गयी। फिर भी व्यग्रता कम तो नहीं हुई पर उसने सोचा कि यह तरीका अच्छा

है। सिल्लो दीदी का नाम लेने से शायद पापा मुझे न मारें। फिर भी वह दीदी को झूठ कैसे लगाये। वह असमंजस में थी, रोती जाती थी।

किन्तु छोटी बीबी बार-बार पूछ रही थी—'चुप क्यों हो बेटी? बोलो क्या बात है? क्या सिल्लो दीदी ने तुमसे कहा था?'

उस बालिका का अबोध मन उसे 'हाँ' करने के लिए रोक रहा था। पर उसके बचाव का कोई दूसरा तरीका भी तो नहीं था। मन के विरोध करने पर भी उसके मस्तिष्क ने उससे सिर हिला कर 'हाँ' कहवा ही दिया।

अब छोटी बीबी ने प्रश्नवाचक मुद्रा में भगेलू की ओर देखा। भगेलू ने बड़ी गम्भीरता से सिर हिलाया और बोला—'आपका सोचना बहुत ठीक निकला बीबी जी।' फिर वह मुन्नी के बाल बड़े प्रेम से सहलाने लगा और उससे धीरे से बोला—'फिर तुम क्यों रोती हो मुन्नी। गलती तुम्हारी है नहीं। गलती तो सिल्लो दीदी की है। पापा यदि तुमसे कुछ कहें; तो तुम सब साफ-साफ कह देना।··और फिर तुम्हारी जीजी तो तुम्हारे पास रहेंगी ही।'

'जीजी, बहुत तेज दरद हो रही है।' मुन्नी रोती हुई बोली।

'हाँ बेटी हाँ, दरद तो हो ही रही होगी। घबराओ मत बेटी, अभी डाक्टर साहब आते ही होंगे।··जरा फिर फोन करो तो भगेलू, देखो क्या बात है, डाक्टर साहब अभी तक क्यो नहीं आये?'

'अच्छा अभी देखता हूँ।' इतना कह कर वह झटके से बाहर आया।

किन्तु जिधर फोन था वह उधर नही गया। मुस्कराता और विचित्र

ढंग से हाथ हिलाता वह सरला की कोठरी की ओर बढ़ा। जैसे वह किसी नये खुरपात की योजना करने जा रहा हो, किन्तु इस समय उसे सरला को देखने मात्र की इच्छा थी। पता नहीं वह क्या कर रही हो?

किन्तु जब वह उसके कमरे के सामने पहुँचा; दरवाजा भीतर से बन्द था और जोर-जोर से सिसकने की आवाज आ रही थी। जब उसने अपना कान दरवाजे से बिल्कुल सटा दिया, तब उसे सिसकन के कम्पित स्वर के भीतर ही सुनायी पड़ा—'हे भगवान! मैने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि अब तुम मुझे कहीं का भी रहने देना नहीं चाहते। जिधर जाती हूँ उधर ही मेरे लिए दरवाजा बन्द हो जाता है। चारो ओर घृणा, अपमान, लांछन। बताओ अब मैं क्या करूँ? बोलो नाथ! अब मैं क्या करूँ? तुम अन्तरयामी हो, सब कुछ जानते हो। बोलो भगवान, क्या सचमुच मैं अभागिन हूँ? क्या सचमुच मै अपराधिन हूँ? क्या मुझे तुमने इस संसार में दुख-द्वन्द्व सहने के लिए ही भेजा है? अब कुछ भी दिखायी नहीं देता प्रभु! अब मुझमें शक्ति भी नहीं है कि मैं यह सब सह सकूँ। चारो ओर अँधेरा है। कोई रास्ता दिखाओ नाथ! द्रौपदी की एक पुकार पर तुम चले आये, किन्तु मैं इतनी हीन, इतनी पतिता···।' इसके बाद वह जोर से रोने लगी।

अब भगेलू दरवाजे से हटा और हटते हुए जोर से हँसा। उसके हँसी की आवाज इतनी तेज थी कि सरला उसे बड़ी आसानी से सुन सकती थी, किन्तु वह अपनी दुखभरी कहानी खुद सुनने और कहने में इतनी मग्न थी कि उसने कुछ सुना ही नहीं।

भगेलू ने ज्योंही फोन करने के लिए रिसीवर उठाया त्योंही देखा कि

डा० बनर्जी की मोटर बगीचे में आ गयी है। वह पोर्टिको की ओर दौड़ा और जब मोटर रुकी उसका दरवाजा खोलकर डाक्टर साहब को नमस्कार किया। उनका बेग उठाया। आगे-आगे डाक्टर चले और पीछे-पीछे भगेलू।

मुन्नी को अच्छी तरह देखकर डाक्टर साहब छोटी बीबी से अंग्रेजी में बोले—'हड्डी खिसकी नहीं है, बल्कि टूट गयी है। दर्द तो भयङ्कर हो रहा होगा। यह तो कहो यह होश में है; नहीं तो ऐसी पीड़ा में लोग होश में नहीं रहते। खैर घबराने की कोई बात नहीं, प्लैस्टर लगाना होगा।' फिर उन्होंने भगेलू से कहा—'देखो, ड्राइवर से कहो कि मुकर्जी बाबू को प्लैस्टर लगाने के सभी सामानों के साथ बुला लाये।

भगेलू फौरन दौड़ा, तब डाक्टर ने छोटी बीबी से कहा—'यदि आप गरम कपड़े से सेकने का प्रबन्ध करें तो कुछ आराम हो जायगा। दर्द जरूर कम हो जायगा।'

मुन्नी का चीखना, चिल्लाना डाक्टर साहब के आने पर भी ज्यों का त्यों बना रहा।

डाक्टर की राय और छोटी बीबी का इशारा पाते ही सुखिया भंडारे से आग लेने गयी।

उधर जब भगेलू डाक्टर साहब के ड्राइवर को विदा कर लौट रहा था, तो उसने देखा छोटे सरकार की कार आ रही है। वह वहाँ रुक गया। उसने यह भी देखा कि छोटे सरकार के साथ डाक्टर श्रीवास्तव भी हैं।

ज्योंही मोटर का दरवाजा खोलने के लिए भगेलू आगे बढ़ा त्योंही छोटे सरकार ने पूछा—'क्या डाक्टर बनर्जी आ गये?'

"जी हाँ।'

मोटर से बाहर आकर छोटे सरकार ने पुनः पूछा—'अब मुन्नी की तबीयत कैसी है?'

'वैसी ही।' भगेलू ने कहा।

इतना सुनते ही दोनों हवा की तरह भीतर जाने के लिए लपके।

□ □ □

प्लैस्टर लगा कर डाक्टर चले गये। मुन्नी सोने की दवा पीकर सो गयी थी। छोटे सरकार वहाँ से उठकर मालकिन के कमरे में गये। अवसर पाते ही छोटी बीबी ने सारी बातें उनसे कह दी। सब कुछ सुनने के बाद वे झुँझलाकर बोले,—"मेरे जान को तो आफत रहती है। जितने भी नौकर रखो, सब साले चोर ही निकलते हैं।" फिर मालकिन की ओर रुख करके वे कहते रहे—'अब तुम्हीं बताओ मै क्या करूँ? तुम तो बिस्तर से उठ नही सकती। एक मैं ही हूँ, कहो तो आफिस जाऊँ या घर में बैठकर इन नौकरों की निगरानी किया करूँ?'

मालकिन तो चुप थी ही। छोटी बीबी को बहुत कुछ कहना था पर वह भी छोटे सरकार का खराब रुख देखकर चुप हो गयी। पर छोटे सरकार बोलते ही रहे—'अब देखो, आज ही मैने मुन्नी के मास्टर साहब को कल से आने के लिए फोन किया है और यहाँ यह हाथ पैर तोडकर बैठ गयी।'

'लेकिन पापा इसमें मुन्नी का क्या दोष ?' छोटी बीबी ने कहा।

''दोष उसका हो चाहे न हो। लेकिन हाथ पैर तो उसी का टूटा। आफत तो एक खड़ी हो गयी।' फिर वह कुछ समय के लिए कुछ सोचता हुआ शान्त हो गया और सब भी चुप थे।

यह क्षणिक सन्नाटा मालकिन ने ही तोड़ा। वे बोलीं—"कैसे हैं मुन्नी के नये मास्टर साहब ?'

'अच्छे ही हैं। झुनझुनवालाजी के बच्चों को वे ही पढ़ाते हैं।'

"अच्छा, तब तो मैं उन्हें जानती हूँ। क्यों पापा वही न, जो गोरे-गोरे से, नाटे से हैं। पतले दुबले हैं और चश्मा लगाते हैं।" छोटी बीबी बोली।

'हाँ हाँ, वही। तुझे कैसे मालूम रे ?'

'मैंने उन्हें कई बार झुनझुनवाला के यहाँ देखा है।' छोटी बीबी ने कहा।

फिर मालकिन बोली—"तब उनको फोन करा दीजिए कि मुन्नी अचानक गिर पड़ी है। उसके हाथ तथा पैर की हड्डियाँ टूट गयी हैं। प्लैस्टर लगा है। जब उसकी तबीयत ठीक हो जायगी तब मैं पुनः आपको याद करूँगा ?'

"जी हाँ, दुख तो यह है कि मै आप ऐसा बुद्धिमान नहीं हूँ, जो ऐसा कर दूँ। यदि आपकी राय से चलूँ तो वह मास्टर भी सोचे कि रमेशचन्द्र गुप्त कितना दरिद्र आदमी है। लड़की बीमार हुई तो पैसा बचाने के लिए कह दिया कि मत आइये...। अब जब कह दिया है, तब कल से ही उन्हें आने दो। नहीं कुछ तो एकाध घन्टा मुन्नी को कहानी

ही सुनायेंगे। उसका मन ही बहलेगा। यह भी एक तरह की पढ़ाई ही है और अभी तो लड़की को मास्टर से परचते महीनो लग जायेगें।"

फिर छोटे सरकार का जवाब देना मालकिन ने ठीक नहीं समझा।

चार बज रहे थे। चाय का समय हो गया था। छोटी बीबी बोली—'पापा चाय मँगवाऊँ।'

"हाँ, यहीं मँगवाओ।".. सरला कहाँ है?

"वह तो जब से मुन्नी गिरी तब से दिखायी ही नहीं पड रही हैं। शायद कहीं गयी हैं क्या?"

'अरे यह कैसे हो सकता है? देखो अपने कमरे में होगी।'

छोटी बीबी बाहर आयी। वह खुद सरला के यहाँ नही गयी, वरन् रामदेई को उसे बुलाने के लिए भेजा और स्वयं रसोईघर मे चाय के लिए कहने चली गयी।

जब सरला मालकिन के कमरे में आई तब वह विचित्र दिखायी पड़ी। उसकी बड़ी बडी नलिनो सी आँखों की पलकें रोते रोते कुछ फूल गयी थीं। साड़ी सिर पर से खसक कर कन्धे पर आ गयी थी। उसकी नागिन सी चोटी खुली थी और बाल प्रलयकारी मेघो से सघन थे। गाल नम और गरम थे जैसे तपी हुई धरती पर एक झोंका पानी बरस कर निकल गया हो। पूरी आकृति कमल के उस फूल की तरह मालूम पड़ी जो किसी तेज बर्फीले तूफान से अच्छी तरह झकझोर कर शिथिल कर दिया गया हो।

वह चुपचाप आकर छोटे सरकार के सामने खड़ी हो गयी। उसका

यह रूप देखकर न तो मालकिन ही कुछ बोली और न छोटे सरकार ही कुछ पूछ सके।

वह खड़ी ही थी, अटल, निश्चल जैसे जीवन के छोर पर मौत खड़ी रहती है। फिर कुछ समय बाद छोटे सरकार ने बड़ी नम्रता से कहा—बैठ जाइये, आप से कुछ बातें करनी हैं।"

वह मालकिन के पलंग के पैताने एक कोने में अपने को सिमेटती हुई बैठ गयी। तब छोटे सरकार ने बड़ी शान्ति से पूछा—"क्या तुमने मुन्नी से कहा था कि पापा की आलमारी से चाँदी का गिलास ले आओ?"

'यह आप से किसने कहा?' उसकी आवाज तेज थी। उसकी आँखें जैसे आग उगल रही थीं।

'मुन्नी ने।'

'मुन्नी ने...! उसे अपार आश्चर्य हुआ।

'हाँ, जब मैंने उससे पूछा कि तुमने क्यों उस आलमारी के शीशे तोड़े, तब उसने कहा।'

सरला अब समझ गयी कि अपनी रक्षा के लिए मुन्नी ने ऐसा कहा है, नहीं तो वह बहुत पीटी जाती। जब भय झूठ बोलने के लिये बाध्य करे और उससे सचमुच रक्षा होती हो तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं है। तब तो उसने मेरा नाम लेकर कोई बुरा नहीं किया। मुझ पर उसका ऐसा गहरा विश्वास था तभी तो उसने मेरा नाम लिया। नहीं तो कह सकती थी—जीजी ने कहा, मगेलू ने कहा या खदेरू दादा ने कहा; पर उसने किसी का नाम नहीं लिया। सिल्लो दीदी को ही उसने अपना कवच बनाया। मुन्नी के भोले एवं भावुक अपनत्व पर भी उसे इस

समय थोड़ा गर्व हो गया और उसने बड़े साहस के साथ कहा—'हां, हमने कहा था।'

"तो क्यों कहा?"

"उसने मुझसे एक दिन कहा था कि पापा के पास चाँदी का बहुत अच्छा गिलास है। मैंने सोचा यह उस गिलास में आसानी से दूध पी लिया करेगी। तब मैंने उससे कहा था कि तुम उसे ले आना, मैं उसमें तुझे दूध पिलाऊँगी।

छोटे सरकार कुछ सोचते रहे फिर बोले—'पर यह दूध पीने का समय तो नहीं था।'

सरला बिल्कुल चुप थी।

फिर वह कुछ सोचकर बोला—'अच्छी बात है। अब जाइये। मुन्नी की अच्छी तरह देखभाल कीजिए। उसी को देखने के लिए मैंने आपको रखा है। उसका हाथ पैर तोड़ने के लिए नहीं।'

वह चुपचाप कमरे के बाहर चली आयी, पर उसे अभी तक मालूम नहीं था कि मुन्नी ने शीशा क्यों तोड़ा।

□ □ □

जब तक कोई गम्भीर आपत्ति न आ जाती तब तक छोटे सरकार कभी भी चार साढ़े चार के पहले अपने आफिस से घर न आते, पर आज वह दो बजे के पहले ही आ गये। उनका चेहरा भी सोच में पड़ा

मालूम हो रहा था। मोटर से उतरते ही वे सीधे अपने कमरे में आये और पहुँचते ही वह वहीं से चिल्लाये—'पानी।'

नौकरानी पानी लेकर पहुँची। वे आराम कुर्सी पर लेटे थे। ऊपर बिजली का पंखा चल रहा था, फिर भी चेहरे पर पसीने की बूँदे थीं। हाथ में पानी का गिलास लेकर उन्होंने नौकरानी से कहा—'जरा सरला को तो बुला लाओ।' नौकरानी ने समझ लिया कि कोई गम्भीर बात है।

तब तक वह बैठा बड़ी गम्भीरता से सोचता रहा। उसके प्रत्येक हरकत से व्यग्रता प्रकट हो रही थी।

जब सरला आयी तब उससे बड़ी गम्भीरता से बोला—'आज मुझ पर एक विचित्र आफत आने वाली है मै तुमसे कुछ गम्भीर बातें करना चाहता हूँ।'

वह उसकी मुद्रा और वाणी से कुछ समझ न सकी; बड़ी दबी जबान से बोली—'कहिये।'

'लेकिन मैं यहाँ बातें करना ठीक नहीं समझता। आओ बगीचे में चलें।' दोनों बगीचे में गये और लान पर बैठकर बातें करने लगे। छोटे सरकार को ऐसा सन्देह था कि यदि कोई भी गुप्त वार्ता कमरे में की जायेगी, तो हो सकता है; बाहर से छिपकर उसे कोई सुन ले। इसी से उन्होंने लान पर ही बातें करनी ठीक समझीं। पास क्या बहुत दूर तक उनकी बातचीत सुननेवाला यहाँ कोई नहीं था।

छोटे सरकार ने कहा—'आज मुझे अचानक कलेक्टर साहब ने अपने बँगले पर बुलाया था और उन्होंने एक बड़ी दुखद बात कही।'

'क्या ?' सरला की जिज्ञासा व्याकुल हो उठी।

'उनके पास गुमनाम पत्र आया है, जिसमें लिखा है कि अनाथालय से चोरी कर भगानेवाली लडकी रमेशचन्द्र गुप्त के यहाँ शरण पा रही है। फिर भी पुलिस का कहना है कि मुजरिम का पता नहीं है। इस पत्र की प्रतिलिपियाँ और भी बड़े बड़े सरकारी कर्मचारियों के यहाँ भेज दी गयी हैं। अब तक तो मामला दबा था, पर अब...?'

यह सुनते ही उसका सिर चकराने लगा। उसके जीवनाकाश में घने बादल तो आ ही रहे थे पर अब उनमें बिजली की भयंकर कड़क भी सुनायी पड़ी। वह कुछ बोल न सकी।

छोटे सरकार ने कहा—'इसके लिए कलक्टर साहब ने एक तरकीब बतायी है। उन्होंने कहा है कि उस लडकी को कहीं दूसरी जगह हटा दो। जहाँ लोग उसका पता न पा सकें। मैं कल सबेरे ही आपके यहाँ पुलिस की इनक्वायरी भेजूँगा। देख सुनकर पुलिस आपके मुआफिक रिपोर्ट लिख ही देगी कि मुजरिम का पता नहीं है।' वह कुछ क्षण के लिए रुके, कदाचित यह जानने के लिए कि इस बात का सरला पर क्या प्रभाव पड़ता है; पर वह कुछ न बोली, चुपचाप सोचती रही। छोटे सरकार ने पुनः कहा—'हाँ सरला, मैं भी यही ठीक समझता हूँ। इससे तुम्हारी भी रक्षा हो जायगी और मेरी भी प्रतिष्ठा बच जायगी।'

सरला की मुख-मुद्रा बदली और हृदय का दबा विद्रोह वाणी में व्यक्त हुआ—'यदि पुलिस मुझको पकड़ ही लेगी तो क्या होगा ?'

सेमर की रुई की तरह हलकी जरा सी हवा में उड़ जानेवाली में प्रखर झंझावात से टक्कर लेने की क्षमता कहाँ से आयेगी ? यदि कोई दूसरा

होता, तो वह सोचता और एक क्षण के लिए अवाक रह जाता पर छोटे सरकार चुप रहने वाले नहीं थे, उन्होंने छूटते ही जवाब दिया—'तुम पर मुकदमा चलेगा और तुम्हें सजा होगी। मेरे यहाँ से पकड़ी जाओगी, इससे मेरे मुख पर भी कालिख लगेगी।'

छोटे सरकार की तेज आवाज और कालिख लगने की बात सुनकर वह चुप ही रह गई, नहीं तो वह कहती क्या जज पुलिस की ही बात सुनेगा जो मुझे सजा देगा। मै भी उससे कुछ कहूँगी, कुछ पूछूँगी। क्या उसके कान मेरे लिए बन्द रहेंगे ?

वह ऐसा ही सोच रही थी कि छोटे सरकार बोले—'...और यह सोचो कि मुकदमे में मै भी सफाई दूँगी और छूट जाऊँगी तो यह तुम्हारी सबसे बड़ी मूर्खता होगी, क्योंकि तुम ऐसी कोई सफाई नहीं दे सकती हो।'

'क्यों ?' उसने बड़े धीरे से पूछा।

'इसलिए कि तुम इतने दिनों तक फरार थी। यदि सचमुच तुमने अपराध नहीं किया था और सफाई देना चाहती रही, तो आज तक मुँह छिपाये क्यों रही ?'

सचमुच यह सोचने की बात थी। उसने अब तक अपने को छिपाया क्यों ? नीचा सिर किये घास के तिनके तोड़ती और सोचती रही। यह क्षणिक सन्नाटा भी छोटे सरकार के लिए असह्य था। वे बोले—'अब सोचने से कोई लाभ नहीं है। मैंने एक बँगला तुम्हारे लिए ठीक कर दिया है। पूरा बँगला एक तरीके से खाली ही समझो। केवल दो ही कमरे में तीन प्राणियों का छोटा सा ईसाई परिवार रहता है। इसमें दो

लड़कियाँ हैं। एक तुमसे कुछ बड़ी उम्र की और दूसरी कुछ छोटी उम्र की है और है उनका बूढ़ा बाप, और वह भी मौत के किनारे है। किसी प्रकार की तुम्हें तकलीफ न होगी। दोनों लड़कियाँ है बड़ी मिलन-सार। तुमसे मिलकर वे बड़ी प्रसन्न होंगी। अभी कलक्टर साहब के यहाँ से लौटते समय मैं वहाँ गया था। मैंने उनसे तुम्हारी तारीफ भी कर दी है।'

'केवल एक बूढ़ा...और दो लड़कियाँ...,' वह सोचते हुए मन्द स्वर में बोली, जैसे उसे विश्वास ही न हो पा रहा हो। एक बूढ़े के साथ दो जवान लड़कियाँ कैसे रहती होंगी आखिर! क्या वहाँ और कोई नहीं जाता होगा? फिर कुछ समझ कर पूछा—'बूढ़ा क्या करता है?'

'अब तो कुछ नहीं करता। मैंने कहा न कि वह पका आम है। भला क्या कर सकता है, सिवा इसके कि चारपाई पर पड़ा रहे और वक्त बेवक्त खाँसे।

'तो ये लड़कियाँ कुछ करती होंगी? आखिर उनका खर्चा कैसे चलता होगा।'

इस प्रश्न पर छोटे सरकार थोड़ा गड़बड़ाये, किन्तु फिर सम्हलकर बोले—'—बूढ़े का बैंक में रुपया जमा है। उसी के व्याज से खर्चा चलता है।'

किन्तु सरला के लिए अपने प्रश्न का दूसरा अंश उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना पहला। अतएव उसने उसे फिर से पूछा—'वे लड़कियाँ क्या करती हैं?'

'शायद अभी तक पढ़ती ही हैं।...खैर कुछ भी हो तुम्हें वहाँ तकलीफ नहीं होगी।' बड़ी गम्भीरता से सोचते हुए छोटे सरकार बोले।

'वहाँ मुझे करना क्या होगा?' सरला ने पूछा।

'करना क्या होगा, कुछ भी नहीं।'

'तब मैं खाऊँगी क्या?'

'अरे जब तक मैं हूँ; तब तक तुम्हें खाने की चिन्ता करने की जरूरत क्या है?'

'नहीं; मैं बिना कुछ किये व्यर्थ टुकड़े नहीं तोड़ूँगी।'

'देखो! भावुकता में मत बहो। कुछ बुद्धि से काम लो। हम लोगों को जल्दी से जल्दी यहाँ से चल देना है। व्यर्थ की बकवाद में समय गवाने से बनता काम भी बिगड़ सकता है। बाद में सोचने को बहुत समय मिलेगा कि बिना काम किये टुकड़े तोड़ूँ या न तोड़ूँ।...जाओ चुपचाप अपनी सारी चीजें सहेज लो। चाय पीते ही मैं यहाँ से चल पड़ूँगा। दोनों लान पर से उठकर कमरे की ओर बढ़े। बीच में एक बार फिर उसने सरला से कहा—'सारी तैयारी छिपे तौर से ही करना, जिससे किसी को भान न हो कि हम कहाँ जा रहे हैं।'

इधर सरला अपने सामान सहेजने लगी, इधर छोटे सरकार ने अपने कमरे में आकर चाय का हुक्म दिया।

भगेलू चाय के लिए भंडारे में गया। महादेव और महाराज में यहाँ पहले से ही कोई गम्भीर मन्त्रणा हो रही थी। भगेलू को देखते ही महादेव बोला—'देखा, घास पर अकेले में कैसी घुल घुल कर बातें हो रही थीं।'

'क्या कहूँ ? मुझे तो देखने में भी शर्म आ रही थी। अभी कल ही इस कलमुँही ने बेटी के हाथ पैर तोड़े हैं। उसे डाटना फटकारना तो दूर रहा। चल पड़ा प्रेमालाप। भगेलू बोला।

'नहीं, कुछ कहा जरूर होगा। नहीं तो आज आफिस से हड़प्पू इतनी जल्दी मनाने न आ जाते।'

'हो सकता है। पर क्या जादू मारा है उस औरत ने भी। आज यदि किसी दूसरे के कारण मुन्नी को इतनी चोट लगी होती तो उसकी सामत आ जाती।'

'अरे राम, शायद ही उसकी हड्डी पसली साबूत बचती।' चाय का प्याला ठीक करती हुई रामदेई बोली।

'लेकिन वह औरत भी खूब है, आँखों में पानी, चेहरे पर हैरानी, दिल में जवानी लिए हुए। जिसके ऊपर नजाकत की अपनी जादू की छड़ी हिला दे, बस वह वश में हो जाये।'

'अरे वाह रे भगेलू वाह, तू तो कव्वालों की तरह जोड़ भी मिला लेता है।'

'क्या समझते हो, महादेव से जिस किसी पत्थर का भी पाला पड़े तो वह भी कौव्वाल हो जाय और मैं तो फिर भी आदमी हूँ।'

सभी जोर से हँस पड़े। महाराज विचित्र ढंग से अपना हाथ सिर पर रखकर बोला—'अरे भइया, यह कलयुग है, कलयुग। कलयुग में औरत का और बरसात में नदी का थाह जल्दी नहीं लगता।'

'ठीक कहते हो महाराज, सबने एक स्वर से समर्थन किया, फिर

महादेव से भगेलू ने पूछा—'क्या छोटी बीबी ने आज अपने बाप की यह करनी नहीं देखी क्या ?'

'देखी क्यों न होगी। उनके कमरे की खिड़की तो ठीक सामने ही पड़ती है, पर इससे क्या होता है। छोटी बीबी लाख करे, पर उसके सामने किसी की भी माया लगने वाली नहीं।'

'है तो ऐसी ही बात। पर हिम्मत नहीं हारनी चाहिए दोस्त। कुछ न कुछ लगाये रहो तभी वह छोड़कर भागेगी। अरे हद न हो गयी, जब से आयी है तब से कोरी-कोरी तनख्वाह पर ही कट रही है।' फिर वह महाराज की ओर देख मुस्कराया और बोला—'......और आजकल इनकी भी निगाह नहीं होती।

'अरे बाबा मैं क्या करूँ ? मेरी कुछ चले तब तो। एक दिन मजूरिन को चने की भूसी बाँध कर दे दी, तो इस नयी मालकिन (सरला) ने उसे उसके हाथ से लेकर और खोलकर देखा। तब से मैंने कान पकड़ा।' इतना कहते ही उसके हाथ सचमुच कान की ओर बढ़ गये थे।

□ □ □

पाँच बज चुके थे। धूप धरती पर से खिसक चुकी थी। हल्की गुलाबी साड़ी पहने सन्ध्यासुन्दरी आकाश से धीरे-धीरे अधरों पर अँगुली रखे, 'चुप-चुप' का मूक संकेत करती चली आ रही थी। जब संसार के सभी पक्षी दिन भर की थकावट से चूर अपने घोंसले में आराम करने

आ रहे थे तभी सरला जीवन की थकावट से चूर छोटा सा बक्स लिए घोंसले के बाहर निकली। आगे आगे छोटे सरकार थे।

इस प्रकार उसे जाते सभी नौकर एकटक देखते रहे, पर किसी की भी कुछ कहने या पूछने की हिम्मत न हुई। केवल महादेव ही पास आकर बड़ी ढिठाई से बोला—'सिल्लो दीदी, संदूक मुझे दे दीजिए, पहुँचा दूँ। आप काहे को कष्ट सह रही हैं।'

सरला के कटे पर यह नमक था। वह भीतर ही भीतर तिलमिलाकर रह गयी। उसने मारे क्रोध में उसकी ओर से मुँह फेर लिया और चुप-चाप आगे बढ़ी जैसे अब उसका चेहरा देखना भी पसन्द नहीं करती।

सरला को इसका महान् दुख था कि वह चलते समय मुन्नी से न मिल सकी और मालकिन को भी प्रणाम नहीं किया।

ठीक इसी समय मैं भी बगीचे में प्रविष्ट हुआ। मेरी निगाह पहले छोटे सरकार पर पड़ी और फिर सरला की आकृति पर गड़ गयी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। उस सिनेमाहाल वाली घटना के बाद मुझे कभी आशा नहीं रही कि मैं उससे मिल सकूँगा, पर वह आज मेरे सामने थी। आप मेरी बुद्धि, मन का अनुमान लगा सकते हैं। उसके इस अप्रत्याशित दर्शन ने मेरी बुद्धि ही जैसे हर ली थी। मैं छोटे सरकार के एकदम निकट आ गया था, पर उन्हें नमस्कार करना तक भूल गया। अन्त में वे ही बोले—'नमस्कार मास्टर साहब, आइए।' तब कहीं मैं जागा।

खदेरू सामने की क्यारी में मिट्टी ठीक कर रहा था। उन्होंने उससे

कहा—'देखो खदेरू, ये मुन्नी के नये मास्टर साहब हैं। इन्हें छोटी बीबी के पास ले जाओ।'

उसके बाद दोनों पोर्टिको में खड़ी कार की ओर बढ़े और मै खदेरू के साथ भीतर बंगले की ओर चला। इस बीच मैने दो बार मुड़कर सरला को देखने की कोशिश की। एक बार तो देखा कि वह मुझे मुड़कर देख रही है, पर आँखे अधिक ठहर न सकीं। हम दोनों ने अपना मुँह फेर लिया।

आज ट्यूशन का पहला दिन था। अच्छी आवभगत हुई। चाय पान हुआ। लोगो से परिचय हुआ। छोटी बीबी ने सबसे अधिक प्रसन्नता प्रकट की। मुन्नी तो बीमार ही थी, उसे मैंने कई कहानियाँ भी सुनायी। पर वह उतनी खुश दिखाई न दी, जितने और बच्चे मेरी कहानी सुनकर खुश नजर आते है। अंत में जब चला तो घड़ी में सात से अधिक हो गया था। रात का पहला चरण पड़ चुका था। कालिमा बढ़ रही थी। आकाश में बादलो के कुछ टुकड़े इधर-उधर आवारा की तरह घूम रहे थे। वृक्षों की शाखाओं पर तो अँधेरा जम-सा गया था। जब तेज हवा में वे शाखायें हिलती, तो ऐसा लगता मानों कोई उन्मादिनी अपनी लटें खोलकर बड़ी तेजी से झकझोर रही है। कुछ समय तक ऐसी खड़खड़ाहट सुनायी पडती और फिर सन्नाटा हो जाता क्योंकि उस समय की हवा हठीली लड़की की तरह थी, जो कभी अपनी जिद् में मचलती और छैलातो पर कभी अपने हठ में सबसे 'कुट्टी' कर के गाल फुला लेतो।

मैं लपका आगे बढ़ा चला आ रहा था। सड़क सुनसान थी मेरे मस्तिष्क में वह बिल्कुल नाच रही थी। मै सोच रहा था, क्या सचमुच

यह वही सरला है या मैं भूल कर रहा हूँ ? मैंने स्मृति के शीशे में देखा उसका रूप-रंग, आचार-व्यवहार, सब कुछ स्पष्ट दिखाई दिया। उसकी शफरी जैसी विशाल रस भरी आँखों में कितना भोलापन था। उसके कटे अंजीर से लाल कपोलों पर कैसी सुकुमारता थी। चेहरे पर बिखरी कारुणिक भावुकता बरबस अपनी ओर खींच लेती थी, पर यह सरला तो उससे बहुत भिन्न दिखायी दी। आँखें तो वैसी ही थी, पर उसमें वैसा भोलापन नहीं था, आकृति पर वह भाव नही था—और शिष्टता, उसे तो वह जैसे बिल्कुल भूल गयी है, नहीं तो सामना होते ही वह मुझे नमस्कार जरूर करती। पर अब वह बहुत बदल चुकी है। बिल्कुल परिवर्तित दिखायी देती है।

मेरे मस्तिष्क मे विचित्र सघर्ष चल रहा था। उसके जीवन का एक एक चित्र आँखों के सामने आता और चला जाता। जब वह अनाथालय की अँधेरी कोठरी मे बन्द थी, जब मेरे यहाँ आयी, जब मैने उसे सिनेमा मे देखा। सब कुछ एक विचित्र चमक से मेरी स्मृति के सामने आया और चमककर बड़ी क्षिप्र गति से निकल गया, पर इन सभी चित्रों में कोई संगति दिखायी न पड़ी; कोई ऐसी बात नहीं थी, जिससे मै कुछ अधिक समझ सकूँ। मेरे लिए इन सभी चित्रों की संगति नारी के मन की भाँति अज्ञेय और ब्रह्म की तरह अनजान थी।

जब मैं घर पहुँचा, अँधेरा गाढ़ा हो चुका था। उसकी प्रतिमा अब भी मेरी आँखों के सामने थी। मैंने लालटेन जलायी और बिस्तर पर पड़ कर कुछ पढ़ने का प्रयत्न करने लगा, पर मन नहीं लगा। कई पुस्तकें उठायी, पन्ने उलटकर उन्हें रख दिये। मुझे ऐसा लगा जैसे मुझसे

कोई अत्यन्त धीमी आवाज में पूछ रहा है—'क्या यह आज का अखबार है ?'

मैंने चारो ओर देखा कहीं कोई नहीं था। क्या अँधेरा भी मुझे परेशान करना चाहता है या चिढ़ा रहा है ? पर सचमुच यह धीमी आवाज मेरे ही हृदय की प्रतिध्वनि थी जो उस अँधेरे की दीवार से टकरा कर आ रही थी और जिसमें मुझे सरला का स्वर सुनायी पड़ा। फिर जैसे वह मेरे सामने खड़ी हो गयी और बोली—'यह मेरे एक कान का टप है। इसे रख कर मैं आपके मनीबेग से बीस रुपये ले जा रही हूँ। आप बुरा न माने, मैं किसी से व्यर्थ में एहसान लेना नहीं चाहती।' इसके बाद वह अदृश्य हो गयी।

मुझे याद आया। सचमुच वह अपना टप रखकर मनीबेग से बीस रुपये ले गयी थी। उसके साथ उसने एक पत्र भी लिखा था। मैं अत्यन्त शीघ्रता से उठा और अपनी सन्दूक में वह टप और चिठ्ठी खोजने लगा।

आप विश्वास करे, या न करे मैं उस समय इतना व्यग्र था कि मैंने तीन बार अपने सन्दूक का कपड़ा बाहर निकाला और रखा, पर मुझे वह टप दिखायी नही पड़ा। अन्त में हार कर फिर बिस्तर पर सो गया। और सोचा, कदाचित कहीं वह खो गया। थोड़ी देर बाद विचार आया, चलूँ एक बार फिर खोजूँ, शायद मिल जाय। सचमुच इस बार उसी सन्दूक में एक कागज की पुड़िया मिली जिसमें वह टप और चिठ्ठी थी। मैंने तुरत उस पत्र को पढ़ा, कई बार पढ़ा। उसकी यह पंक्ति मेरे कानों में बराबर गूंजने लगी,...आपने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है।

मैं यह सद्‌व्यवहार जीवन भर नहीं भूलूँगी।' और फिर मैं कुछ सोचने लगा। मैंने निश्चय किया कि यह टप उसे लौटा देना चाहिए।

दूसरे दिन जब मैं ट्यूशन पर गया, उसे लेता गया। छोटे सरकार अभी आफिस से आये थे। अपने कमरे की आराम कुर्सी पर पड़े आराम कर रहे थे। पास ही छोटी बीबी भी बैठी थी। मुझे देखते ही दोनों बोले—'आइये मास्टर साहब आइए।' छोटी बीबी तो उठकर खड़ी हो गयी।

मैंने खड़े ही खड़े कहा—'कल जो आपके साथ महिला जा रही थी उनके बॉक्स से यह टप गिर गया था।

उसे लेकर छोटे सरकार ने बड़े गौर से देखा। छोटी बीबी तो एक नजर में ही पहचान गयी, बोली—'हाँ पापा, यह सरला का ही टप है। उसका एक टप तो पहले ही कहीं खो गया था। एक ही बचा था। मास्टर साहब यदि आपका ध्यान न जाता तो यह भी खो जाता।'

छोटे सरकार उसे देखते और सोचते रहे। फिर वकीलों की तरह जिरह करते हुए बोले,—'जब इसे गिरते हुए आपने देखा तो उसी समय उठाकर क्यों नहीं दे दिया?' फिर वह बनावटी ढंग से मुस्कराये।

'उस समय तो मैंने केवल इतना देखा, जैसे कोई कटिया उसके बॉक्स से गिरी। मैंने सोचा कुछ होगा, जाने दो। पर जब लौट कर यहाँ से जाने लगा तब इसका नगीना चमका .।'

'ओहऽऽ' वह जोर से हँस पड़ा।

—नव

यह स्थान नगर से छः मील दूर तथा छोटे सरकार के बंगले से दस मील दूर पड़ता है। गंगा के एकदम किनारे ही है। गर्मी के दिनों में तो गंगा स्नान के लिए एक फर्लाङ्ग के करीब चलना भी पडता है पर बरसात में गंगा यहाँ तक चली आती है, और उजड़े बगीचे का पद बड़ी उमंग के साथ पखारती है।

बगीचे की चारो ओर की दीवारे एकदम जीर्ण होगयी है। सड़क की ओर तो एक स्थान पर यह दीवार ऐसी गिर गई है कि आदमी क्या कुत्ते भी बड़ी आसानी से घुस आते हैं और झाड़-झंकाड़ को चीरते भीतर गुलाब की क्यारी तक पहुँच जाते हैं, जैसे कोई योद्धा शत्रु की सेना चीर अपने लक्ष्य तक पहुँचे। गुलाब के छोटे-छोटे खूबसूरत पौधे इनकी हरकतों से एक बार काँप तो उठते ही, बाद में चाहे जो इन बहादुर कुत्तों पर बीते। बहुधा सुबह शाम भगवान के कुछ भक्त—

जिनमें गाँव के दो चार बूढ़े और बूढ़ी ही है—अपने इष्टदेव को फूल चढ़ाने की गरज से, और कुछ शरारती ग्रामीण बच्चे भी इसी रास्ते से बगीचे में घुस आते हैं और इन फूलों को अत्यन्त क्षिप्रता से तोड़कर अपने कपड़ों मे छिपाते जाते है, जैसे कोई दरिद्र औरों की आँख बचाकर सड़क पर बिखरे हुए पैसे बीने।

हर बार तो नहीं पर कभी कभी ऐसे मौके पर भीतर से एक अत्यन्त कर्कश, किन्तु पतली आवाज सुनायी पड़ती जो प्रत्येक इस प्रकार के आगन्तुकों के लिए—चाहे वह बालक हों या वृद्ध, पुरुष हो या नारी—समान ही रहती है।—'अरे कौन है सूअर का बच्चा...रह जा...रह जा... अभी आती हूँ।'

इतना सुनने पर किसी की हिम्मत नही जो वहाँ खड़ा रह सके। सभी दुम दबाकर भागने का प्रयत्न करते है।

इसी सड़क पर कुछ आगे बढ़कर बगीचे का फाटक पड़ता है, जो सदा बन्द ही रहता है और गरीबो की तकदीर की तरह कभी कभी ही खुलता है। जब कोई आकर ऊँचे स्वर में पुकारता—'हेलेन'। तब तक गौर वर्ण की सोलह-सत्रह वर्ष की एग्लो इंडियन लड़की बुलबुल की तरह फुदकती आती और सबको बस ८ कही शब्द 'डार्लिङ्ग' से सम्बोधित करती। फिर विचित्र अदा से कमर हिलाती और आँखो की कसरत करते हुए निकट आकर सबसे पहले एकही वाक्य बोलती—'...बहुत दिनो पर आये डार्लिङ्ग।' उसकी इस हरकत से लगता जैसे हर आगन्तुक का ऐसा स्वागत करने के लिए वह अभ्यस्त हो चुकी है।

यहाँ आने वाले शहर के सफेद पोश ही होते, जिनकी संख्या मुझे

सीमित ही जान पड़ती है। कोई बीस या पचीस आदमी है जिसमें से कोई कोई रोज ही दिखाई पड जाता है। किसी किसी दिन आठ दस का साथ ही जमावड़ा हो जाता है। फिर तो हल्की-हल्की छन कर खूब जमती। या तो ग्रामोफोन पर या बैटरी के रेडियो में अंग्रेजी नृत्य का बैंड बजता और सब खूब मस्ती के साथ नाचते। रात बारह बजेतक यह धम्मक चौकड़ी चलती रहती। रविवार छुट्टी के दिन तो यह धम्मक चौकड़ी और भी तेज होती, क्योकि उस दिन उपस्थिति लोगों की संख्या और दिनों की अपेक्षा अधिक ही रहती है।

जब आधीरात को ग्रामीणों की कच्ची नींद इनके उधम से टूट जाती तब वे भी दाँत पीसते और सारी घृणा व्यक्त करते हुए कहते—'मार ई पतुरिया के, जान क आफत लगा देहलेहौ। सुतलो हराम हो गयल।' और जब यह सन्ध्या को या आठ नौ बजे रात तक ही होता, तब ये ग्रामीण बड़े मस्ती से कहते,—'आज त ईसइनिया बडा गुलजार कइले बा हो।' कुछ तो बगीचे की टूटी चहारदीवारी से उचक उचक कर भीतर होता उनका नाच देखते और मस्त होते।

इस ग्राम मढ़ूपुर के निवासियों ने कभी–कभी सन्ध्या के आये आदमी को सबेरे बगीचे से निकलते देखा है। इतने पर भी उन्हें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं होता। केवल इन ईसाई लड़कियों के प्रति उनकी गन्दी धारणाएँ और भी गन्दी हो जातीं, और फाटक से निकले ऐसे हर सफेद-पोश को वे अवारा, लफंगा और लम्पट समझते थे, जिसकी छाया से भी अपने गाँव को दूर रखना चाहते थे। उनको अपने गाँव की पवित्रता से जितना प्रेम था उतनी ही उन लड़कियों और उनके दोस्तों से घृणा।

जुम्मन मियाँ ने रमई की चौपाल में एक दिन यह मसला उठा ही दिया था। वह अपनी लम्बी और बर्फ की तरह सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोला—'इन ईसाइयों ने तो गाँव में जैसे सराय खोल दिया है। आते जाओ और टिकते जाओ। बूढ़े बाप को रात में सुझाई तो देता नहीं। वह बेचारा चारपायी पर पडा खाँसता रहता है, और ये शराब पीकर चार आवारों के साथ गुलछर्रे उड़ाती हैं। गाँव मे ऐसा होना ठीक नहीं है। हम पंचों को उनसे कह देना चाहिए कि यदि ठीक से रहना हो तो रहो, वरना मद्धूपुर छोड़कर चली जाओ। रोज ही यह गुलगप्पाड़ा होता रहेगा तो हमारे बच्चों और बहुओं पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?'

बात तो ठीक थी, सब ने गम्भीर होकर इस पर विचार करना ठीक समझा, पर माधो पण्डित, जो इस गाँव में सबसे अधिक कानूनदाँ समझे जाते हैं, पर स्कूली शिक्षा जिन्हें इतनी ही मिली है, जिससे ये किसी प्रकार अपना हस्ताक्षर बना लेते हैं, अपना कानूनी दिमाग लगाते हुए बोले,—'बात तो ठीक है, पर उससे आप ऐसा कह सकते हैं? मान लीजिए उसने कहा कि मैं बदमाश हूँ पर अपने घर में हूँ। आप अपने लड़कों को सँभालिए। तब आप क्या करेंगे?'

'करेंगे क्या? निकालकर जूता दस जूता उसकी खोपडी पर मारूँगा।' जुम्मन मियाँ ने आवेश में कहा सभी चुप थे।

'लेकिन जूता मारने से तो कुछ नहीं होगा। आप फौजदारी करेंगे। उसके भी चार दोस्त हैं, वह भी खुरापात कर सकती है।····· देखना यह चाहिए कि वे कानून के दायरे में आती हैं या नहीं?' माधो पण्डित बोले।

इस प्रकार कुछ समय तक बहस चलती रही। जुम्मन मियाँ और माधो पण्डित के अतिरिक्त भी कुछ लोगों ने इसमें भाग लिया, पर कुछ निष्कर्ष न निकला। कानून एक ओर था और तथ्य दूसरी ओर, पर इससे यह तो साफ जाहिर हो रहा था कि इन ईसाई की लड़कियों और उनके कुकृत्यों के प्रति गाँव में धीरे धीरे असन्तोष बढ़ता जा रहा है।

इसी बीच एक विभिन्न घटना घटी।

भोंदू अहीर का छोटा लड़का रामसमुझ बड़ा मस्त युवक है—हट्टा-कट्टा कसरती जवान। उसका काम ही क्या? भोजन करना, सुबह शाम भैंस का दूध पीकर कसरत करना और गाँव के चार मनचले लौड़ो को लेकर घूमना, गाना बजाना और मौज करना। गर्मी की चाँदनी रातों में घाट के किनारे अपने यारों के साथ चग बजाकर जब वह अपनी रागिनी छेड़ता तब एक बार उस सुनसान स्थल की निर्जीव स्तब्धता भी मुखरित हो जाती। गंगा मैया की प्रकम्पित छाती से जब उसकी तानें टकराती तब ऐसा लगता मानों वह लहरे भी गा रही हों। ऐसे मौके पर घाट के किनारे से या किनारे लगी नावों पर से आवाज आ ही जाती—"जीयऽ मालिक रामू कमाल हौ तोहरे गले में।" तब रामसमुझ और भी दूने उत्साह से गाने लगा।

आस-पास ही नहीं गाँव से आठ दस कोस पर भी यदि कहीं दंगल की खबर लगती, बस रामसमुझ झूमता अपने साथियो को लेकर चल पड़ता। रास्ते भर विरहे की तानें छेड़ता और पीछे से उसके साथी स्वर में स्वर मिलाते। वह अलमस्तों की टोली जिधर-जिधर से भी निकलती, बाल-वृद्ध युवा, पुरुष और नारी सभी एक बार उन्हें गौर से

तो देखही लेते। बूढ़े उसे देखकर अपनी जवानी के दिन याद करते। बच्चे तो कुछ दूर तक उस मंडली के पीछे ही चल पड़ते। जवानों का हृदय तो मस्ती से नाँच उठता। कोई कहता—'जीअऽराजा जीअ।' कोई ललकारता—'झरले रहौ रमुआ।' कोई आवाज लगाता—'बा मालिक बा।' और जब खेतों में काम करती हुई जवान स्त्रियाँ अपनी घूँघट की ओट से रामसमुझ का ऐसा मस्त यौवन देखती तब तो उनके हृदय में मीठी-मीठी टीस उठने लगती, जैसे चन्द्रमा को देखकर समुद्र की लहर उठती है।

रमजान के महीने भर उसकी चंग हर शाम को पूरा गाँव ही गुलजार कर देती थी। वह जो कस-कसकर उस पर हाथ मारता कि निकट के सुनने वालों के कान के परदे फटने लगते थे। यही हालत दशहरे पर भी होती। रावण के मरते ही वह चंग लेकर जैसे पागल हो जाता। दीवाली की रात से भईया दूज तक तो उसका पता ही न रहता। किसी फड़ पर छह नौ के चक्कर में जमा रहता। यही दो तीन दिन साल में ऐसे होते थे जब उसकी चंग पूर्ण विश्राम करती थी। वह दाँव पर दाँव लगाता जाता था चाहे हारे या जीते। यदि जीत गया तो दोस्तों में उड़ा देता था। यदि हारता था तो दौड़कर घर पहुँचता था। कोठरी में अनाज मिला तो अनाज, बाप भाई के जेब में पैसे मिले तो पैसे, और नहीं तो अन्त में भावज की काठ की सन्दूक तो थी ही। उसी में से जो पैसे, रुपये या जेवर मिल जाता उसी को लेकर फिर फड़ पर आ जमता था। 'बोल शकुनी मामा की जय' और फिर नये उत्साह से नया दाँव बदता था। बाद में क्या होगा? इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं। भावज

बिगड़ेगी, भाई मारने को उठेगें, पिता दुतकारेंगे, इसकी उसे जरा भी फिक्र न रहती।

और नागपंचमी को तो वह गाँव का हीरो ही रहता। उस दिन वह अपने डेढ़े दूने को भी अखाड़े पर ललकारने से चूकता नही था।

इसी से वह गाँव मे सबका प्रिय था। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी उसे चाहते थे। पर अपने घरवालो के लिए वह बोझ सा था, क्योंकि वह कुछ भी ऐसा नहीं करता था जिससे चार पैसे की प्राप्ति हो सके। न तो खेत का काम देखता, न भैंस चराता और न मेहनत मजदूरी ही करता। हजार बार उसका पिता भोंदू समझा कर हार गया—'बेटा अब तुम बड़े हुए। दिनभर आवारों की तरह घूमना अब तुझे अच्छा नहीं लगता। इधर तुम्हारी शादी के लिए लगातार 'महतों' आते रहते है। आखिर एक दिन बहू भी आ जायगी फिर भी तुम्हारी आवारागर्दी ऐसी चलती ही रहेगी? अरे अब तो रोटी दाल के लिए कुछ करना चाहिए।' इस प्रकार की बातें रामसमुझ बहुत गौर से सुनता और मुस्कराते हुए पिता के सामने से हट जाता। भोंदू ने लाख कोशिश की पर पत्थर पर दूब न जमी। फिर भी वह अपने पुत्र को बहुत मानता था। समझाने के अतिरिक्त न तो वह कभी उसे फटकारता और न किसी प्रकार का दण्ड ही देता।

बहुधा भावज भी उस पर ताना कसती थी, पर वह 'बेहाया' सब कुछ सुनता था। वह जरा भी अपने मार्ग से विचलित न हुआ। दिनभर मस्ती से घूमता, गाता, बजाता और मौज लेता था। दोपहर को भोजन के समय एकबार आजाता था और फिर का गया गया रात

नौ दस बजे तक ही लौटता था। चाहे गर्मी, जाड़ा, बरसात कोई भी मौसम हो उसका यहीं कार्यक्रम रहता था। किन्तु रात में वह घर अवश्य आता था।

परसो उसका यह नियम टूट गया। भोंदू का नियम था कि जब रामू आजाता, तभी वह खाने के लिए उठता था। दोनों साथही भोजन करते थे। जब तक न आता दरवाजे की बिछी चारपायी पर वह बैठा उसकी राह देखता था। आज भी वह उसकी राह देखता बैठा था, पर वह नहीं आया। नौ बजा, दस बजा, ग्यारह बजा। चारो तरफ एक दम सन्नाटा छा गया। अँधेरा साँय साँय करने लगा, पर रामू अभी तक घर नहीं लौटा। धीरे धीरे बारह का समय हो गया, पर उसका कही पता नहीं। भोंदू अफसोस में बैठा सामने खेतो मे बिखरा काला अन्धकार देख रहा था—'क्या हुआ जो वह अभी तक नही आया। नौ बजे तक तो उसके चंग की आवाज गंगा के किनारे से आ रही थी, फिर उसके बाद तो पता ही नहीं चला...। ऐसा तो नही कि किसी दूसरे गाँव के किसी जवान से ठन गयी हो और मेरा रामू उसमें फँस गया हो।' ऐसी ही कुछ अमांगलिक कल्पनाएँ वह करता रहा। धीरे धीरे समय बीतता गया। जब एक घण्टा और बीता, तब रामू के बड़े भाई पचम या पांचू से रहा नहीं गया। वह दरवाजे पर आया और अपने बाप से अत्यन्त रुष्ट हो बोला—'का बेकार बैइठल हौउऽ। चल खा लऽ। घरवा में कब तक जागत रही।'

पर बूढ़ा भोंदू कुछ न बोला, न स्थान से उठा ही।

अब पाचू कुछ झुँझलाया। उसने जो कुछ कहा, वह इस प्रकार था—'अब पछताने से क्या होता है। पहले हजार बार कहता रहा पर

नहीं माने अब जब रामू हाथ से बेहाथ हो गया, तब जितना चाहो सर पटको पर कुछ हाथ आनेवाला नहीं है।'

फिर भी बूढ़ा नहीं उठा। वह उस समय पके फोड़े के समान था जो अपने स्थान से हट नहीं सकता था पर जरा सी ठेस लगने पर फूट सकता है। अपने पुत्र का यह वाक्य उसके मर्म पर जैसे घाव कर गया। उसे लगा जैसे रामू को बिगाड़ने का दोषी मैं ही हूँ, रामू का स्वयं उसमें कोई दोष नहीं। फिर भी वह चुप था।

'कहत हईं चल खा लऽ। कब तलक ओहकर आसरा देखबऽ।' पांचू ने दुबारा कहा।

तब भोंदू बहुत धीरे से बोला—'दुलहिनिया से कह, खाले। हमके आज भूख नाहीं बा।'

'न खइबऽ मत खा। हमार कहे क फरज रहल कह देहली।' इतना कहकर वह झटक कर भीतर चला गया।

कुछ देर बाद भोंदू के घर के सभी लोग खा पीकर सो गये। एक दम सन्नाटा हो गया। उसे यह सन्नाटा और भी अखरने लगा। उसने सोचा यदि आज रामू की माँ होती तो वह अपने को इस समय दरवाजे पर अकेले न पाता। दूर से सियारों के बोलने और कुत्तो के भूकने की आवाजे साफ सुनायी पड़ रही थीं।

जब कुछ समय और बीता और रामू नहीं आया तब बूढ़े से न रहा गया। उसने सोचा चतुरी चौधुरी के यहाँ चलूँ उसका लड़का सरजू रामू का दोस्त है। जरूर वह उसके बारे में जानता होगा।

यह सोंचकर वह चारपाई से उठा। धीरे धीरे भीतर गया। लाल-

टेन जलायी तथा अपनी बड़ी लाठी सम्भाली और चल पड़ा चतुरी चौधरी के घर की ओर।

मकई के जवान खेत से खेलती सनसनाहट पैदा करती हवा बह रही थी, यों तो कुंवार के दस दिन बीत गये थे फिर भी मेढकों की टर टर निरन्तर सुनायी पड़ रही थी जैसे अन्धकार रूपी राक्षस दाँत पीस रहा हो। वह टेढ़ी मेढ़ी साँप जैसी पगडण्डी पर बढ़ता ही गया।

वह लालटेन के मन्द प्रकाश में रास्ता टटोलता और लकड़ी के सहारे किसी प्रकार आगे बढ़ता चौधरी के घर पहुँचा। चौधरी दरवाजे पर ही चारपायी पर पड़ा सो रहा था। उसने धीरे से उसकी पीठ हिलाकर बड़े आहिस्ते से उसे जगाया। 'अरे भोदू भइया, कइसे चललऽ।' जागते ही चतुरी चौधरी बोल उठे। आधी रात को उसको अपने दरवाजे पर देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'का बताईं अभइन तलक रामू घरे नाहीं आयल। सोचलीं सरजू से पूंछीं सायद ओहके मालूम होय।' भोंदू बोला।'

'अभी तक नहीं आया।' चौधरी ने आश्चर्य किया। 'अच्छा बैठो मै अभी उसे जगाता हूँ। भोंदू चारपाई के पैताने बैठने को हुआ। उसे वहाँ बैठते ही चौधरी ने टोका—'अरे अराम से बैठऽ हो। हम कौनों चमार थोड़े हईं जौन तू छुआ जइबऽ।'

'अरे नाहीं भाइया।' भोंदू झेंप गया। वह चारपाई पर खसककर आराम से बैठा।

सरजू दालान में गहरी नींद में पड़ा था। जवानी की नींद थी।

दो चार बार झकझोरने पर कहीं वह अँगड़ाई लेते हुए उठा। उठते ही चतुरी ने पूछा—'कहो रामू कऽ कुछ पता है।'

वह सकपकाया फिर बोला—'काहें का बात है?'

'अभइन तलक रामू घर नाहीं आयल। ओह के खोजै भोंदू आयल बाटै।'' इतना कहते हुए चतुरी दालान के बाहर अपनी चारपाई की ओर आया। पीछे पीछे सरजू भी था। पास आकर सरजू ने बताया कि जब हम लोग घाट से चले तब ईसाई के बगीचे में से एक लड़की ने उसे बुलाया और वह चला गया। हम लोग फाटक पर बहुत देर तक उसके आसरे खड़े रहे, जब वह नहीं आया तब चले आये।' उसने यह इतने साधारण ढंग से कहा जैसे यह कोई विचित्र बात न हो, पर यह भोंदू के लिए असाधारण बात थी। वह अपने लड़के के सम्बन्ध में कभी ऐसा सोच भी नहीं सकता था। सरजू की बात सुनते ही उसने चौधरी को बड़े गोर से देखा। चौधरी की मुखाकृति ने भी लालटेन के धूमिल प्रकाश में जैसे कुछ कहा। फिर भोंदू सोचने लगा।

'अच्छा बेटा, अब जा तू सूतऽ।' चौधरी सरजू से बोला।

उसके चले जाने पर भोंदू ने अपनी लकड़ी सँभाली और चलने को हुआ। चतुरी चौधरी से बोला,—'अच्छा भइया, तोहके बड़ा तकलीफ देहली...अब चलत हई। काकरी सबेरे तलक बहल विलायल कहीं न कहीं से अइबै करी। लेकिन अभइन तलक कबही एइसन नाहीं भैल रहल। कहूँ रहै, राती के जरूर घरे चल आवत रहल।'

'हाँ हाँ, घबराए क कउनो बात नहीं है। "...पर अब ओहकर बिआह करदऽ।'' बड़े गम्भीर स्वर में चौधरी ने कहा।

'हाँ भइया, हमहूँ यही सोचत हई।' फिर वह नमस्कार कर चला गया।

□ □ □

दूसरे दिन सन्ध्या को जुम्मन मियाँ की चौपल में पंचायत बैठी। सरपंच पं० लोटूराम उपाध्याय, सभापति ठाकुर बंगा सिंह, चतुरी चौधरी, मंझन दफाली, सूक्खू बरई, गुरुदीन पटवारी, गोया इस गाँव के जितने भी प्रभावशाली लोग थे, सभी उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त गाँव के और भी लोगों से चौपाल बिल्कुल भरी थी, किन्तु अधिकांश इसमें ५० वर्ष से अधिक उम्र के ही लोग थे। कच्ची उमर के लोगो को वहाँ जाने की बिल्कुल मनाही थी, फिर भी कुछ लड़के और जवान चौपाल से दूर खड़े होकर तमाशा देख रहे थे। वातावरण बड़ा ही गम्भीर था, नहीं तो 'हजार जूता खायेंगे पर तमाशा घुसकर देखेंगे' के सिद्धान्त के ये खुरापाती लड़के चौपाल से इतनी दूर इस प्रकार से शान्त न बैठे रहते।

मसला भी विचित्र ही पेश था कि ईसाई की ये दोनों लड़कियाँ हमारे बच्चों को बरबाद कर देंगी; उन्हें गाँव के बाहर कैसे निकाला जाय।

आप विषय की गम्भीरता से ही उपस्थिति का अन्दाजा लगा सकते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता गया। भीड़ बढ़ती गयी। इधर चतुरी चौधरी पंचायत में ललकार रहे थे—भइया, अब हम सबको अच्छी तरह विचार

कर लेना चाहिए। गाँव की प्रतिष्ठा के साथ ही साथ अपने बच्चों के चरित्र का भी सवाल है। यदि ऐसा ही उनका पेशा गाँव में चलता रहा, तब तो हमारी आबरू जायगी ही हमारे बच्चे भी हाथ से बेहाथ हो जायेंगे। इस मर्ज की कोई न कोई दवा जल्दी ही होनी चाहिए।'

जुम्मन मियाँ बोले—'अब हमारी आबरू जाने में आखिर कमीं किस बात की रह गयी। मद्धूपुर चारो ओर सरनाम हो गया है। शहर से तो रोजही लोग उनके यहाँ आते रहते हैं। अब आसपास गाँव के लौडे भी उनके बगीचे का चक्कर लगाने लगे हैं। अब बिगडने में बाकी ही क्या रहा।...अब तक जो नहीं होता था, वह भी कल हो गया।.. ऐसे ही वह हमारे लड़कों को बहका बहका कर गुमराह करे और हम चुप बैठे रहें, यह तो अब हमसे न होगा।'

'हां हां, अब हमसे यह नहीं सहा जायगा।' कई स्वर एक साथ सुनाई पड़े। फिर सरपंच की ओर संकेत कर सुक्खू बरई ने कहा—'कुछ आपो आपन राय बतायीं पण्डितजी'। इतना कहने के बाद उन्होने गुड़गुड़ी से धुआँ खींचा। यहां ब्राह्मण और ठाकुरों के लिए अलग हुक्का था और बाकी लोग गुड़गुड़ी, चिलम, बीड़ी जैसा जिसे सुलभ था, पी रहे थे। वह भी पंचायत क्या जहां धुआ धक्कड़ न हो।

सरपंच पं० लोट्टूराम उपाध्याय मुँह में खैनी भरे हुए थे। इसलिए बोलने के पहले वह अपने स्थान से उठे। बाहर आकर खैनी थूका और फिर अपने स्थान पर विराज कर बोलना आरम्भ किया—'हमारी भी वही राय है जो पंचों की है। अब तक तो मैं चुप था, सोचता था, जो जैसा करेगा, वैसा ही फल भोगेगा। यदि यह दोनों लड़किया बदमाशी

करती हैं तो खुद फल पायेगीं। इससे हमें क्या मतलब। पर जब से मैंने भोंदू के बेटे रामू के सम्बन्ध में सुना है, तब से तो कान खड़े हो गये। इसका इलाज यदि जल्दी ही नहीं किया गया तो मर्ज ला इलाज हो जायगा। (वह आवेश में आकर अपनी घरेलू भाषा में बोलने लगा) ...कहऽ, अब एसे बढ़के अउर का होई कि राह चलत ऊ हमरे लड़कन के बोलावै लगल। आज लड़कन के बोलावत हौ, कल बिटियन के बोलाई...।'

'अगर हमने चुप रहल गयल तऽ ऊ बोलबै करी।' मंझन दफाली बोले।

'इसी से मैं कह रहा हूँ कि आज ही कुछ न कुछ हो जाना चाहिए। फिर सरपंच ने सभापति बंगासिंह की ओर रुख करके कहा—'ठाकुर साहब आप भी कुछ कहिये।'

नाम लेते ही बंगासिंह अपनी बरछी जैसी नुकीली मूँछ पर ताव देते हुए खड़े हुए। नाटा, ठिगना सा कद है और भरा पूरा मांसल शरीर। रोएँ रोएँ से ठकुराई टपकती थी। चेहरे से सहज ही पता चल जाता था कि कोई खान्दानी ठाकुर है। अपनी अक्खड़ता भरी आवाज में बोलना शुरू किया—'पंचो, यह मसला तो आज आपके सामने पेश है पर मैंने कई बार इसपर खूब विचार किया है। और हर बार इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि लेकर डंडा इन लड़कियों को मारते मारते ठीक कर दूँ। बस एक दिन में मसला हल। खैर आज तो आप सब इसपर विचार कर ही रहे हैं यदि मैं पहले ही यह दवा कर देता तब तो आप सब कहते—अरे नाम का ही जो बंगा ठहरा।' सब जोर से हँस पड़े और वह अपनी मूँछों को सहलाता ताव से बैठ गया।

फिर इसपर विचार हुआ कि आखिर क्या किया जाय। तब किसीने उसका बँगला फूँक देने की बात कही, किसी ने पीटने की, किसो ने उन दोनों को घसीट कर गांव से बाहर निकाल देने की। जितने लोग थे उतनी बातें थीं पर माधो पण्डित ने सामाजिक बहिष्कार की सोलहो आने फिट बात कही। इसके अनुसार धोबी न उसका कपड़ा धोवे, मेहतर न उसके नाबदान की सफाई करे, मजदूर न उसके यहां मजदूरी करें। उसका सारा काम काज ठप हो जाय।

जब सबने एक स्वर से माधो पण्डित के प्रस्ताव का समर्थन कर दिया, तब मुन्शी गुरुदीन पटवारी कुछ कहने के लिए खड़े हुए। अब तक ये बिल्कुल चुप थे। उनकी उम्र पैतोस और चालिस के बीच है। बड़ा नाम है आस पास के गाँव में, इनके केवल दो गुणों से। इनमें एक है बेईमानी करने का गुण और दूसरा है दूसरों की औरतो पर बड़ी सफाई से हाथ सफा करने का गुण। इसीसे अपने पटवारीगिरी के काल में कुछ नहीं तो पचास बार लात खाये होंगे। पर इससे क्या? पत्थर पर पानी पड़ा, धुल गया। इनकी कान पर जूँ तक न रेंगी। लतखोर होने पर भी ये बात करने में बड़े पटु थे। सब को खुश करने की कोशिश करते थे और सफल भी होते थे। गाँव के सरपंच, चौधरी आदि के दरवाजे पर भी बैठ कर कभी कभी हुक्का गुड़गुड़ा लेते थे और कभी कभी उन ईसाई लड़कियों के यहाँ भी आँखें सेकने तथा दिल की जलन मिटाने के लिए पहुँच जाया करते थे। अपने इस स्वभाव के कारण उन लड़कियों के प्रति उनकी सहानुभूति गाँव से अधिक थी। अतएव बहुत सम्हल कर और बड़ी शान्ति से बोलना शुरू किया।—'पंचो, आज गाँव

के सामने एक समस्या खड़ी है। आप सबका कर्तव्य है कि आप अपने गाँव की प्रतिष्ठा की रक्षा करें। उसके लिए आप जो कुछ करें, कोई रोक नहीं सकता। पर मैं केवल यह अर्ज करने के लिए खड़ा हुआ हूँ कि कोई भी फैसला आप इतनी जल्दी न कर लें जिसका परिणाम अच्छा न निकले। यदि आप बुरा न मानें और सरपंच महोदय, इजाजत दें, तो मै माधो पण्डितजी के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करूँ...'

'हाँ, हाँ,...जरूर कहिये।' सरपंच बोले।

उसने फिर बोलना शुरू किया—'माधो पण्डितजी ने जो प्रस्ताव रखा है वह सचमुच बड़ी समझदारी का प्रस्ताव है। पर इस प्रस्ताव को अमल में लाने के पहले मैं आपसे कुछ और करने के लिए कहना चाहता हूँ।'

आप जानते हैं कि उन दोनों लड़कियों—मेरी और हेलेन के पिता विलसन साहब मौत के किनारे जरूर हैं, पर अभी मरे नहीं हैं। इसमें भी दो राय नहीं हो सकती कि विलसन साहब का इस गाँव पर बडा एहसान है। इस बगीचे में जिसकी दीवारें अब अपनी बुढ़ौती का दिन बिता रही है कभी उनकी नील की कोठी थी। पूरा गाँव उनके यहाँ से काम पाता था। सबकी रोटी रोजी उन्हीं के हाथ में थी। कहते हैं, इतना होने पर भी उन्होंने कभी किसी को सताया नहीं, किसी की बहू बेटी को कभी फूटी नजर से नहीं देखा।...पर आज कल वह हालत नहीं रही। अब वह अपनी बुढ़ौती के दिन गिन रहा है। आपके सामाजिक बहिष्कार की बात जब उसके कानों तक पहुँचेगी, तब आपही समझिये बूढ़े के दिल पर क्या गुजरेगी, वह क्या सोचेगा।...पर यह

भी ठीक है कि सामाजिक बहिष्कार के सिवा अब दूसरा रास्ता भी तो नहीं है। इसके बाद वह कुछ क्षणों तक चुप रहा फिर सिरपर हाथ फेरते हुए बडी गम्भीरता का अभिनय करते हुये वह बोला—'पर मैं तो बड़े पेशो पेश में पड़ा हूँ। क्या करूँ ?...बड़ा अच्छा होता यदि आप मे से दो चार आदमी कल चलकर बूढ़े से मिलते, उससे सारी बातें साफ साफ बता देते और कहते यदि यह शिकायत दूर न हुई तो पूरा गाँव ही आप का बहिष्कार करेगा। यदि इतने पर भी हालत नहीं सुधरती, फिर तो वह करना ही पड़ेगा जिसे माधो पण्डित ने कहा है।'

मुन्शीजी के कहने का ढंग ऐसी शराफ़त, नफासत और नजाकत से भरा था। कुछ के सहमत न होने पर भी लोगों ने उनका कहना मान लिया। सबने सोचा—'चलो कल बात ही कर ली जाय। इसमें अपने पास से क्या जाता है। यदि हो जाता है तो वाह वाह, और नहीं होता है तो नुकशान ही क्या है।'

मुंशीजी मन ही मन फूले नहीं समाये। उन्होंने एक तीर से दो शिकार किये थे। गाँववालों के शुभचिन्तक भी बने रहे और उन लड़कियों के बहिष्कार का प्रस्ताव भी टलवा दिया। जब वह ऐसा सुनेगी तब तो मेरा कुछ न कुछ एहसान तो मानेगी ही। उनके फड़कते हुए दिल ने सोचा।

सरपंच, सभापति, जुम्मन मियाँ और मुंशी गुरुदीन पटवारी को सबने एक स्वर से बूढ़े विल्सन से मिलने और बात करने के लिए चुना। पर मुंशीजी बोल उठे—'यदि आप मुझे न चुनते तो बड़ी कृपा होती।'

'काहे भइया ! तोहरै राय से सब होत है अउर तुहही न रहबऽ।' चतुरी चौधरी बोले।

'आप मेरी हालत समझ नहीं रहे हैं। मैं हूँ सरकारी मुलाजिम। खुल्मखुल्ला गाँव के झगड़े के बीच में पडना हमारे लिये ठीक नहीं है।' मुंशीजी ने अपनी कायस्थी खोपड़ी से ऐसा बहाना निकाला जिसके आगे किसी की बुद्धि ही काम न करे। पर बात यह नहीं थी। वह उन ईसाई लड़कियों को यह दिखाना चाहता था कि सारा गाँव तुम्हारे खिलाफ है और केवल मैं ही तुम्हारा हितेच्छू हूँ तब भला वह कैसे विलसन साहब से सामाजिक बहिष्कार की बातें करने जाता।

सबने उसकी बनावटी विवशता सही मानकर स्वीकार कर ली और उसके स्थान पर माधो पण्डित को चुना।

सभा विसर्जित हुई। तरह तरह की बात करते लोग चल पड़े। किन्तु भोदू थोड़ा चिन्तित था, वह कोलाहल में रहकर भी कोलाहल से एकदम अछूता दिखायी पड़ रहा था जैसे समाज में रह कर भी योगी सामाजिकता से अलग रहता है। वह तो सोच रहा था—'यह सब तो मैंने कर डाला, पर इसका परिणाम हमारे हक मे अच्छा नहीं होगा। इससे हर कोई जान गया कि रामू पतुरिया के यहाँ जाता है। अब आस-पास के गाँव में भी यह खबर फैल जायगी तब भला कौन महतो अपनी 'बिटिया' का व्याह करने उससे आवेगा।' पिता के व्यथित मन की यह आशका दुर्बल नहीं थी। वह इन्हीं में डूबता उतराता धीरे-धीरे अपने घर की ओर चला।

उधर इसी वक्त मुंशी गुरुदीन पटवारी अपनी दिलरुबा मिस हेलन

और मिस मेरी के यहाँ चल पड़े, क्योंकि औरत की जबान पर दही और प्रेमिका पर एहसान जितनी जल्दी जमाया जा सके उतना ही अच्छा है।

रात के साढ़े आठ बज चुके थे। अँधेरा गाढ़ा हो चला था। सभी घरों की खपरैल से चूल्हे की अग्नि का धूआँ छन-छनकर निकल रहा था। हवा एकदम शान्त थी जैसे मुर्दा। इसी से यह धुआँ सीधे तारों के लोक की ओर बढ़ रहा था। अब भी गंगा के किनारों पर गुँजती लहरों पर थिरकती और चंग पर नाचती रामू के गाने की हल्की-हल्की आवाज गाँव में साफ सुनायी पड़ रही थी—

'गोरिया चली पनघट पर, घूँघट निकाल के
जोबन उछाल के जी, वो जी।'

□ □ □

दूसरे दिन जब इन चार व्यक्तियों का शिष्टमण्डल विलसन साहब के बगीचे के फाटक पर पहुँचा तब सन्ध्या के करीब पांच बजे थे। मढ़ूपुर प्राइमरी स्कूल के लड़कों को अभी अभी छुट्टी हुई थी।

बगीचे का फाटक बन्द था। लोगों ने फाटक खोलने के लिए आवाज लगाई और कुछ देर तक लगाते रहे पर भीतर से कोई आवाज न आयी। उन्हें तो रात में मुन्शी जी से ही सारी बातें मालूम हो गयी थीं। वे चाहती थीं, किसी न किसी प्रकार ये फाटक पर से ही अपना सा मुँह लेकर लौट जायँ। अपने डैडी से वह कहना ठीक नही समझती थी। इसीसे वह

हर पुकार सुनी अनसुनी कर देती थी पर ये लोग भी मानने वाले कब थे। बराबर आवाज लगाते थे। धीरे-धीरे और भी ग्रामीण जुटने लगे। मद्धूपुर प्राइमरी स्कूल के लडके भी घर जाते हुए तमाशा देखने खड़े हो गये। अच्छी खासी भीड़ लग गयी। इधर पुकार भी बन्द नहीं हुई। पुकारा! फिर पुकारा!! बारबार पुकारा!!! पर कोई उत्तर नहीं मिला।

अन्त में भीड उत्तेजित होने लगी। भीतर विलसन अपने कमरे में पड़ा-पड़ा बराबर कहता जाता था, 'क्या बात है मेरी? ये लोग कौन हैं? क्यों नहीं फाटक खोल देती...हेलेन...' उसकी बुढ़ौती की भर्रायी और शिथिल ये अवाजें बार बार आतीं और मेरी तथा हेलेन के कानों को छूकर पता नहीं कहाँ समाप्त हो जाती थीं। इनमें उनके हृदय को छूने की शक्ति बिल्कुल नहीं थी। इसीसे इन लड़कियों ने इस पर जरा भी ख्याल नहीं किया। पर बूढ़ा करता क्या? वह उठ भी नहीं सकता था। लाचार था।

उधर बिस्तर पड़े बूढ़े की और बाहर से भीड़ की आवाजें बराबर आती रहीं। जब ये आवाजें कम होती दिखाई न पड़ीं तब छोटी लड़की मेरी उठी और कमरे के बाहर आने को हुई। तुरन्त ही बड़ी बहन हेलेन ने उसे रोका—'कहाँ जाती है, नानसेन्स।' वह चुपचाप रुक गयी।

पर बाहर बराबर कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था। भीड़ भी जमती ही जा रही थी। कोई कहता—'मार जूतों को साली को ठीक कर दो।' इसी बीच किसी लौंडे ने पीछे से बगीचे में ढेला फेंका। फिर क्या था! देखते देखते धड़ाधड़ ढेले गिरने लगे। ठाकुर बंगासिंह को इसमें बड़ा मजा आ रहा था। उन्होंने बीच में एक दो बार ललकारा भी—'शाबाश

...दे...दनादन।' और और भी तेजी से ढेले पड़ने लगे। आखिर ठाकुर का खून जो ठहरा। पर इस प्रकार की उद्दण्डता सरपंच उपाध्याय जी को पसन्द न थी। माधो पण्डित भी इसके खिलाफ थे।

तुरन्त उपाध्याय जी ने ठाकुर साहब के कन्धे पर हाथ रखा और बोले—'यह क्या करते हैं, ठाकुर साहब।' बस इतने से ही उनका जोश हल्का हुआ, होश आया। फिर माधो पण्डित ने भीड को सम्बोधित करके कहा—'यह क्या हो रहा है। आखिरकार इस हुल्लड़बाजी का कोई नतीजा निकलेगा?...हम लोग यहाँ बात करने आये हैं, झगड़ा करने नहीं।' इतना सुनकर ढेले गिरने बहुत कम हो गये, पर एकदम बन्द न हुए। एक्के-दुक्के लोग पीछे से फेंक ही देते थे। तब उपाध्यायजी तड़पे—'क्या मजाक बना रखा है, आप लोगों ने। यदि आप झगड़ा ही करने पर उतारू हैं, तब आपही रहिए। हम चारो आदमी यहाँ से जाते हैं। जैसे चाहे वैसे निपट लीजिए।' अब किसी की हिम्मत नहीं थी जो ढेला फेकता। सब एकदम शान्त हो गये।

तब ठाकुर बंगासिंह बोले—'का इहाँ खड़ा होके माथा पीटत हौवऽ। चल अगवा सड़किया के किनरवाँ; जहाँ देवरिया गिरल हौ, ओहरै से घुस चलल जाय।....झूटमूठ यहाँ हमने चिल्लायल जाई और ऊ दरवाजा न खोली। एहसे फायदा...।' और फिर झटक कर वह आगे बढ़ा, उपाध्याय जी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसकी आवाज में ऐसी अक्खड़ता तथा चाल ढाल में ऐसी उजड्डता थी कि सबके सब हँस पड़े।

इसके बाद माधो पण्डित ने एकबार फिर जोर की आवाज लगायी, '...अरे...वो फाटक खोलती हो या हमलोग चहारदीवारी लाघ कर

भीतर चले आवे।' इसका भी कुछ नतीजा निकलता दिखाई नहीं दिया। अब उनके सामने सचमुच एकही रास्ता था। वह था बंगासिंह की बात मानना। लोगों ने ऐसा ही करना चाहा। लोग फाटक छोड़कर आगे बढ़ने ही वाले थे कि तब तक हेलेन बँगले से बाहर निकली और बगीचे में आती दिखाई पड़ी। सबके सब रुक गये।

वह अत्यन्त निर्भीकता से फाटक की ओर बढ़ी। चेहरे पर घबराहट का किसी प्रकार का भी चिह्न नहीं था। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानों वह एक धक्के में पहाड़ गिराने की शक्ति लेकर आगे बढ़ रही हो। पास आकर वह फाटक खोले बिना ही जँगले के भीतर से बोली—'क्या बात है, जो आकाश सिर पर उठा रखा है।' उसका साहस और कड़कती आवाज सुनकर तो लोग अवाक रह गये। उन्होंने सोचा नहीं था कि एक औरत इतने आदमियों के सामने इस तरह से बोल सकती है।

उपाध्यायजी ने थोड़ी नर्मी गले में भरकर कहा—'अच्छा पहले फाटक तो खोलो।'

'क्यों, क्या बात है? बिना कारण बताये मैं फाटक नहीं खोलूँगी।' तबतक मेरी भी उसके पास आ गयी। वह उसे सम्बोधित करके बोली—'मेरी तुम इधर क्यों आयी? जल्दी से बन्दूक लेकर उधर जाओ जिधर चहार दीवारी गिरी है। जो भी उधर से भीतर घुसने की कोशिश करे उसे शूट कर दो फिर देखा जायगा।' जैसे झाँसी की रानी अंग्रेजों से अपने किले की रक्षा के लिए नाकेबन्दी कर रही हो।

'अरे इन सबकी क्या जरूरत? हम तो विलसन साहब से केवल बात करना चाहते हैं।' उपाध्यायजी ने कहा।

'उनसे बात करने आये हो या उन्हें मारकर हमें लूटने। यदि बात ही करनी थी, तो इतनी बड़ी जमात लेकर इधर आने की क्या जरूरत, ... पहले आप भीड को जल्दी से जल्दी हटाइए नहीं तो मैं चौकी पर अभी खबर करतो हूँ।' उसने वैसे ही रोब से कहा।

यह सुनते ही माधो पण्डित का माथा ठनका। 'जरूर ३६५ चल जायगा।' उसने सोचा। फिर भीड़ को सम्बोधित करके वह बोला—'आप लोग यहाँ बेकार क्यों खड़े हैं। चलिए हटिए।' कुछ समझदार तो हटने लगे, पर कुछ अब भी खड़े थे। पण्डितजी दुबारा बोले—'मैं कहता हूँ हट जाइए। हटते नहीं क्यों, आप लोग बेकार यहाँ खड़े हैं।' फिर वह आगे बढ़े और स्कूल के दो-चार लड़कों को जम-जम कर झापड़ लगाया। सारे लड़के तब भर से भाग गये। कुछ लोग अब भी बचे थे। 'अरे भाई अब तो हम पर रहम करके आप लोग चले जाते।' उन्हें उपाध्यायजी की नम्र आवाज ने हटने के लिए विवश किया।

करीब करीब सारी भीड़ बड़बडाती हुई हट गयी। कोई साफ आवाज सुनायी न पडी। केवल इतना सुनायी पड़ा—'अरे हेलिन हौ हेलिन, जबतक लात न खायी, तब तलक ठीक न होई।' इतना सुनना था कि बंगासिह तड़पे—'का बकवाद होत हौ। चला हटऽ ईहाँ से।' भला ठाकुर को बुद्धि तो आयी। दस पाँच को छोड़कर बाकी सब लोग चुपचाप चले गये।

'अच्छा, अब तो फाटक खोलिए।' उपाध्यायजी ने कहा।

'तो क्या इतने लोग डैडी से मिलना चाहते.................? आप सब चले जाइए केवल दो आदमी यहाँ रहिए।'

'जी नहीं हम लोग चार है ।'

'तब आप चार आदमी ही खड़े रहिए । इतने लोगों की यहाँ क्या जरूरत है ।' इतना सुनना था कि बाकी लोग भी चलते बने ।

'अब यहाँ उन चारों के अतिरिक्त और कोई नहीं था और न कुछ दूरी तक कोई दिखायी ही पड़ता था, तब उसने फाटक खोला और इन लोगों के भीतर आते ही पुनः बन्द कर दिया ।

भीतर गुलाब की क्यारी के सामने पडी मेज पर जिसका पिछला भाग कुछ टूटा था, उन लोगों को बैठा कर वह बोली—'आप लोग यहीं बैठिए, मैं डैडी से पूछ कर अभी आती हूँ ।'

फिर वह अपने डैडी के कमरे की ओर गयी और तुरन्त वहाँ से लौटी भी । पास आकर उनसे बोली—'इस समय डैडी को नींद आ गयी है । इधर कई दिनों से दमे ने उनके जान के दम लगा दी थी । पिछली चार रातों में एक क्षण के लिए भी उनकी पलक नहीं झपी ।'

अब वे क्या करें ! गोकि उन चारो में से प्रत्येक समझ रहा था कि वह बहाना कर रही है । वे सोच मे पड़ गये, पर माधो पण्डित ने दिमाग से काम लिया । वह बोला –'तो क्या हरज है, हम लोग उन्हीं के पास ही बैठे रहेंगे । जब नींद खुलेगी तभी बातें की जायेंगी । क्यों भाई···?' इतना कहकर उसने अपने मित्रों की ओर रुख किया ।

'हाँ ठीक तो है । जब तक वे सोये रहेंगे, हम वहीं बैठेंगे ।' जुम्मन मियाँ बोले ।

'बड़े विचित्र आदमी आप लोग भी मालूम होते हैं । उधर डैडी की जिन्दगी और मौत का सवाल है, इधर आप लोग उनसे बात करने

के लिए पीछे पड़े हुए हैं। आप क्या समझते हैं कि आपके बैठे रहते वे भला सो सकेंगे।

'तो क्या हम वहाँ बैठकर डंका पीटेंगे।' बंगासिंह जरा टेढ़े हुए।

'आप वहाँ बैठकर चाहे डंका पीटिए या अपना सिर, पर जब तक डैडी जागते नहीं, तब तक मैं हरगिज वहाँ आपको जाने नहीं दूँगी।' हेलेन बंगासिंह से भी तेज आवाज में बोली।

आदमी ऐटम बम का लोहा भले ही न माने पर औरत के जबान का लोहा तो वह मानता ही है। और फिर वह हेलेन की जबान थी। सुनकर सब सन्न हो गये। उनका सारा रोष, सारी अकड़बाजी, सारी बुद्धिमत्ता उसकी गर्मी के आगे कपूर की तरह उड़ गयी। माधो पण्डित बड़ी नर्मी से बोले—'फिर कब तक आपके डैडी जागेंगे? तब तक हम यहीं बैठे रहें।'

'आप भी विचित्र बात पूछते हैं। अरे अभी तो वे सोने की दवा पीकर सोये हैं। हो सकता है, दो चार घण्टे के बाद ही उठ जाँय... और सोते रहें तो सबेरे तक सोते ही रह जाँय।'

यह तो अजीब झमेला पेश हो गया। सब बड़े असमंजस में पड़े। उसकी जबान तो तेज है ही साथ ही साथ उसकी बुद्धि भी उतनी ही तेज होगी इसका अनुमान उन लोगों को नहीं था। सभी सोच में पड़े थे। इस लड़की ने तो अच्छा मूर्ख बनाया। सब जानते थे कि हेलेन झूठ बोलती है, पर कौन उसे झूठा कहकर अपना सिर नोचावे। फिर भी बंगासिंह कुड़बुड़ाए—'कुछ भी हो पर हमें तो उनसे बहुत जरूरी बातें करनी हैं।'

'क्या आपकी बात डैडी के जिन्दगी से अधिक जरूरी है।' हेलेन की आवाज में जरा भी नम्रता नहीं थी।

इसी बीच विलसन के खाँसने की अत्यन्त हल्की और अस्पष्ट आवाज सुनायी पड़ी। तुरन्त माधो पण्डित ने कहा—'शायद आपके डैडी खाँस रहे हैं। देखिए, जाग तो नहीं गये।'

पहले तो वह कुड़बुड़ायी फिर किसी प्रकार नाक भौंह सिकोड़कर डैडी के कमरे में जाने को तैयार हुई। एक दस कदम के करीब गयी होगी कि फिर वापस लौटी और बड़ी रुक्षता से बोली—'खाँसने से क्या होता है जनाब। मैं इस समय उन्हें जरा भी डिस्टर्ब होने देना नहीं चाहती। यदि आपको बातें करनी ही हैं तो सुबह आकर कर लीजिएगा। क्या कोई खास बात है जो इसी समय हो सकती है।'

'जी हाँ, बात तो खास ही है।' उपाध्याय जी ने बड़ी दबी जबान से कहा।

'आखिर क्या है? मैं भी भला उसके बारे में कुछ सुन सकती हूँ।' सब कुछ जानते हुए भी हेलेन ने पूछा।

'अरे आपको तो सुनना ही है, लेकिन हम चाहते थे कि पहले आप के पिता जी से बातचीत हो जाती तो अच्छा था।'

'तो फिर कल सवेरे कष्ट कीजिए।'

इसी समय फाटक से मोटर का हार्न सुनायी पड़ा। उसने पीछे घूम कर देखा, फाटक पर रमेशचन्द्र गुप्त की कार खड़ी थी। वह तुरन्त वहाँ से चली और चलते समय बड़ी बेअदबी से झटककर बोली—'चलिए साहब, चलिए। अब कल तशरीफ लाइएगा।' लाचार होकर ये एक

दूसरे का मुँह देखते हुए फाटक की ओर बढ़े। इस समय इनके चेहरे देखने योग्य थे। लगता था चारों किसी बड़े जुआ मे अपनी पूजी गवाँकर मन मारे चले आरहे हैं। उनकी दशा उस बैरंग चिट्ठी की तरह थी जिसे लोग बिना पढ़े बिना देखे यों ही लौटा देते हैं।

मोटर रोककर गुप्ता जी सरला के साथ कार के बाहर आकर खड़े थे। गुप्ता जी के चेहरे पर हल्की मुस्कराहट थी, पर सरला उन चारों आदमियो के साथ आती उस क्रिश्चियन लड़की को बड़े गौर से देख रही थी। उसने सोचा—'मुझसे तो कहा गया था कि वहाँ केवल दो लड़कियाँ और एक उनका बूढ़ा बाप ही रहता है, फिर ये चार आदमी कैसे?... क्या यहाँ ऐसे ही आदमी आते जाते हैं?'

फाटक खोलते ही वे चारो व्यक्ति बड़े ध्यान से सरला और गुप्ता जी को देखते चले गये। उनकी आँखों का सबसे अधिक कुतूहल सरला की ओर था। इन लोगो ने उन्हें भी जिज्ञासा भरी निगाह से देखा। फिर हेलेन बोली—'नमस्कार गुप्ता जी, आप खड़े क्यों हैं अन्दर आइये।' गुप्ता जी आगे बढ़े। तब वह सरला का हाथ पकड़ कर अन्दर लिवा जाते हुए बोली—'आओ मिसेज गुप्ता।'

'मिसेज गुप्ता' सम्बोधन सुनते ही जैसे सरला का मन चौक पड़ा; मानों वह बिजली के करेन्ट से छू गयी हो। उसने तुरन्त प्रतिवाद स्वरूप कहा—'जी,...मेरा नाम है सरला देवी।'

'जी हाँ, मैं जानती हूँ।' फिर वह गुप्ता जी की ओर देखकर विचित्र ढंग से मुस्कराई और सरला से बोली—'आप के हस्बेण्ड जी ने आपके

बारे में मुझे सब कुछ बता दिया है।...और अब आपको कुछ अधिक तकलीफ करने की जरूरत नहीं है।' फिर वह खुलकर हँस पड़ी।

'हमारे हस्बेन्ड ...?...' सरला के मुँह से इतना ही निकला था कि गुप्ता जी ने उसका हाथ दबा दिया और कनखियों से ताककर संकेत किया। जिसका अर्थ था, 'चुप रहो।'

जब वे बँगले में पहुँचे, हेलेन ने आवाज लगाई,—'मेरी, अरे ओ मेरी, देख तो गुप्ता जी अपनी 'वाइफ' को लेकर आगये।'

इस बार फिर उसे बड़ा बुरा लगा, किन्तु उसने अनुभव किया, जैसे उसकी जबान पर ताला लगा दिया गया हो, पर उसका मन बराबर विरोध कर रहा था। उसकी आकृति पर आन्तरिक क्रोध की सुर्खी दौड़ आयी। गुप्ताजी ने एक नजर में ही सब भाँप लिया, पर बराबर मुस्कराते ही रहे, जिससे मामला और भी अधिक गम्भीर न होजाय।

मेरी दौड़ी हुई आयी। तुरन्त चाय का टेबुल लगाया गया। इस बॅगले के बचकाने नौकर श्यामू ने बड़ से कुर्सियाँ भी लगा दीं। लोग वहीं जमे। पर अभी चूल्हा भी सुलगा नहीं था, चाय बनना तो दूर रहा। मेरी और श्यामू घर में आग जलाने गये। फिर बाकी इन तीन लोगों में बातचीत शुरू हुई।

'मिसेस गुप्ता, आज आप से मिलकर हमें बड़ी खुशी हुई।' हेलेन बोली।

सरला बोलने ही वाली थी कि मैं मिसेस गुप्ता नहीं हूँ, किन्तु गुप्ता जी ने उसे फिर कनखियों से तरेरा। उसे जैसे धक्का लगा। किन्तु वह सँभलती हुई वैसी ही शिष्टता से बोली—'मुझे भी आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता है।'

सरला की यह हिचकिचाहट देखकर हेलेन को हँसी आगयी। उसने कहा,—'गुप्ताजी, भाभी अभी शायद लजा रही हैं। नयी-नयी यहाँ आयी हैं न।' फिर वह खिलखिला पड़ी। गुप्ता जी की हँसी ने भी उसका साथ दिया पर सरला मौन हो रही। वह कभी गुप्ताजी की ओर और कभी हेलेन की ओर देखती रही। वह कुछ कहते-कहते जैसे रुक जाती थी। गुप्ताजी ने उसके मन की गति का अनुमान लगाया और बड़ी होशियारी से बातचीत का सिलसिला दूसरी ओर मोड़ते हुए बोले —'क्यों डार्लिङ्ग, आज तुमने बहुत से लोगों को बुला लिया था।'

'अरे क्या बताऊँ गुप्ताजी, ये गाँव वाले रोज ही कुछ न कुछ आफत किया करते हैं।'

'ऐसी कौन सी बात हो गयी?'

'बात क्या? उन्हें आप ऐसे लोगों का आना फूटी नजर भी नहीं सोहाता।'

'तो यह बात गाँव वालों को हमसे कहनी चाहिए। आप लोगों को बेकार परेशान करने की क्या जरूरत।'

'नहीं साहब, उनका तो कहना है कि सबको मैं ही बुलाती हूँ।' फिर वह जोर से हँसी।

'बुलाती हो या चाहे जो भी करती हो, किन्तु उनसे मतलब।' गुप्ता जी बोले।

'हाँ, यही तो......' फिर कुछ रुककर वह सिर हिलाते हुए बड़े विश्वास के साथ बोली—'पर मैं भी उनकी अच्छी दवा करूँगी।.....वह जो गुरुदीन पटवारी है न, वह आठ बजे के करीब आ जायगा। और

अभी तो आप है ही। हम लोग अभी विचार करेंगे।...देखिएगा वह लोहे के चने मैं इन लोगों को चबवाऊँगी कि ये कमीने भी याद करेंगे।'

गुप्ताजी और हेलेन की इस बातचीत में सरला को बिल्कुल रस नहीं आ रहा था, उसे तो ऐसा लग रहा था जैसे यहाँ उसका दम घुट रहा हो। फिर भी वह शान्त पत्थर सी जड़वत थी। केवल एक टक हेलेन का चेहरा देखती रही।

गुप्ताजी को अब सरला का मौन अधिक अखरा, पर वह उससे कुछ साफ कहने की स्थिति में भी तो नहीं थे। उन्होंने सोचा; यहाँ अब बैठकर और बात करना ठीक नहीं। इधर-उधर घूमने से शायद सरला का मूड कुछ बदल जाय। अतएव वे उठते हुए हेलेन से बोले—'जरा इन्हें यहाँ का घर तो दिखा दो। यों तो अब इन्हें यहाँ रहना ही है।'

'हाँ-हाँ जरूर, चलो मिसेस गुप्ता' उसके साथ सरला भी उठकर खड़ी हुई।

'पहले आप वे ही कमरे देखिए जिसमें हमलोग रहते हैं। बाद में वे सामने वाले कमरे देखे जायँगे, जिसमें आपके रहने की व्यवस्था है।' हेलेन ने कहा।

इस तरफ तीन ही कमरे थे। दो बगीचे के सामने की ओर और एक पीछे। पीछे के ही कमरे के एक ओर किचन था और दूसरी ओर बाथ-रूम तथा लैट्रिन। बस इतने में ही वह छोटा सा क्रिस्चियन परिवार रहता था।

साठ सत्तर वर्ष पुराना यह बँगला अब झोपड़ी हो गया था। कहीं-कहीं तो खपरैल भी उजड़ गयी थी। वह पीछे के ही हिस्से से चली—

'देखिए मिसेस गुप्ता यह मेरा किचन है।' तीनों भीतर घुसे। उन्हें देखते ही चाय बनाने में लीन श्यामू तथा मेरी उठकर खड़े हो गये। सरला ने गौर से देखा स्टोफ पर चाय की डेकची रखी थी। पास ही एक शीशे के बर्तन में दूध भी है। पत्थर का चौकीनुमा एक स्थान बना है जिस पर कुछ चीनी मिट्टी के तथा कुछ अलमुनियम के बर्तन हैं अन्य वस्तु के बर्तन के नाम पर केवल दो स्टेनलेस स्टील के गिलास हैं। दीवार चूल्हे के धुँए से एकदम काली हो गयी है जैसे कई वर्षों से चुना न हुआ हो। फर्श पर दक्षिण की खिड़की की ओर प्याज के छिलके तथा कुछ अण्डे की खोले पड़ी थीं। इसी खिड़की की दूसरी ओर एक मिट्टी का चूल्हा था। पास ही कोयले का पुराना कनस्टर था, जिसका रग दीवार के रग में छिप सा जाता था। इसी के निकट दो बाल्टियाँ थीं, दोनों में थोडा-थोड़ा पानी था और पास ही तामचीनी का पानी निकालने का बर्तन।

चारो ओर अच्छी तरह देख लेने के बाद हेलेन उससे बोली—'क्या गौर से देखती हो मिसेस गुप्ता। हमलोग बड़े गरीब आदमी हैं।' फिर वह मुस्करायी और दूसरी ओर संकेत करके कहा—'उधर बाथरूम तथा लैट्रिन है।'

फिर वह बीच के कमरे में घुसी। यहाँ एक टूटी चारपाई पर बिछे बिछावन पर एक अत्यन्त दुर्बल बूढ़ा पड़ा था। रह-रहकर जिसकी गंभीर श्वाँसे सन्ध्या के उस धूमिल प्रकाश में जी उठती थीं।

चारपायी की बगल की ही आलमारी मे कुछ दवाओं की शीशियाँ पड़ी थीं जिनमें अधिकांश खाली थीं। नीचे जमीन की प्लैस्टर कहीं कहीं

उखड़ गयी थी। ऊपर खपरैल भी एक जगह ऐसी उखड़ गयी थी कि यदि पूरी रात हो गयी होती तो उसमें से बड़ी आसानी से तारे नजर आते। इस समय भी रात के पहले का हल्का काला आकाश दिखायी देता था। एक दरवाजे के अतिरिक्त रोशनी और हवा आने के लिए न तो कोई खिड़की ही थी और न कोई रोशनदान जिससे इस कमरे में अँधेरा हो चला था। दरवाजे के पास तिपायी पर रखी लालटेन भी जली नहीं थी। बूढ़े की शकल साफ दिखायी नहीं देती थी, फिर भी उसकी ओर संकेत करती हुई हेलेन बोली—'देखो मिसेस गुप्ता, यह मेरे डैडी हैं। तुम इनसे मिलकर बड़ी खुश होगी।'

एक तो बूढ़े को आँख से दिखायी नहीं देता, दूसरे वह कान से भी कम सुनता था, फिर भी उसे कुछ अन्दाजा लगा, वह बोला—'कौन है हेलेन?'

'हम···डैडी। यह गुप्ताजी की वाइफ आपसे मिलने आयी हैं।' वह चारपायी के पास जाकर बड़ी जोर से बोली।

'मिसेस गुप्ता,·· आओ बेटी आओ। बूढ़े के गद्‌गद् स्वर ने सरला का स्वागत किया। फिर वह बोला—'गुप्ताजी भी हैं क्या?'

'हाँ वह भी साथ ही हैं।' गुप्ताजी ने फिर नमस्कार किया। बड़े प्यार से अभिवादन स्वीकार करते हुए उसने कहा—'अरे हेलेन, बेटा जरा रोशनी तो कर दो।' इतना बोलते ही वह खाँसने लगा और लगातार खाँसता ही रहा। अन्त में उसकी खाँसी तब रुकी जब वह बिल्कुल लस्त हो गया। इधर लालटेन लेकर हेलेन किचिन में गयी और शीघ्र

जलाकर लौटी ; प्रकाश में सरला ने स्पष्ट देखा कि चारपायी के सिरहाने हजरत ईसा की एक बड़ी तस्वीर लगी है।

बूढ़े ने फिर थकावट भरी आवाज में हेलेन से पूछा—'क्यों बेटा अभी कुछ समय पहले हो रहा कोलाहल कैसा था ?'

'यों ही गाँव के कुछ लोग आ गये थे।'

'क्यों, क्या बात थी ?' फिर उसने दो तीन बार लगातार खाँसा।

हेलेन बोली—'कुछ नहीं डैडी, वही गुलाब के फूलों का झगड़ा था।'

बूढ़ा कुछ समय तक मौन सोचता रहा, फिर बड़ी गम्भीरता से बोला—'तो तुम बगीचा सबके लिए खोल क्यों नहीं देती बेटी। हमने पौधे लगाये हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि उनके फूलों पर मेरा ही अधिकार है। वह तो कुदरत की चीज है। कुदरत जितना हमसे प्रेम करती है उतना ही उनसे भी जो अभी-अभी फाटक पर फूल लेने आये थे··· ·····।' फिर खाँसी ने उसे न बोलने के लिए विवश किया। कुछ रुककर वह बोला—'कहिए गुप्ताजी मै ठीक कहता हूँ कि नहीं।'

'बिल्कुल ठीक कहते है डैडी।' गुप्ताजी बोले। हेलेन विचित्र ढंग से मुस्करा रही थी। उसकी यह उपहासास्पद मुस्कराहट मानों कह रही थी कि यह बूढ़ा भी कितना पागल है।

फिर भी बूढ़े ने कहा—'··· ·····हाँ बेटा, तुम कुदरत की कोई भी चीज अपने वश में कर भी नहीं सकती। क्या तुम यह कर सकती हो कि सूरज की सारी रोशनी तुम्हारे कब्जे में रहे, हवा में केवल तुम्हीं साँस ले सको। आकाश का चन्द्रमा केवल तुम्हारे कोठरी में चमके ? यदि

नहीं, तो तुम्हें इन गुलाब के फूलों से क्या मोह ?..........मेरी बात मानों, तुम सबके लिए बगीचा खोल दो। जब कभी भी तुम किसी को फूल तोड़ता देखकर यहाँ से चिल्लाती हो तो मुझे बड़ा दुख होता है।'

'अच्छा डैडी, अब यही करूँगी। सबके लिए फाटक खोल दूँगी।' लेन ने सोचा बात बढ़ाने से फायदा क्या।

फिर कुछ समय तक एकदम शान्ति थी। फिर बूढ़ा बोला—'क्यों मिसेस गुप्ता, सुखी हो न ?' बूढ़े के स्नेहासक्त स्वर ने सरला के मर्म पर प्रभाव किया। उसका मौन मुखरित होने के लिए व्याकुल हो गया—'हाँ डैडी आपके आशीर्वाद से सुखी हूँ।···अब आपकी तबीयत कैसी है ?'

'मेरी तबीयत'—उसने मुस्कराने की कोशिश की। चित्र की ओर संकेत कर बोला—'···अब इन्हीं के हाथ में है।' फिर बड़ी निराशा से करवट बदलते हुए खाँस पड़ा।

'अच्छा, डैडी अब इन्हें और कमरे दिखा दूं।' हेलेन ने झटके से कमरे के बाहर निकलते हुए कहा—जल्दी में उसके हाथ से लगकर दरवाजे के पास तिपायी पर रखी लालटेन गिर गयी, किन्तु श्रवण शक्ति से हीन बूढ़े के कानों को कुछ भी आहट न लगी। उसके नेत्रों के लिए तो जैसे प्रकाश वैसे अन्धकार।

यह उसका अपना कमरा है, बिल्कुल सजा-सजाया। जैसे कोई प्रौढ़ा सौन्दर्य के प्रसाधनों से युक्त मेकअप करनेके बाद बीस वर्ष की लगे वैसे ही यह कमरा भी अत्यन्त पुराना होकर नयी वस्तुओं से युक्त बिल्कुल नया लग रहा था। यहाँ सामान इतना था कि सबका नाम गिनाना मेरे

लिए यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मै बेकार इस कठिनाई में नहीं पड़ूँगा। यही समझिए कि दूध की तरह सफेद दीवार पर चारों ओर सुन्दरियों के अर्द्धनग्न अनेक चित्र हैं, कुछ विदेशी कम्पनियों के कलन्डर भी हैं। इसके अतिरिक्त चार बड़े-बड़े शीशे हैं। एक बड़ा ही आलीशान शृङ्गार-टेबुल है, जिस पर मेकअप करने के सभी सामान पड़े हैं। छोटे-बड़े खिलौनों से लेकर ग्रामोफोन, बैटरी का रेडियो तक बड़ी-छोटी सभी वस्तुएँ बड़ी योग्यता से सजायी गयी हैं। सरला को सबसे आश्चर्यजनक वस्तु शृङ्गार-टेबुल के पास लगी हेलेन और उसके साथियों का चित्र लगा। वह प्रत्येक चित्र बड़े गौर से देखती। सभी चित्रों में हेलेन थी, और सब में उसका कोई न कोई साथी। किसी-किसी चित्र में मेरी भी दिखाई देती थी। तीन-चार चित्रों में तो गुप्ताजी की भी वासनामय मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में दिखायी दे रही थीं जिसमें वह उनका असली रूप देख पाती थी, जिसे उसने कहीं भी नहीं देखा था।

इस अन्तिम चित्र पर तो उसकी निगाह आकर जैसे जम-सी गयी। इसमें गुप्ताजी अंग्रेजी लिबास में मस्ती से चुरुट पीते हुए कोच पर बैठे थे। गोद में हेलेन पड़ी थी। उसके अधरों को वह बड़े प्रेम से धीरे-धीरे दबा रहा था। वह इस चित्र को देखती रही। एकटक देखती रही। बड़ी देरतक देखती रही।

उसकी यह एकाग्रता पीछे खड़े हेलेन और गुप्ताजी भी देख रहे थे। हेलेन जोर से हँस पड़ी। उसकी एकाग्रता टूटी, उसने हेलेन की ओर देखा। हेलेन बोली—'अरे क्या समझती हो मिसेस गुप्ता, गुप्ताजी पर जितना तुम्हारा अधिकार है, उतना मेरा भी।' फिर उसने मुस्कराते हुए

गुप्ताजी की ओर देखा और उनका हाथ अपने हाथों से जोर से दबा दिया। पर यह इस समय न तो गुप्ताजी को ही अच्छा लगा और न सरला को ही। सरला को तो हेलेन की मुस्कराहट ऐसी नग्न दिखायी पडी कि वह उसे देख न सकी। एक झटके से अपनी निगाह उधर से हटा ली, और शीशे की हाँडी में जलने वाली मोमबत्ती की ओर ले गयी। गुप्ताजी चुपचाप यहाँ से हट गये।

सरला अब लोहे की स्प्रिंगदार पलंग की ओर आयी। गद्दे के ऊपर रेशमी चादर बिछी थी। पैताने मक्खन की तरह सफेद एक चदरा था। सिरहाने मोटे-मोटे दो तकिये पड़े थे जिनकी झालरदार खोल थी। एक पर रेशमी धागे से कढ़ा था—'फारगेट मी नाट' और दूसरी पर 'लवली ड्रीम।' इसी समय फाटक से किसी के पुकारने की आवाज आयी। हेलेन ने गुप्ताजी से कहा—'जरा चलिए तो, शायद गुरुदीन अभी ही आ गया। जरूर कोई नयी बात होगी।'

दोनों बाहर निकले। हेलेन ने चलते समय सरला से कहा—'आप इसी चारपायी पर विश्राम करें। हम लोग अभी आते हैं।'

सरला कुछ बोली नहीं पर दोनों बाहर चले गये। अब उसने कमरे को और भी गौर से देखा। पलंग के सिरहाने की ओर एक अँग्रेज सिने अभिनेत्री की बिल्कुल नग्न तस्वीर थी। यह तस्वीर ठीक उतनी ही बड़ी थी, जितनी बडी डैडी के कमरे में ईसा की तस्वीर थी। दो चित्र अविलम्ब उसकी आँखों के सामने आ गये। एक चित्र डैडी के कमरे का था, जिसमें जीर्ण-शीर्ण चारपाई की गन्दी चादर पर मौत जीवित पड़ी थी, जिसे चित्र से हजरत ईसा बड़ी ही सहानुभूति से देख रहा था। दूसरा

चित्र इस कमरे का था, जिसपर स्प्रिंगदार पलंग पर बिछे रेशमी गद्दे पर दो तकिये पड़े थे जिस पर दो प्राणी आलिंगनपाश में आबद्ध सो रहे हैं और वासना की वह पुतली चित्र से इन पर अपनी मुस्कराहट बिखेर रही थी। ये दोनों चित्र कितने भिन्न थे। एक में नर्क की गन्दगी में स्वर्ग का पवित्र आत्मा निवास करता था। दूसरे में स्वर्ग की सुषमा में नर्क के प्राणी की वासनामय गहरी श्वाँसे काँप रही थीं।

उसके बाद वह हर चित्र, हर वस्तु के पास गयी। उसे उलट-पलट कर बड़े गौर से देखा। अब उसे एक विचित्र बात मालूम हुई। हर वस्तु के किसी न किसी स्थान पर बहुत सुन्दर या छोटे-छोटे अक्षरों में अंग्रेजी में लिखा था—'प्रेजेन्टेड बाई।' और उसके नीचे उपहार देने वाले का हस्ताक्षर बना था। प्रत्येक हस्ताक्षर साफ और पढ़ा जा सकता था।

तो क्या सारी वस्तुएँ प्रेजेन्ट में मिली हैं? और हर प्रेजेन्ट के भिन्न-भिन्न देने वाले है, तो इतने लोगो से उसका सम्बन्ध है? सभी उपहार देनेवाले पुरुष ही है। क्या इस विशाल संसार में किसी भी स्त्री से उसका परिचय नहीं है? किन्तु छोटे सरकार ने तो कहा था, इनके बाप का रुपया जमा है। ये लड़कियाँ पढ़ती है, पर इनके इस कमरे में तो दो-चार गन्दे उपन्यास और सेक्स सम्बन्धी कुछ पुस्तकों को छोड़कर एक भी अच्छी पुस्तक नहीं है। ये कैसी पढ़नेवालीं? सरला सोच रही थी।

इसी समय दरवाजे से एक हल्का एवं पतला स्वर सुनायी पड़ा—'सिस्टर, चाय तैयार है।' यह मेरी थी। उसने देखा कमरे में केवल सरला है। उसने पूछा—'सिस्टर कहाँ हैं?'

'बगीचे में।'

फिर उसने बगीचे में पुकार लगायी। दोनों अविलम्ब चले आये। आते ही हेलेन ने कहा—'चलिए मिसेस गुप्ता, चाय तैयार हो गयी है।'

सरला चुपचाप कमरे के बाहर निकली। तब हेलेन ने दूसरे कमरे की ओर संकेत करके कहा—'यह मेरी छोटी बहन मिस मेरी का कमरा है।' यह कमरा भी हेलेन के कमरे जैसा था। इसमें भी वैसी ही पलंग थी, वैसे ही दो तकिये, वैसे ही दीवार पर चित्र और वैसे ही नाना प्रकार की वस्तुएँ, किन्तु उनकी संख्या उतनी नहीं थी।

चाय पीकर गुप्ताजी सरला को लेकर इस बँगले के दूसरे क्वाटर की ओर गये। इधर बाथरूम और लैट्रिन के अतिरिक्त केवल दो ही कमरे थे। एक में ताला बन्द था और दूसरा सरला के लिए सुसज्जित किया गया था। इस कमरे की साजसज्जा मिस मेरी और हेलेन के कमरे जैसी ही थी किन्तु इसमें उतना सामान नहीं था। पलंग के सिरहाने के पास ही बड़ी टेबुल पर बैटरी का रेडियो सेट था। उसके पास ही शमादान में मोमबत्ती जल रही थी। दोनों उसी कमरे मे आये। रात के आठ बजे थे। अँधेरा अच्छी तरह फैल गया था।

अबतक तो मन का मन ही में मथकर रह गया था, किन्तु इस समय गुप्ताजी को एकान्त में पा सरला उबल पड़ी, जैसे कोई शान्त ज्वालामुखी अचानक भभक पड़े। वह बोली—'आपने सदा मुझे अन्धकार में ही रखा।' उसकी आवाज आवश्यकता से अधिक तेज थी।

'क्यों, ऐसी कौन सी बात है।' गुप्ताजी ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा।

'जैसे आपको कुछ पता ही नहीं।' उसके स्वर में और गहरा उबाल आया।

गुप्ताजी समझते तो थे ही फिर भी कुछ सोचते हुए कुछ समय तक चुप थे। फिर बड़े धीरे से बोले—'आखिर तुम कहना क्या चाहती हो।'

'मै क्या कहूँगी'। चारो ओर से जो आवाजे आ रही हैं, उसे ही सुनिए। मिसेस गुप्ता···! मिसेस गुप्ता !! मिसेस गुप्ता !!! क्या मैं सचमुच मिसेस गुप्ता हूँ ?' वह चुप होने के बाद कुछ समय तक दाँत पीसती रही।

किन्तु गुप्ताजी अब भी शान्त थे। 'यदि तुम्हें कोई मिसेस गुप्ता ही कहे तो उसमें क्या बुरा है।' गुप्ताजी का मन्द मधुर स्वर जैसे सरला की जलन पर शीतल लेप लगा रहा हो।

पर धधकती आग कभी पानी के छींटे से नहीं ठण्डी होती, वह तो हर बार ऐसे छींटे पर और भी जोर से भभकती है। सरला के वाणी की ज्वाला इस बार और भी तेजी से भभकी—'क्यों नहीं हरज है। क्या मैं आपकी बीबी हूँ।'

'और यदि बीबी ही हो जाओगी तो क्या हो जायगा।' इस बार गुप्ता जी की आवाज पहले से बहुत तेज थी।

'कैसी बात करते हैं आप ? मै आपके यहाँ नौकरी करने आयी थी, आपकी बीबी बनने नही।'

'जरा समझकर बोलिएगा' वह विचित्र ढंग से मुस्कराया—'आप मेरे यहाँ नौकरी करने नहीं वरन् अपनी रक्षा करने आयी थीं। बोलो, क्या यह झूठ है ? क्या मेरे यहाँ के अतिरिक्त और कहीं भी तुम ऐसी सुरक्षित रह सकती थी।'

'...। वह कुछ बोल न सकी। उसे ऐसा लगा जैसे वह एक झटके में आकाश से धरती पर गिर पड़ी हो। वह सोचती रही।

'बोलती क्यों नहीं? अबतक चुप क्यों हो। अपने दिल से पूछो। अत्यन्त घबरायी हुई आधी रात को जब तुम मेरे अखबार के कार्यालय में आयी थी, तब क्या कोई और भी तुम्हें शरण दे सकता था। समाज के हर कोने में तू आवारा, बदमाश, धूर्त और चोर ही थी, किन्तु यह रमेशचन्द्र गुप्त ही था, जिसने तुम्हें अपने घर में रखा। वह भी नौकरों की तरह नहीं, रानी बनाकर। उसने अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा का भी ध्यान नहीं रखा। आखिर किसलिए? केवल इसलिए कि उसकी बीबी बीमार है। तुम उसका काम चलाती रहोगी। नहीं तो यदि उसे नौकर ही रखना होता तो तुमसे बहुत अधिक काम करनेवाले सस्ते नौकर उसे मिल सकते थे।'

'तो तुमने मुझे अपनी बीबी बनाने के लिए नौकर रखा था ··तो मुझसे छिपाया क्यो? ··धूर्त, नीच, पापी।' वह क्रोध से काँप रही थी।

पर रमेशचन्द्र अपने स्थान पर अडिग था। इस बार उसका स्वर गम्भीर होते हुए भी तीखा था—'पहले जबान और बुद्धि पर नियंत्रण रखो। ऐसा न हो कि तुम अपने से ही अपना कोई बहुत बड़ा अहित कर डालो।' वह कुछ क्षणों के लिए रुका। सरला शान्त तो नहीं हुई थी। उसके शरीर का कंपन कुछ शिथिल अवश्य दिखायी पड़ रहा था। उसकी आँखें विस्फारित थीं मानों आग उगल रही हों। चेहरा एकदम ताँबा हो गया था।

गुप्ताजी सरला को शान्त करने की दवा अच्छी तरह जानते थे।

उन्होंने वही औषधि दी। इस बार उनका स्वर और भी अधिक टेढ़ा था—'···तुमने भी तो मुझसे बहुत कुछ छिपाया है। कौन हो? कहाँ की हो? यहाँ क्यों आयी? क्या इन तीन प्रश्नों का कभी तुमने सही उत्तर दिया है? क्या इस सम्बन्ध में तुमने मुझे अन्धकार में नहीं रखा है? तब मैंने इतना ही छिपाया तो क्या बुरा किया···और वह भी तुम्हारी भलाई के लिए ही मैंने ऐसा किया, क्योंकि अब यदि तुम इस संसार में रक्षित रह सकती हो, तो मिसेज गुप्ता बनकर।' वह कुछ समय के लिये रुका, फिर अपनी मुद्रा बदल कर बड़े दावे के साथ बोला—'यदि तुम यह समझो कि मैं सब जानता नहीं, तो यह तुम्हारी भूल होगी। मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम्हारे गुलाब से कोमल तन के भीतर अत्यन्त कलुषित और अपराधी आत्मा मुझे हर समय भयभीत दिखायी देती है। जरूर तुमने जीवन में कोई जघन्य अपराध किया है। नहीं तो इन तीन प्रश्नों के उत्तर में तुम्हारे जबान पर ताला न लग जाता। ··सोचो, अच्छी तरह सोचो, तुम कहाँ हो, कितने पानी में हो ·····।'

इसी बीच हेलेन की पुकार सुनायी पड़ी—'गुप्ताजी, मुंशीजी आ गये हैं।' पर वह बोलता ही जाता था,'···और क्या तुम यह समझती हो कि तुम्हारा अपराध इसी तरह छिपा रहेगा, अब यह होने का नहीं। संसार की आँखों को तुम और अधिक धोखा नहीं दे सकती। अबतक तो मैंने किसी प्रकार तुम्हें छिपाकर रखा और अब ऐसी तरकीब बताता हूँ कि जीवन भर तुम छिपी रह जाओगी। इतना होने पर भी यदि तुम मुझे नीच, धूर्त और पापी समझती हो तो समझो।···याद रखो मैं एक अख-बार का मालिक हूँ यदि आज ही चाहूँ तो तुम्हारे सारे कुकृत्यों का काला

चिट्ठा अपने अखबार में छाप दूँ, तुम्हारा भण्डाफोड कर दूँ। फिर यहाँ की पुलिस तो तुम्हें पकड़ेगी ही, साथ ही जहाँ से अपराध करके भागी-भागी फिरती हो वहाँ की पुलिस के भी लाल खूनी पंजे से तुम बच नहीं सकती। अच्छी तरह सोच लो। तुम क्या चाहती हो, जेल के कठघरे में बन्द होकर अपराधी की तरह जीवन बिताना या मेरी बनकर सुख की नींद सोना।' इतना कहते हुए वह झटके से कमरे के बाहर निकल कर हेलेन की ओर चला। बाहर निकलने के बाद भी कुछ बड़बड़ाया। जिसे सरला सुन न सकी।

आज कैसे वह इतना बोल गया। मन की बात जीवन में कभी भी उसने ऐसे स्पष्ट शब्दों में नहीं कही थी। पर वह आज भावावेश में था। आवेश वह प्रबल तूफान है जिसे बुद्धि रोक नहीं पाती और जो मन में छिपे पड़े सारे कूड़ा-करकट को उड़ाकर एक बार में ही बाहर फेंक देता है।

उसके जाते ही कमरा सुनसान हो गया। वहाँ के निर्जीव पदार्थों की भाँति सरला भी निर्जीव चारपायी पर पत्थर की तरह पड़ी थी। सामने शमादान में मोमबत्ती जल रही थी, जिसपर पतिंगे मंडरा रहे थे। कुछ जल जलकर गिर भी पड़े थे। सरला उन्हें एकटक देखती जाती थी जैसे वह कुछ सोच रही हो, पर वास्तव में वह कुछ ठीक सोच पा नहीं रही थी। उसे ऐसा लग रहा था जैसे मोमबत्ती की लौ से प्रकाश नहीं, काला धुँआ निकल रहा है और जो सीधे उसकी ओर आ रहा है। वह एकदम शान्त थी पत्थर की मूर्ति के समान।

कुछ समय के बाद कदाचित् उसकी तबीयत और भी घबराने लगी।

अब उससे बैठा नहीं गया। उठकर उस कमरे में ही चक्कर लगाने लगी। और जब वह एकदम थककर चूर हो गयी, वह अत्यन्त शिथिल हो बिस्तर पर धम्म से बैठ गयी। लेटकर करवटें बदलती रही, फिर भी शांति नहीं। कभी वह चारपायी पर ही उठ बैठती, कभी वह तकिया सीने से दबाकर लेट जाती। जब उसकी घबराहट शान्त न हुई, तब उसने सिरहाने टेबुल पर रखे रेडियो का कान घुमाया। सिलोन से अत्यन्त मधुर फिल्मी गीत आ रहा था—

'··यह अमीरों के सोने की गली है,
तेरे लिए रोने को बड़ी उम्र पड़ी है।
चुप हो जा···चुप हो जा···।

□ □ □

बगल की कुर्सी खींचकर बैठते हुए गुप्ताजी बोले—'हाँ-हाँ मैं मुंशी जी को तो पहले से ही जानता हूँ। आपने मुझे इनके सम्बन्ध में इतना बता दिया कि अब और अधिक जानना बेकार है।' फिर वह खिलखिला पड़ा।

'जानते तो हैं, पर क्या यह भी जानते हैं कि ये हजरत महा लेटलतीफ और काहिल आदमी हैं।' विचित्र अदा से मुस्कराते हुए हेलेन ने कहा।

गुप्ताजी ने व्यंग्य किया—'पटवारी गाँव का राजा होता है राजा।

मुंशीजी कितने बड़े आदमी हैं जरा इसे तो सोचो। वह रोजगारी क्या, जो बेईमानी न करे और वह बड़ा आदमी क्या, जो हर काम में लेट न हो जाय। आठ बजे का समय आने को दिया था। खरामा खरामा नौ बजे तक आये। इसमें हर्ज ही क्या है।' गुप्ताजी ने तो इतने नाटकीय ढग से कहा कि उनके चेहरे की गम्भीरता जरा भी नष्ट न हुई, पर हेलेन हँस पड़ी।

'आज सबेरे से आप लोगों को कोई मूर्ख बनाने के लिए मिला नहीं था क्या?' मुंशीजी के बोलते ही सबके सब हँस पड़े। 'तब तो आपके लिए मै अच्छा शिकार मिला, इस बार तो और जोर की हँसी हुई।

जब वायुमण्डल मे उनकी हँसी का प्रकम्पन समाप्त हुआ तब मुंशीजी ने बड़ी गम्भीरता से कहा—'क्या बताऊँ गुप्ताजी, आजकल इतना काम रहता है कि एक मिनट के लिए भी छुट्टी नही मिलती।'

गुप्ताजी भी ठीक वैसी ही गम्भीरता में बोले—'अरे भाई, छुट्टी मिले भी तो कैसे मिले। कहा भी तो गया है—

'मदरसे इश्क का इक ढंग निराला देखा
उसे छुट्टी न मिली जिसको सबक याद हुआ।'

'वाह, वाह, क्या कहने। सुबहान अल्ला।' हेलेन मारे खुशी के चिल्ला पड़ी।

मुंशीजी तो जैसे कट कर रह गये। झेंप गिराते हुए गुप्ताजी से बोले—'आप बड़े हैं, जो चाहें सो कहें। हममें कहाँ इतनी शक्ति जो आपकी बातों का जवाब दे सकूँ।' फिर एक हल्की मुस्कराहट के बाद वातावरण में धीरे धीरे गम्भीरता आ गयी।

तब हेलेन ने कहा,—'अच्छा तो अब कुछ मतलब की बात होनी चाहिए।...क्यों मुशीजी, इस समय आप कहाँ से आ रहे हैं।'

'चौकी पर से।'

'आप तो दो घण्टे पहले जब यहाँ से गये तभी कह रहे थे कि चौकी पर रिपोर्ट लिखाने जा रहा हूँ। साइकिल से गये भी। दस मिनट का रास्ता, और दो घन्टे लगा दिये। क्या अभी तक चौकी पर ही थे।' हेलेन को आश्चर्य था।

'अरे भाई चौकी पर नींद आ गयी होगी।' गुप्ताजी के इस व्यंग्य पर पुन तीनों के अधर खिल गये।

'सोता रहा या जागता रहा, पर था पुलिस चौकी पर ही।...बात यह थी कि दीवानजी थे नहीं। बिना उनके कुछ काम होना मुश्किल था।'

'तो उन्होंने क्या कहा ?'

'उन्होंने कहा कि दफा ३९५ में तो मैं रिपोर्ट लिख लूँगा, पर उसके लिए गवाही बहुत तगड़ी होनी चाहिए।'

'दफा ३९५ क्या होती है ?' हेलेन ने पूछा।

'दफा ३९५ का मतलब है डाका। उन्होंने रिपोर्ट में लिखा है कि विलसन के परिवार को इसी गाँव मद्धूपुर के कुछ लोग घातक हथियारों से लैस हो लूटने आज शाम को आये थे, पर जब उनकी लड़कियां हेलेन और मेरी बन्दूक लेकर निकलीं, तब सब भाग गये। भागते लोगों में कुछ को इन दोनों लड़कियों ने अच्छी तरह देखा है।...इन भागने वालों में कुछ लोगों का नाम लिखवा दिया गया है।'

गुप्ताजी गम्भीरता से विचार करते रहे, किन्तु हेलेन ने पूछा,—'किन-किन लोगों का उसमें नाम लिखवाया ?'

'अब कुल तो याद नहीं है। हाँ, सत्रह आदमियों का नाम अवश्य लिखा गया।'

'कुछ तो याद होगा ?'

'हाँ, कुछ क्यों नहीं होगा।···सरपंच, सभापति, जुम्मन मियाँ, भोदू अहीर, माधो पण्डित, चतुरी चौधरी।' फिर वह भूले नाम याद करते हुए बोला—'··मभ्भन ढफाली' यही सब समझो।

'बहुत अच्छा किया आपने, इन सालों को भी बाजार का भाव मालूम हो जायगा।'

'पर अब गवाही का प्रश्न है··········एक गवाह तुम रामू को ठीक करो।···क्या ख्याल है ?'

'ठीक तो है' और तब हेलेन ने श्यामू को पुकारा। जब वह आया, उसे सम्बोधित कर उसने कहा—'जा जरा घाट के किनारे तो देख। वहां रामू होगा। उसे बुला ला।' श्यामू उसी दम चलने को हुआ, तब मुंशी जी ने उसे टोकते हुए कहा,—'······और देख श्यामू, रामू को अलग बुलाकर यहाँ आने को कहना।'

फिर मुंशीजी ने हेलेन से कहा—'मेरा तो ख्याल है घाट पर श्यामू को भेजना बेकार है। यह सड़क पर ही खड़ा रहे। अब तो वह घर जायेगा ही। जब वह इधर से जाने लगे, तब चुपचाप बुला ले।'

'यह भी ठीक है। तो ऐसा ही करो श्यामू।'

'अब एक गवाही किसी और की होनी चाहिए।' दोनों बड़े गौर से

सोचते रहे। फिर मुंशीजी ने ाजी से कहा - 'एक गवाही यदि आप कर दे, तो कोई हर्ज है।'

'हर्ज तो कुछ नहीं है, पर मैं सोचता हूँ कि ३६५ चलेगा कैसे? पूरे गांव के बड़े-बड़े लोगों को आप लोगों ने लिखाया है। ...इतना ही नहीं, माधो पण्डित को भी उसी में लिखवा दिया। जानते हो कि वह कांग्रेसी आदमी है। इधर के एम० एल० ए० चतुर्वेदीजी का पक्का पिट्ठू।...मुझे तो लगता है कि कहीं वह आप लोगों को उलटे न फँसा दे। जब सात खून करके भी वह बेदाग निकल जाता है, तब उसे इसमें क्या धरा है।' गुप्ता जी कुछ सोचकर पुनः बड़े विश्वास के साथ बोले—'और साहब किसी भी हालत में ३६५ सिद्ध नहीं होता। गाँव का गाँव आपके दरवाजे आया और वह भी आपके डैडी से बात करने। कुछ को आपने हटाया, कुछ को कल आने के लिए कहा। इसमें क्या ऐसा है जिसपर तीन सौ पनचानबे खड़ा हो सकेगा; चलना तो दूर रहा। न झगड़ा हुआ, न लाठी चली और न गाली गलौज ही हुआ।'

सचमुच गुप्ताजी का तर्क सबल था। हेलेन सोचने लगी पर मुशीजी बोले—'मेरा उद्देश्य ३६५ चलाना नहीं है। मैं तो सोचता था कि इनमें से तीन चार आदमी थाने पर बुलाकर अच्छी तरह पीटे जायँ और तब सुलह करा दी जाय।'

'दफा ३६५ में कहीं सुलह होती है? आप भी मुंशीजी व्यर्थ ही कायस्थ के घर में पैदा हुए।'

'ओ हो आपने मेरा मतलब समझा ही नहीं। मैं चाहता हूँ कि कल सबेरे ही चौकी पर बुलाकर इन लोगों में से कुछ की पुलिस अच्छी

मरम्मत करे। कुछ उनसे ऐंठकर यह रिपोर्ट ही कैंसिल कर दे। यह तो पुलिस के बायें हाथ का खेल है।'

'फिर इससे फायदा?'

'इससे फायदा यही होगा कि गाँव में फिर किसी की हिम्मत भी इधर अँगुली उठाने की नहीं होगी।'

'जब रिपोर्ट ही कैंसिल होने वाली है तो लिखा दीजिए हमारा भी नाम।' गुप्ताजी मुस्कराते हुए बोले।

'इसी समय सड़क पर से श्यामू की आवाज सुनायी पड़ी,—'सिस्टर, सिस्टर; देखो ये नहीं आ रहे हैं।'

आवाज सुनते ही हेलेन उस ओर से जल्दी ही सड़क पर गयी; जिधर चहारदीवारी गिरी थी। श्यामू से हाथ छोड़ाकर आगे बढ़नेवाला रामू हेलेन को देखकर रुक गया।

'क्यों रामू, क्या आज मेरे यहाँ नहीं आवोगे।' उसकी आवाज ने वासना की तीखी तीर मारी। उसकी आँखों ने गजब का जादू डाला, पर उस पर कोई असर न हुआ। वह बड़ी रुखायी से बोला—'नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं।' वह आगे बढ़ने को हुआ कि हेलेन ने उसका बायाँ हाथ पकड़ लिया। उसकी हथेलियां बड़े प्यार से सहलाते हुए उसने कहा—'देखो रामू, तुम्हारे पीछे मै सारे गाँव में बदनाम हो चली हूँ।' चुप-चाप कामुकता भरी दृष्टि से उसे एक टक देखती रही, फिर वह बड़े प्यार से उसकी छाती के पास अपना सिर ले जाकर बोली,—'रामू तुम मुझे कितने अच्छे लगते हो।'

आखिरकार एक अविवाहित जवान की छाती के पास एक वासना

की तितली थी। हल्का सा स्पन्दन तो उसके दिल में अवश्य हुआ, किन्तु दूसरे ही क्षण उसके आँखों के सामने उसके बूढ़े बाप की आँसू भरी आँखें दिखायी पड़ीं। उसे ऐसा लगा मानों वे आँखें उसे घूर रही हों। जैसे वह उसे निगल जाना चाहती हैं। ओह, गड्ढे में घुसी इन सजल आँखों में कैसी ज्वाला है। उसे अब एक भी क्षण वहाँ रुकना कठिन हो गया। उसने झटके से अपना हाथ छुडाया और बड़ी तेजी से आगे बढ़ता हुआ बोला—'मुझे देर हो रही है। बाबू दरवाजे पर बैठे अगोर रहे होंगे।'

रामू के इस बदले स्वभाव पर हेलेन को आश्चर्य था। वह समझ नहीं पा रही थी कि इतना परिवर्तन उसमें ऐसी जल्दी कैसे हो गया। वह अपना सा मुँह लेकर लौट आयी और आते हुए बोली—'वह तो यहाँ आना भी नहीं चाहता है, फिर गवाही क्या देगा?'

'तो यही देखिए। जिसको आप अपना समझती हैं उसकी हालत यह है।' गुप्ताजी ने कहा।

'कोई गवाही नहीं देगा, नहीं सही। कल मैं तीन आदमियों—भोदू अहीर, जुम्मन मियाँ और चतुरी चौधरी को चौकी पर बुलाकर अवश्य पिटवाऊँगा, फिर देखा जायगा। इनका कुछ प्रभाव भी तो नहीं, आखिर वे करेंगे क्या?' बड़ी बहादुरी से मुंशीजी ने कहा।

'हाँ भाई इसका ख्याल रखना कि ऐसा कोई भी न परेशान किया जाय जिनका कुछ प्रभाव हो।' इतना कहकर वह उठ खड़े हुए और भीतर रखी अपनी छड़ी लेने जाने लगे, फिर हेलेन से बोले—'मुंशीजी से बात करके जब खाली हो जाना तो जरा भीतर आना।'

'अब बात ही क्या करनी है, अभी आती हूँ।' हेलेन ने कहा।

गुप्ताजी को भीतर जाते ही मुंशीजी मुस्कराये और बड़ी अदा से आँखें नचाते हुए बोले,—'लो डार्लिंग अब मैं भी जा रहा हूँ। बेकार तुम्हें बाहर क्यों रखूँ, भीतर गुप्ताजी तुम्हारे बिना तड़प रहे होंगे।' दोनों मुस्करा पड़े। मुंशीजी उठकर खड़े हुए। 'अब कब दर्शन होंगे, मुंशीजी।' हेलेन ने पूछा।

'कल किसी समय आऊँगा।'

'अच्छी बात है जरूर आइएगा। गुड नाइट।'

हेलेन अब गुप्ताजी को लेकर सरला के कमरे के निकट आयी। कमरे में मोमबत्ती करीब-करीब जल चुकी थी, किन्तु अभी बुझी नहीं थी। उसकी हिलती लौ बीच में भभक उठती थी। सम्भवतः यह एक दो मिनट तक और जले। रेडियो खुला था। अत्यन्त मन्द स्वर में वाद्य संगीत सुनायी पड़ रहा था। सरला तकिये के सहारे बैठी-बैठी सो गयी थी। उसकी पलकें भींगी और भारी थीं। चेहरा उस धूमिल सन्ध्या की तरह था जिस पर अन्धकार की कालिमा धीरे-धीरे बढ़ती दिखायी देती है। दोनों कमरे के बाहर से देख रहे थे।

'भीतर जाकर रेडियो बन्द कर मोमबत्ती बुझा दो और इसे सोने दो।' गुप्ताजी ने हेलेन से कहा।

'क्यों अभी तो इसने कुछ खाया भी नहीं है?'

'नहीं खाया नहीं सही, पर इसे जगाओ मत। हो सके तो बाहर किवाड़ भी बन्द कर लो।'

उसने कहा—'दरवाजा क्यों बन्द किया जाय। यह भाग थोड़े ही जायगी।'

'कौन जाने। हेलेन, तुम इसे नहीं जानती। यह विचित्र औरत है।'

—दस

कुआर की चमचमाती धूप धरती पर सोने का पानी चढ़ा रही थी। दिन के ग्यारह बजे थे। मद्धूपुर के किसान गेहूँ और जौ के लिए खेत तैयार कर रहे थे।

पर आज मद्धूपुर में एक विचित्र आतंक भरी खामोशी छायी थी। कोई किसी से खुलकर बात करता दिखायी नहीं देता था। ऊपर से सभी शान्त अपने काम में लगे मालूम पड़ते थे, किन्तु लुक छिपकर आपस में गुप्त चर्चा धीरे-धीरे हो रही थी। खेत पर, पगडंडी पर, फैलू साव की परचून की दूकान पर—सभी जगह दो-चार आदमी बैठकर बातें कर रहे थे, ऐसा मुँह में मुँह सटाये कि कुछ जाहिर नहीं होता था। यहाँ तक कि घास करती नीच जाति की औरतों का भी हाथ आज उतनी तेजी से चल नहीं रहा था। वह भी 'गुड़चू गुड़चू' करने में तल्लीन थीं।

साफ जाहिर था कि गाँव में कुछ ऐसा अनिष्ट हो गया है जिसकी

इन भोले भाले ग्रामीणों को कभी आशा भी नही थी। अब ये उसकी खुली चर्चा में भी डर रहे हैं।

अब तक तो मुंशी गुरुदीन पटवारी चुपचाप अपने घर मे पड़े रहे, पर जब उन्हें विश्वस्त सूत्र से पता चल गया कि पुलिस तीनों को पकड़कर चौकी पर ले गयी तब वह गाँव का भाव ताव बूझने के लिए निकले। मुँह में पान सुरती जमायी, अपना छोटा सा बसोटा बगल में दबाया और चल पड़े। पहले फैलू बनिया की दुकान की तरफ ही निकले इस समय दूकान पर फैलू था नहीं। उसकी आबनूसी रंग की मोटी औरत बैठी थी। उमर तो उसकी तीस के ही करीब थी, पर ऐसी भारी भरकम थी कि वजन में बड़े-बड़े पहलवानों को भी मात दे दे। उसकी दूकान पर इस समय दो चार ग्राहक और थे, जिनमें बस वही बात चल रही थी। बूढ़ी अहिरिन जो चावल बदलकर नमक लेने आयी थी, फैलू की औरत से बोली—'का करबू बिटिया, ई कलऊ क माया हौ। येहमे जो न हो जाय, ऊ थोड़ै समझऽ। नाहींत ऊ बेचारन का कैले रहलन जउन चौकी पर ऐसन पीटल गइलन।' बूढ़ी की बात सुनने के लिए सौदा लेकर भी तीनों व्यक्ति वहीं खड़े ही रह गये। एक ने सहुआइन से दियासलाई लेकर साथ ही तीन बीड़ी जलायी और फिर तीनों धूँआ फूकने लगे।

'का कही चाची; अब तो अत्त न हो गयल। कोई कुछ करै, बोलऽ मत। कोई लड़कन के बहकावै, बटिया पतोहियन क आबरू लें, पर जबान मत खोलऽ, और खोलऽ त लात खा। ई जवाहिर लाल क राज हौ न।' सहुआइन हाथ मटकाती हुई बोली।

'अरे आग लगो जवाहिर लाल क ऐसन राज में बहिनी।' बूढ़ी अहिरिन ने कहा।

अपने प्रिय नेता पर लांछन लगते देखकर वह ग्रामीण युवक भी चुप रह न सका। बोला—'ऐहमे जवाहिर लाल क कउन दोष हौ भइया।'

'काहे नाहीं। ऐसन पूलुसियन के निकार काहे नाहीं देतन जउन झुट्ठे पकर के मारै लन।' सहुआइन ने कहा।

पुलिस क रक्खब अउर निकारब, ई काम जवाहिर लाल का नाही हौ।' युवक बोला।

तब तक मुंशी जी तो आ ही गये। उन्हें देखते ही तीनों युवकों ने उचित अभिवादन किया। बात-चीत का सिलसिला टूट गया बूढ़ी भी 'पल्लगी' कर चल पड़ी। मुंशीजी के कुशल क्षेम का जवाब देकर युवक भी चलते बने। सहुआइन अपना अचरा सम्भालती और सिर पर धोती ठीक करती हुई बोली—'का हुकुम हौ मुंशीजी।'

'कैंची सिगरेट हौ।' मुंशीजी ने पूछा।

'अच्छा, देखी त बतायी।' इतना कहकर वह अपना ढोल जैसा फूला शरीर सम्भालती हुई उठी और भीतर से कैंची सिगरेट की डिबिया निकाल लायी। इसमें एक ही सिगरेट थी। उसे निकालकर मुंशीजी को दिया और डिबिया बड़े जतन से रख लिया।

मुंशीजी ने तुरन्त जेब से दो पैसे निकाल कर फेंके और दियासलायी माँगी। तब सहुआइन गिड़गिड़ाती हुई बोली—'सरकार आज कल दाम बहुत बढ़ गयल हौ। एक पैसा अउर चाही।'

'एक पैसा कइसन रे, अधेलै नऽ...फिर कबहूँ ले लिये।' सिगरे ट

का मुँह फूकते हुए वह बोला। सहुआइन समझ गयी कि अब यह अधेला इस जन्म में तो मिलने वाला नहीं है।

'अउर का हालचाल हौ ?'

'सब तोहार मेहरबानी हौ मुंशीजी।'

इधर से मुन्शीजी ठाकुर बगासिंह की छावनी की ओर निकले। दूर ही से उन्होंने देखा कि छावनी पर ठाकुर साहब बैठे हुक्का पी रहे हैं। वहाँ दो तीन आदमी और हैं। पता नहीं क्यों इस समय वे ठाकुर साहब का सामना करना नहीं चाहते थे। अतएव सीधीराह न चलकर खेत-खेत चले। फिर भी बंगासिंह की निगाह पड़ ही गयी। वह अपनी छावनी पर से ही हाथ उठाकर चिल्लाया,—'आशिरबाद लीहऽ, हो मुंशी जी।'

आवाज इतनी बुलन्द थी कि मुंशी जी जरा भी आनाकानी कर न सके। तुरन्त ही उतनी ही जोर से बोले—'पालागी ठाकुर साहब।'

'अरे जरा इधर भी तशरीफ ले आइये।' ठाकुर साहब ने कहा।

मुन्शी जी के लिए अब कतराना मुश्किल था। चुपचाप छावनी की ओर चले। इधर कुछ औरतें बैठकर घास कर रही थीं। उसे देखते घूँघट निकाल कर एक किनारे हट गयीं। फिर भी वह उन्हें एकटक घूरता उनकी ओर चला। पास आकर बोला—'करे लखपतिया, का हालचाल हौ ?' उसके इतना बोलते ही और औरतें तो ऐसी सिमिट गयी जैसे छू देने पर लजाधुर का पौधा सिकुड़ जाता है। केवल एक अधिक उम्र की बूढ़ी औरत पर मुंशीजी के बोली का कुछ प्रभाव न पड़ा।

लखपतिया अपना अचरा ठीक करती हुई खुरपी जमीन पर रखकर

बोली,—'सब तोहार मेहरबानी हौ मुन्शीजी।' उनकी आँखे धरती की ओर थीं।

'खूब कटत हौ न।' इतना कहने के बाद मुंशीजी मुस्कराये। वह कुछ न बोली। घूँघट के भीतर से ही सलज्ज नेत्रों से मूक मुस्कराती हुई अपनी सखियों की ओर देखा। सभी मुंशी जी के मन चले स्वभाव से परिचित थीं, सभी चुप रह गयीं। मुंशी भी कनखियों से उनका जोबन निहारता आगे बढ़ा।

'कहिए मुंशीजी आजकल आप हमपर नाराज हैं क्या?' छावनी पर पहुँचते ही उससे बगासिंह जी ने पूछा।

'अरे भला आप से कोई नाराज हो सकता है। आप कैसी बात करते हैं।' मुन्शीजी बोले।

'इधर आप मेरे यहाँ कई दिनों से आये नहीं और जब आप आये भी तो उधर से ही खेत ही खेत जाने लगे, तब मैंने सोचा, शायद आप नाराज तो नही। . कौन जाने इस जमाने की हवा आप को भी लग गयी हो।'

जली सिगरेट फेंककर मुंशीजी बगासिंह की चारपायी पर बैठ गये। वे तीन व्यक्ति भी मुंशी जी के स्वागत में खड़े हो गये थे, उनके बैठते ही एक तरफ जरा दबकर बैठ गये। इसके बाद मुन्शीजी बोले—'आज कैसी बात कर रहे हैं ठाकुर साहब।' फिर उसने मुस्कराते हुए उन तीन व्यक्तियों को देखा।

'अरे भाई; क्या कहूँ? आजकल जमाना बड़ा खराब है। होम करते हाथ जलता है। फिर आप ऐसे लोग सहज ही नाराज होजाय तो इसमें अचरज क्या?' ठाकुर साहब ने कहा।

'क्यों ? आखिर ऐसी कौन सी बात होगयी कि आज ठाकुर साहब इस तरह बोल रहे हैं।' मुन्शीजी ने बगल में बैठे उन आदमियों की ओर संकेत करके कहा।

पर ठाकुर साहब ही बोले.—'क्या आपको कुछ मालूम नही ?

'नहीं तो।' उसने बिल्कुल अनजान की तरह सिर हिलाया।

'आज चौकी पर बुलाकर भोदू, चतुरी और जुम्मन मियाँ को पुलिस ने खूब पीटा है।'

'अरे, आखिर क्यों ?'

'कल जो हमलोग मिलने गये थे, उसी के सम्बन्ध में उसने ३६५ की रिपोर्ट चौकी पर लिखवा दी। पुलिस भी आजकल की कैसी हो गयी कि न आव देखना और न ताव, केवल पकड़ कर पीटना सिद्ध।'

'राम-राम, जमाना बँडा खराब आगया ठाकुर साहब। अब तो कोई सही बात के लिये जबान खोलना भी कठिन होगया। अब जो जैसा करे उसे वैसा करने देना चाहिए, पर यह देखा भी तो नहीं जाता। कुछ समय तक गम्भीर मुद्रा में कुछ सोचने का अभिनय करके वह पुनः बोला, 'अरे उन रंडियों की हिम्मत तो देखो। बाप से मिलने भी नहीं दिया और उल्टे रिपोर्ट लिखादी। उस पर तो बस आप की ही दवा कारगर होगी। पीटते पीटते साली के शरीर की चमड़ी ही उतार ले। एक तो रंडी खाना बना रक्खा है। मना करो तो खुरापात करती है। अरे जब तबीयत नहीं मानती, तो किसी को अपना भतार क्यों नहीं बना लेती, रोज रोज नये नये बुलाना क्या कोई भली बात है। मैं तो समझता हूँ, ठाकुर साहब वह जो चौकी का दीवान जी हैं न उसकी भी कुछ न

कुछ साठगाठ जरूर इन रंडियों से होगी, नहीं तो बिना समझे बूझे पुलिस हम लोगों को ऐसे न पीटती।' सफल नाटककार भी ऐसी मुद्रा का अभिनय नहीं कर सकता जैसी मुद्रा का सफल अभिनय इस समय मुंशी जी ने किया।

'सो तो है ही, सब उसी की करतूत है।...बेचारे कैसे फँसे। उनके घर के आदमी इस समय मछली की तरह छटपटाते रहे है। अभी भोंदू का बड़ा लड़का पंचम चतुरी के पुत्र सरजू के साथ आया था। बेचारे दोनो रो रहे थे। रोने छटपटाने के सिवा तो उनके पास कोई चारा ही नहीं है?...आप कोई उपाय लगाइए मुन्शीजी।'

'जब रिपोर्ट दर्ज हो चुकी तब मैं क्या कर सकता हूँ ठाकुर साहब।'

'अगर कुछ दे ले कर मामला निपट जाय तो अच्छा था।'

'लेकिन मैं देने लेने के मामले में बीच में नही पड़ूँगा? पटवारी लोग यों ही बदनाम हैं कि बीच में रुपया खाते हैं। लेना एक न देना दो, व्यर्थ बदनाम होने से क्या फायदा?' भीतर से तो वह यहीं चाहता था, पर ऊपर से उसने अपनी अस्वीकृति जाहिर की।

'नहीं मुंशीजी आपको भला कौन माई का लाल ऐसा कह सकता है। क्या गाँव वाले जानते नहीं कि आपने शायद ही कभी किसी का एक पैसा भी खाया हो।..और मैं तो हूँ ही, कोई साला कुछ बोलेगा तो समझ लूँगा।' बंगासिंह की ठकुराई एक बार फिर जागी।

'तो आप समझ लीजिये, मैं व्यर्थ कलंक से बहुत डरता हूँ।'

'हाँ हाँ आप विश्वास रखिए।...बेचारे व्यर्थ में बहुत पीटे गये हैं।

उनके घर के लोग छटपटा रहे है।...तभी मैं आपको कष्ट देरहा हूँ। यदि उनका कुछ भला हो गया, तो उनकी आत्मा दुआ करेंगी, बड़ा सबाब मिलेगा मुन्शी जी।'

बड़ी सिफारिश करने के बाद मुन्शी जी चौकी पर चलने को तैयार हुए। भोदू के बड़े लड़के पंचम चतुरी का पुत्र सरजू तथा जुम्मन के छोटे भाई रज्जन को भी ठाकुर साहब ने साथ लिया और चौकी पर पहुँचे।

फाटक पर बन्दूकधारी पुलिस पहरा दे रहा था। भीतर दीवानजी मूछों पर हाथ फेरते आज का अखबार पढ़ रहे थे। उन लोगों को आया देखकर वह और भी अकड़ कर बैठे। तब तक मुंशी जी बोल उठे—'सलाम, दीवन जी।'

दीवानजी ने अखबार की ओर से आँख हटायी। बंगा सिंह ने अब पूरा झुक कर सलाम किया। तब तक मुंशीजी साथ में आये, पकड़े गये लोगों के सम्बन्धियों से बोले—'खड़े होकर टुकुर टुकुर ताकते क्या हो? दीवानजी का पैर पकड़ो', तीनों साथ ही हड़बड़ा कर पैर पकड़ने के लिए झुके। दीवानजी तड़पे 'क्या वाहियात का नाटक कर रखा है।'

'अरे हजूर, इन पर रहम कीजिए। इनकी आँखें देखिए, रोते रोते लाल हो गयी।'

ये रोये चाहे चिल्लायें। जब लोग डाका डालने गये थे तब उनकी आँखे फूट गयी थीं क्या?

तीनों चुपचाप खड़े थे, पर बंगासिंह ने हाथ जोड़ कर अत्यन्त विनम्र भाव से कहा—'हजूर, गरीबपरवर, यदि गुस्ताखी माफ हो तो अर्ज करूँ कि यह सारी रिपोर्ट गलत है...।' वह अपनी बात पूरी कह भी नहीं

पाया था कि दीवानजी तडपे—यदि रिपोर्ट गलत है, तो अपना मुँह फूकने यहाँ क्यों आये हो, जाओ अदालत में कहना। निकलो यहाँ से, अभी निकलो...जोगेन्दर सिंह!' एक सिपाही धड़ से सेवा में हाजिर हुआ। इन सब को अभी यहां से निकाल बाहर करो।

'पर मैं भी कुछ कहना चाहता हूँ दिवान जी।' मुंशी जी ने बड़े अदब के साथ कहा।

'जरूर कहिए। लेकिन पहले इन कमीनों को बाहर निकालिए। तब मैं आप की कही सुनूंगा।'

मुंशीजी सब को समझा कर बाहर ले आये और उनसे बोले—'देखा आप लोगों से दिवान जी कितने नाराज हैं।...'

'पर किसी प्रकार मामला ठीक करा दो मुंशी जी, तुम्हारे पैर पड़ता हूँ।' इतना कहते ही रब्बन मुंशी जी के चरणों पर गिर पड़ा। 'हां मुंशी जी अब आपै क भरौसा हौ।' शेष दो भी गिड़गिड़ाने लगे।

'पर मामला कम पर तय होता नजर नहीं आता। क्या तुम लोगों में प्रत्येक २००) दे सकोगे? इतने पर कहो तो तय करूं।' मुंशी जी ने कहा।

'अरे सरकार इतने में तो हम बिक जायेंगे!' पंचम बोला। रब्बन ने भी ऐसी ही बात कही।

'फिर कम में मामला तय होता नजर नहीं आता।...देखो बात करता हूं।' इतना कह मुंशी जी भीतर गये। बंगासिह इन तीनों को लेकर कुछ दूर सड़क के उस पार पीपल के वृक्ष के नीचे बैठने के लिए

आये। पास आते ही पंचम वृक्ष की जड़ में माथा टेकते हुए बोला—'हे पीपल महराज अब हमार पत पानी बस तोहरे हाथ हौ।'

भीतर पहुँचते ही मुंशी जी के चेहरे का रंग बदला। जैसे एक दोस्त दूसरे दोस्त से बात करता है उसी लहजे में मुंशी जी ने दिवान जी से कहा—भाई ये असामी पचास पचास रुपये से अधिक के दिवाल नहीं हैं। बोलो क्या करूं?

'अरे यार, इतना बड़ा हौफा बांधा गया और पचास पचास रुपये ही मिलेंगे।' दिवान जी बोले।

'पर किया क्या जाय? मुकदमे में दम भी तो नहीं है। न गवाही, न साकी। जो मिले उसी पर तय कर लेना चाहिए।' मुंशी जी ने कहा।

'पर मैं पचत्तर पचत्तर रुपये से कम न लूंगा। इसके ऊपर जो मिले वह तुम्हारा।

'अच्छा देखिए कोशिश करता हूँ, पर मुझे इतने से भी कुछ अधिक मिलने की आशा नही।' इतना कह कर मुंशी जी बाहर आने को हुए। दिवान जी ने उन्हें रोकते हुए कहा—'अजी ऐसी जल्दी क्या पड़ी है? जरा बैठो, कुछ देर बाद बाहर जाना। वे लोग भी सोचें कि मामला सीरियस है। जल्दी पट नहीं रहा है।

मुंशी जी हंस पड़े। बोले—मैं समझता था कि आपमें ठाकुर की ही बुद्धि है, पर अब लगता है कि परमात्मा ने आप को शरीर ठाकुर का पर दिमाग कायस्थ का ही दिया है।' दीवान जी भी हँस पड़े।

घन्टों बड़ी अधीरता से प्रतीक्षा करने के बाद बंगा सिंह और उन तीन व्यक्तियों ने देखा कि मुंशी जो पकी लौकी की तरह मुँह लटकाये

चले आ रहे हैं। देखते ही वे पीपल के वृक्ष के नीचे से उठे और उसकी ओर बढ़े। पास आते ही ठाकुर साहब बोले---'कहिए मुंशी जी क्या हुआ?'

'क्या बताऊँ ठाकुर साहब, दीवान जी बड़े ही नाराज हैं। वह तो किसी प्रकार मानते ही नहीं थे। कहते थे इतना सिरीयस केस है और आप चले हैं मामला तय कराने। बड़ा समझाया, बड़ी आरजू मिन्नत की। तब कहीं देवता सीधे हुए, बोले कि मुंशी जी आप आये है तब तो कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा, नहीं तो यह मामला खतम होने लायक नहीं है। कहो दफा ३६५ लगा है न।' अत्यन्त चिन्तित मुद्रा में ठाकुर साहब को सम्बोधित करके वह रुका।

'सो तो है ही।' ठाकुर साहब ने हां में हां मिलाया।

'फिर वह कहने लगे, अच्छा पाँच पाँच सौ रुपया दिला दो, तो इन्हें छोड़ दूं। तब मैंने कहा कि सरकार इन तीनों में से कोई ऐसा नहीं है जो आपको सौ रुपये भी दे सके। पर वे नहीं माने। बहुत मनाया तब कहीं पाँच सौ से चार सौ, फिर चार सौ से तीन सौ और अन्त में धीरे धीरे उतरते उतरते डेढ़ सौ पर आये। अब इससे कम पर तो वे राजी नहीं हैं। अब आप लोग जैसा सोचें। अब मैं तो इससे ज्यादा उन्हें दबाना ठीक नहीं समझता। अफसर का दिमाग ठहरा, पता नहीं बिगड़ जाय तो सारा बना बनाया मिट्टी हो जाय।'

'हाँ जी अच्छा ही किया। अब और दबाना दरअसल ठीक नहीं।' ठाकुर साहब ने मुंशी की बात स्वीकार की।

पर पंचम बोला—'मुंशी जी एतना कहां से दीआई?'

'अब दीआय चाहे न दीआय। हम आपन फरज कर देहली। आगे तू जानऽ, तोहार काम जानै। अब हम चलथइ...अच्छा राम राम।' वह चलने को हुआ। इस प्रकार उसने गहरा रूपक बाँधा। तब ठाकुर साहब ने उसे रोकते हुए कहा—'करे पचमवा, तै न मनवे। दुपुर दुपुर बोलल कर बे। दूसर कोई होत त ए बेरा मुंशी जी क गोड़ धरत। ए बेरा ऐसन काम ई कर देहलनऽ और तू ससुर बहसै कर थउअऽ।' फिर उसने मुंशी जी को सम्बोधित कर कहा—'जाएद मुंशी जी, अभैं इन इ लड़का हौ... चल धर गोड़।'

पचम मुंशीजी के पैर की ओर झुका। 'नहीं नहीं, मुझे इन सबसे बड़ी नफरत है। अरे, जैसे तुम भोंदू के लड़के हो वैसे ही हमारे भी। भला हम किस प्रकार तुम्हारा नुकसान कर सकते हैं।' मुशीजी अपनत्व दिखाते हुए बोले।

'नही, नहीं मुंशीजी, कभी नही।' सबने जैसे एक साथ ही कहा।

मामला इतने पर ही तय रहा। पचम ने अपनी एक भैंस बेची सरजू ने अपनी औरत का कमर बन्द तथा हाथ के चाँदी के कड़े बेचे, पर रब्बन क्या करे? उसने भी बंगासिंह के यहाँ अपना एक बीघा खेत गिरवी रखा। कागज लिखा ढाई सौ का और ठाकुर साहब ने दिया केवल डेढ़ सौ, बड़ा एहसान दिखाते हुए। और वह भी दो रुपया सैकड़े मासिक ब्याज की दर पर। किन्तु यह सब चटपट दो ही घण्टे में किया गया। दो बजे तक सबने ठाकुर साहब के सामने मुंशीजी के हाथ पर लाकर डेढ़-डेढ़ सौ रुपये रख दिये। मुंशीजी मन ही मन मगन होते चौकी की ओर ऐसी प्रसन्नता से बढ़े जैसी प्रसन्नता से नया दामाद अपनी ससुराल जाता है।

आधी रकम दीवानजी को दी। आधी से अपनी टेट गरम की। जब तीनों छूटे तब उनका कुशल क्षेम पूछना तो दूर रहा, मुंशीजी उलटे उन पर अपना रोब जमाने लगे, एहसान दिखाने लगे और अकड़ते तीनों के आगे आगे गाँव में चले, जैसे वे ही फतह हासिल करके आ रहे हो।

गाँव में आते ही सभी अपने दरवाजे से दौड़कर उन्हें देखने आते, कुशल मंगल पूछते, उनके शरीर पर मार के निशान देखते, पुलिस सरकार और ईसाई की उन लड़कियों को गाली देते तथा जली कटी सुनाते, फिर सारे खुरापात की जड़ मुंशी गुरुदीन पटवारी की तारीफ करते।

किन्तु इस समय भी रामू अपनी गोल के साथ कल से गाँव से प्रारंभ होने वाली रामलीला का घर-घर बडी मस्ती से घूमकर चन्दा माँग रहा था। वह इस संसार से दूर रहने और सागर की लहरों से खेलने वाले जल के उस उन्मुक्त पक्षी की तरह था जिसे यह भी नहीं मालूम होता कि उपवन में कब बसन्त आया और कब पतझड़, केवल समुद्रीय तूफान की अनुभूति जिसे कभी-कभी हो जाती है।

□ □ □

इस घटना के ठीक तीन दिन बाद एक सुहावनी सन्ध्या को गुप्ताजी अपनी कार लेकर पुनः मद्धूपुर पधारे और उस ईसाई के बगीचे के

फाटक पर धीरे से लाकर कार लगा दी। न हार्न दिया और न किसी को पुकारा। चुपचाप कार में ही बैठे रहे। धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ता गया। पश्चिम की ओर दूर बहुत दूर लौटू उपाध्याय के घर के सामने के बड़े मैदान में गेस की रोशनी दिखायी पड़ी, वहीं से कुछ लड़कों के हल्ला मचाने, नाचने, खेलने या झगड़ा करने जैसी आवाज आ रही थी।

गुप्ताजी कार में अब भी बैठे ही थे, कुछ सोच रहे थे। तब मेरी बगीचे में आती दिखायी पड़ी। तुरन्त मोटर से निकल कर उन्होंने बड़े आहिस्ते से मेरी को बुलाया। उसे खुद आश्चर्य था कि आज बात क्या है? ऐसा तो कभी नहीं होता था, जब कभी भी गुप्ताजी आते थे हार्न बजाते-बजाते नाक दम कर देते। पर आज ऐसी खामोशी क्यों? वह उसी दम चली आयी। गुप्ताजी ने उससे पूछा—'सरला इस समय क्या कर रही है।'

'शायद अपने कमरे में लेटकर कुछ पढ़ रही है।' मेरी बोली।

'और हेलेन कहाँ है।' उसने पुनः पूछा।

'वह भी अपने कमरे में ही है।'

'अच्छा जरा उसे धीरे से बुला तो ले आओ…और देखो, सरला को बिल्कुल न मालूम हो कि मै यहाँ आया हूँ।' वह और बिना कुछ पूछे चुपचाप अपनी सिस्टर के यहाँ पहुँची। यह अजीब रहस्य उसकी समझ के बाहर था।

हेलेन ने जब सुना कि गुप्ताजी बाहर खड़े हैं और चुपचाप मुझे बुलाया है, तब वह भी कुछ समझ नहीं पायी। जिज्ञासा बस शीघ्र ही बाहर आयी और गुप्ताजी के निकट पहुँची। साथ में मेरी भी थी।

'मुझे तुमसे कुछ गम्भीर बातें करनी है,'' ऐसी जगह चलो जहाँ मेरे यहाँ आने की सरला को जरा भी आहट न लगे।' गुप्ताजी ने कहा।

'कोई हरज नहीं, आप मेरे कमरे में ही चले आइए।' हेलेन भी उतनी ही गम्भीरता से बोली।

'क्यों, यदि वहाँ वह आ गयी तो?' गुप्ताजी ने सन्देह प्रस्तुत किया।

'नहीं वह वहाँ कभी नहीं आएगी। मेरे कमरे से तो उसे घृणा है। मैंने स्वयं उसे कई बार बुलाया, पर वह नहीं आयी। एकबार तो दरवाजे तक आयी और बाहर से ही झांककर बड़ी अनमनी सी हुई बोली—'सिस्टर तुम्हीं यहाँ बैठो। मै चलूँ। मेरा मन यहाँ नहीं लगेगा।' फिर वह अपने कमरे में चली गयी।'

'तब तुम्हीं समझो।'

'हाँ-हाँ, आप विश्वास रखिए। वह अपने कमरे से निकलती ही नहीं''और फिर मेरी है न।' तब उसने मेरी को सम्बोधित कर कहा—'जरा मेरी तुम ख्याल करना, ज्योंही वह अपने कमरे के बाहर आये हम लोगों को बता देना।' मेरी ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

'आखिर यह सब क्यों?' वह फाटक खोलती हुई बोली। 'चलो अभी बताता हूँ।' गुप्ताजी ने कहा। दोनों हेलेन के कमरे में आये। गुप्ताजी पलंग पर तकिए के सहारे बैठे और हेलेन सामने की कुर्सी पर। मेरी दियासलायी लेकर आयी और शमादान में लगी मोमबत्ती जला गयी। हेलेन के कहने पर उसने बगीचे की तरफ का दरवाजा भी बन्द कर दिया।

'अब तो वह तीन-चार दिन तुम्हारे पास रह चुकी।''''वह तुम्हें कैसी लगी?'

'बिल्कुल विचित्र, असाधारण।.........उसका तो यहाँ रहना न रहना सब बराबर है ? मैं यह नहीं समझ पाती कि वह आपके यहाँ कैसे रहती थी।'

'क्यों, बात क्या है ? मेरे यहाँ तो वह बिल्कुल साधारण ढग से रहती थी।' गुप्ताजी बोले। फिर कुछ सोचते हुए पहले दिन की सरला से हुई सारी बातें उन्होंने हेलेन को बतायी।

सब कुछ सुन लेने के बाद उसने वृद्ध राजनीतिक के स्वर की गम्भीरता अपने कण्ठ में भरकर कहा,—'गुप्ताजी आपने बड़ी भूल की। उससे ऐसी बातें करनी नहीं चाहिए थी। इस तरह तो आपने अपना वह अधिकार उस पर दिखाना चाहा जो अधिकार जेलर का कैदी पर होता है। जेलर की प्रत्येक बात मानते हुए भी कैदी के मन में जितनी घृणा उसके प्रति होती है, उससे कम घृणा सरला के मन में आपके और हमारे प्रति नहीं है। इन तीन दिनों में मैंने इसे अच्छी तरह देख लिया है। जब कभी मैं आप की चर्चा करती, उसकी आकृति से तिरस्कार की ज्वाला जैसे भभकती दिखायी देती। हर बात सुनकर वह चुप ही रहती केवल एक उपेक्षा भरी मुस्कराहट कभी कभी उसके अधरों पर आ जाती थी।'

'भूल तो जरूर हुई...पर कभी उसने मेरे सम्बन्ध में तुमसे कुछ कहा ?' गुप्ताजी ने पूछा।

'कभी कुछ भी स्पष्ट नही कहा। आज जब मैंने उसे बहुत छेड़ा और आपकी तारीफ करते हुए कहा कि गुप्ताजी तुम्हें बहुत चाहते है। तुम्हारी छाया बनने में ही वह अपना भाग्य समझेंगे तब वह विचित्र ढग से हँसी और बोली—'जब तक प्रकाश है तब तक नारी की ऐसी बहुत सी छायाएँ

बनती हैं पर प्रकाश के जाते ही छाया भी चली जाती है। तब औरत अकेले अन्धकार को टटोलती फिरती है। मालकिन के हाथ पीले कर जब गुप्ताजी लाये होंगे तब उन्होंने उनकी भी छाया बनने में शीतलता का अनुभव किया होगा। आज जब उसके चेहरे पर प्रकाश नहीं है तब वह छाया भी एक क्षण उसके पास रहना नहीं चाहती।' फिर वह इसके बाद ऐसी हँसी कि बात ही हँसी में उड़ गयी।" गुप्ताजी आपने ये बातें उससे कैसे कहीं? मेरे समझ में नहीं आता कि आप ऐसे पढ़े लिखे लोग भी आवेश में बुद्धि कैसे खो देते हैं।" 'सरला को जैसा आपने समझा है, जैसा उसके बारे में मुझसे कहा है वह वैसी नहीं है। आपने भूल की है।' हेलेन चुप हुई।

'और ऐसा न हो कि तुम ही उसे ठीक समझ न पा रही हो। वह जितनी शिष्ट, जितनी भोली और जितनी समझदार दिखायी पड़ती है वास्तव में वह वैसी है नहीं। कभी तुमने उससे यह पूछा है कि तुम कौन हो, कहाँ की रहनेवाली हो, बनारस क्यों आयी? तब तुम्हें उसकी असलियत मालूम होती। उसके चेहरे का रंग देखकर ही तुम भाँप जाती कि इसके शरीर की सारी शिष्टता और भोलेपन के भीतर कितनी भयकर अपराधी आत्मा छिपी है। यदि ऐसा न होता तो वह अपने को इतना छिपाती क्यो?'

हेलेन मुस्करायी और बड़े आधिकारिक ढंग से बोली—'गुप्ता जी आप पुरुष हैं; औरत को पहचान नहीं सकते। औरत स्वय एक छिपी हुई वस्तु है।...यह भी हो सकता है कि उसने कभी कोई बड़ा अपराध किया हो और उसे अब छिपाना चाहती हो, पर इससे उसके स्वभाव पर

तो कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जीवन में ऐसे समय आते हैं जब बड़ा से बड़ा अपराध हो जाता है, पर उस अपराध से अपराधी नहीं बदलता।'

गुप्ता जी ने देखा कि हेलेन ऐसी चरित्रभ्रष्ट नारी भी उसकी तारीफ कर रही है। तीन दिन में ही यह उससे बहुत कुछ प्रभावित हो गयी है। उसमें कुछ जरूर है तभी तो। फिर उन्होने हेलेन से पूछा—'अच्छा खाती पीती तो ठीक से है न?'

'पहले दिन तो शायद उसने कुछ नहीं खाया। दूसरे दिन सुबह श्यामू से दूध मंगाया था। कल ही तो बगल वाला कमरा खोल कर साफ किया और मेरे यहाँ से दमचूल्हा ले गयी। उसी पर शायद खिचड़ी पकाया था। आज भी कुछ बनाया है।' हेलेन बोली।

'क्या वह तुम्हारे साथ खाना नहीं खाती?' गुप्ता जी ने पूछा।

'खाना खाना तो दूर रहा वह हमारे साथ पानी भी पीना पसन्द नहीं करती।.... क्यों पीये, वह मुझसे महान है। आपत्ति में पड़कर भी वह, वह करना नहीं चाहती जो मैं प्रसन्नता से करती हूँ और जिसे मैं अपना पेशा समझती हूँ।' अत्यन्त गम्भीरता से वह पश्चाताप भरी आवाज में बोल रही थी।

हेलेन के हृदय में जहा अंधकार था, वहां प्रकाश का एक कोना भी जहाँ झूठ का सुमेर था, वहाँ सत्य का शीतल निर्झर भी, जहाँ पाप का पुंज था वहाँ पुण्य का पवित्र कण भी। गुप्ता जी ने देखा कि इस समय हेलेन की आवाज बदली है, उसके आँखों के भाव बदले हैं। उसकी आकृति ही कुछ दूसरी दिखायी दे रही है। सदा वासना का अन्धकार उगलने वाली उसकी आँखें इस समय प्रकाश का सपना दे रही हैं। सदा

झूठ और फरेब से भरी उसकी आवाज से इस समय कुछ सत्य भी टपक रहा है। उसे ध्यान से देखने के बाद गुप्ताजी ने अत्यन्त मन्द स्वर में बड़ी शान्ति से पूछा—'क्यों हेलेन, वह यहाँ किसी से नहीं बोलती ?'

'नहीं, वह कभी कभी डैडी के कमरे में जाती है। जब वह पानी मागते हैं, तब पानी देती है। कल दोपहर को उनका सिर भी दबा रही थी। मैं जब कमरे में पहुँची तब डैडी उसे आशीर्वाद दे रहे थे,—'बेटी, ईसू तुम्हारे अपराधों को क्षमा करें।' उसने तब ईसू की उस बड़ी तस्वीर के सामने भी मस्तक झुका दिया।

फिर कुछ समय तक दोनों चुप बैठे रहे। बोलना दोनों चाहते थे, फिर भी चुप थे। तब तक मेरी ने आकर सूचना दी कि सरला कमरे के बाहर निकल कर लैट्रिन में गयी है। मेरी पुनः वापस चली गयी।

'तो अब क्या किया जाय ?' गुप्ता जी ने पूछा।

'उससे उन बातों को वापस लीजिए और क्षमा मांगिए। मैं तो यही ठीक समझती हूँ।'

'मैं स्वयं तो क्षमा मांग नहीं सकता। कहो तो एक काम करूँ।' इतना कहने के बाद पर्स से वह कान का टप निकाला, जिसे मैंने उसे दिया था और उसे दिखा कर बोले—यह उसका टप है, जो बँगले से चलते समय ही गिर गया था। मैं चाहता हूँ कि श्यामू इसे सरला को दे और कहे कि एक अपरिचित आदमी आप को दे गया है उसने आप को नमस्कार कहा है और कहा है कि मुझे पहचानने में सरला देवी ने भूल की है। यदि मुझसे कोई गलती हो गयी हो तो क्षमा करें।'

'ठीक तो है इससे आपके सम्बन्ध में उसकी धारणा कुछ तो अवश्य

बदल जायगी, पर यह काम श्यामू कर न सकेगा, खैर मेरी ही कर देगी।'

'कहीं मेरी कुछ गड़बड़ न करे। मेरा नाम बताएगी तो ठीक नहीं होगा। इससे मेरी मर्यादा भी बच जायगी और काम भी हो जायगा, ...और अगर कहो तो टप के साथ ही दस बीस रुपये भी देदूँ। शायद कुछ काम ही लगे।' इसी बीच डैडी के खाँसने और पानी माँगने की आवाज सुनाई पड़ी। कदाचित मेरी ने जाकर उसे पानी पिलाया।

'ठीक ही है। मेरी बच्ची नहीं है। समझा दिया जायगा, वह ठीक कर देगी। अब तो सरला पर अधिक नियंत्रण रखना भी ठीक नहीं। मैं तो आज उससे कहूंगी कि जाकर गाँव की रामलीला देखआयें।'

'क्या इस गाँव में रामलीला भी होती है?' गुप्ताजी मुस्कर ते हुए बोले।

'आपने मेरे गाँव को क्या समझ रखा। देखना हो तो आज जाकर उपाध्याय जी के घर के सामने वाले मैदान में देखिए। कैसी सजावट, कैसा जमावड़ा होगा। इस गाँव की ऐसी मस्ती देखे तो शहर भी ईर्ष्या करने लगे।' शोख भरी अल्हड़ता में वह बोली।

'अरे वाह क्या कहने हैं। गाँव की मस्ती तो जाय भाड़ में, केवल तुम्हें ही यदि शहर वाले देखलें तो भी ईर्ष्या करने लगे।' उसी लहजे में गुप्ताजी ने भी कहा।

फिर सारी गम्भीरता और पवित्रता एक क्षण में विलुप्त हो गयी। कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी।

□ □ □

जब मेरी कमरे के बाहर निकली तब सरला ने वह टप बड़े ध्यान से देखा। यों तो पहली नजर में वह देखते ही उसे पहचान गयी, फिर भी जैसे उसे विश्वास ही नहीं होता था। उठकर उसने सन्दूक में खोजा। स्नो की शीशी में रखा एक कान का टप सन्दूक में भी मिला। वह सोच में पड़ गयी। क्या बात है? एक टप तो मैं मास्टर के घर पर ही छोड़ आयी थी। यह दूसरा आया तो कहा से? मालकिन ने मेरे कान का एक टप तो जरूर देखा था। ऐसा तो नही कि उन्होंने बनवा कर किसी से भेजवा दिया हो? फिर उन्हें इससे क्या मतलब? और यह नया भी तो नहीं है, उसने पेच की ओर ध्यान देते हुए सोचा,—बिल्कुल मैल भरी है। देखो यहाँ पर पेंच की घुण्डी जरा सी पचक भी गयी थी। जरूर यह मेरी टप है। मेरी ही है।

'तो क्या वह मास्टर ही इसे यहाँ दे गया? मेरी कहती है कि वह कह रहा था कि सरला देवी मुझे क्षमा करें।...शायद उन्होंने मुझे ठीक पहचाना नहीं है। हो सकता है, वह मास्टर ही रहा हो। पर उसने यह कैसे जाना कि मै यहाँ हूँ? विचित्र रहस्य है। भगवान मैं कुछ समझ नहीं पा रही हूँ।' वह कुछ व्यग्र दिखाई पड़ी।

'हो सकता है, वह मास्टर ही रहा हो। यो तो भला आदमी था। वह गगा की तरह निर्मल था। चौबिस घण्टे मैं उसके साथ रही पर लगता था जैसे मै अपने घर में ही हूँ।...केवल सिनेमा वाली घटना से उनके सम्बन्ध में अरुचि जरूर पैदा हुई, पर हो सकता है वह वहाँ विवश रहा हो। मेरी सहायता न कर सका हो।'

फिर उसकी आँखों के सामने मास्टर की या यों कहिए मेरी सूरत बराबर नाचने लगी। टप के साथ जो दस दस के दो नोट रखे थे। उसे भी देखकर उसकी शंका दृढ़ होती गयी।' उस दिन टप रख मैं बीस ही रुपये ले आयी थी, इसी से शायद याद दिलाने के लिए बीस रुपये ही भिजवाये है। बिल्कुल ठीक यह वही हैं।' उसका विश्वास दृढ़ हुआ।

यों तो वह अब भी बिस्तर पर पडी सोच रही थी, फिर उसका मन कुछ हल्का हो गया। इस संसार में उसे एक ऐसा आदमी तो मिल गया जो उसकी दृष्टि में मनुष्य था नर पिशाच नहीं था। यदि कहा जाय तो वह मन ही मन प्रसन्न भी थी। उसे लग रहा था जैसे अब वह किसी बन्धन में भी नहीं है। घोंसले में बैठे पक्षी की तरह उसका आकाश भी उसके पास था। तब तक हेलेन ने आकर कहा,—'अरे सरला, क्या बेकार हमेशा सोचा करती हो। उठो हाथ मुँह धो, और जाओ, देख आओ। रामलीला अब शुरु होगयी होगी।'

सरला तो जाने के लिए तैयार ही थी। हेलेन की बात सुनते ही तुरन्त तैयार हुई और श्यामू के साथ चल पड़ी।

आज फुलवारी की लीला हो रही थी। मैदान फूल पत्तियों से अच्छी तरह सजाया गया था। सचमुच यह जनकपुर का उद्यान ही लगता था। एक कोने पर रामायणियाँ झाँझ करताल और ढोलक पर रामायण कह रहे थे। खचाखच भीड़ थी। लड़के और महिलाओं की संख्या अधिक थी। कुछ बूढ़े बाबा लोग भी भगवान के दर्शन के लिये बैठे थे। औरतों के बैठने का अलग प्रबन्ध था। जानकी गिरिजा की पूजा करने

जा रही थीं। राम और लक्ष्मण लताकुंज से फूल तोड़कर निकल रहे थे। उनकी सीता से आँखें चार हुईं। कितना सुन्दर दृश्य था। सब एक टक देख रहे थे। लड़के तो करीब करीब चुप थे, पर भला औरतें चुप बैठ सकती हैं? 'गुड़चू गुड़चू' पता नहीं कहाँ कहाँ की बात, कहाँ कहाँ के मसले सब यहीं पेश हो रहे थे। और उस समय तो बड़ा बुरा लगता था जब किसी की गोद का बच्चा चीख पड़ता था। आसपास की सभी औरतें उसे चुप कराने में लग जाती। फिर एक दूसरे ही प्रकार का कोलाहल सा आरम्भ हो जाता। अभी अभी पता नहीं क्या हुआ जो दो औरतों मे 'झोंटा खिचौवल' की नौबत आगयी, पर बड़े लोग के बीच बचाव से मामला गाली आदान प्रदान के बाद ही समाप्त हो गया।

पहुँचते ही सरला औरतों की ओर जाकर बैठ गई और श्यामू पहले ही से लड़कों की गिरोह में चला गया। यदि कहीं सरला को यहाँ का कोई भी प्राणी श्यामू के साथ देख लेता तब तो वह वहीं सभी औरतों और पुरुषों की चर्चा का विषय हो जाती, पर ऐसा नहीं हुआ, वह वहाँ चुप-चाप वैसे ही बैठी रही जैसे बातूनियों की भीड़ में एक गूँगा।

उसको चुप बैठा देखकर भी आसपास की औरतें तरह-तरह का अनुमान लगाने लगीं। 'गूँगी हौ का बहिन' किसी ने कहा। 'नाहीं मिजाजिन लगत हौ'—कोई बोली। 'गोर चमड़ा हौ न, एकरे अपने रूप क गुमान हौ।' किसी ने कहा। पर उसने किसी से कुछ कहना ठीक नहीं समझा। एक चुप हजार चुप।

रामलीला कमेटी के कुछ लोगों की ड्यूटी भीड़ को शान्त करने में लगी थी। इसमें गाँव के प्रमुख लोग थे। जिधर महिलाओं का ग्रुप

था, उधर महिला मनोविज्ञान के विशेषज्ञ तथा अपराध शास्त्र के आचार्य मुंशी गुरुदीन पटवारी रामलीला कमेटी का बैज लगाये और हाथ में सोटा लिए घूम रहे थे। उनका पैर उतना नहीं घूमता था, जितनी उनकी आँखें। सरला को उसने कई बार घूर घूर कर देखा। सरला भी उसे अच्छी तरह भाँप गई। तब तक मुंशीजी को किसी ने नाम लेकर पुकारा। नाम सुनते ही उसे समझते देर न लगी क्योंकि हेलेन से उसकी चर्चा सुनी थी, पर शकल नहीं देखी थी।

जब लीला समाप्त हुई तब लोग मिट्टी का 'गोल्लक' लेकर चन्दा माँगने भीड़ मे चले। मुंशी जी भी गोल्लक लेकर इधर आये। जिस भली औरत के सामने वह गोल्लक लेकर जाते वह तुरन्त पैसा उसमें डाल देती। वह एक क्षण की भी देरी नहीं करती, पता नहीं क्षणभर में वह क्या कर बैठें? पर सरला ने एक पैसा भी उसकी गोल्लक में नहीं डाला। वह बड़ी देर तक उसके सामने खड़ा रहा। सरला सोच रही थी कि जहाँ इसने जरा भीं अण्ड बंड किया तहाँ, मै इसे खींच झापड़ मारूँगी, फिर देखा जायगा। किन्तु न उसकी कुछ करने की हिम्मत ही पड़ी और न इसने झापड़ ही मारा।

रामलीला समाप्त हुई। लोग अपने अपने घर जाने लगे। सरला भी हटकर आड़ में खड़ी हो गयी। श्यामू भी दौड़कर कुछ देर वाद वहीं आया। उसने श्यामू से कहा—'तू चल मैं रमैणियाँ बाबा से तुलसी दल लेकर आती हूँ।' वह चला गया।

पता नहीं कैसे भीड़ में ही औरतों की बातचीत में सरला ने सुन लिया था कि यहाँ की रामायण गाने के लिए शहर से एक बाबा आते है।

उनकी अवस्था ७५ से भी अधिक है पर रामलीला के दिनों में वह रोज आते हैं और रात में ही रोज लौट जाते हैं। सरला अब उन्हीं की राह देखती रामलीला के मैदान से दूर सड़क के किनारे पेड़ की आड़ में खड़ी रही। उसके सामने मेरी आकृति बराबर नाचती रही। वह सोचती यह मास्टर कितना सज्जन है। अब मुझे संसार में किसी की भी जरूरत नहीं है। अपने घर का एक कोना भी यदि दे देगा, उसी में जिन्दगी बिता दूँगी। मेहनत मजदूरी करूँगी, दो रोटी खाने को मिल ही जायगी। उसे ऐसा लग रहा था, मानों मैं उससे कह रहा हूं—घबराने की कोई बात नहीं मैं तो हूँ ही।

तब तक वह बाबा जी सड़क पर जाते दिखाई पड़े। सरला दौड़कर उसके चरणों पर गिर पड़ी। सड़क एकदम सुनसान, तब यह औरत कहां से? बूढ़ा आश्चर्य चकित रह गया, फिर भी बड़ा संभल कर बोला—'सौभाग्यवती हो बेटी।'

सरला हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। बोली—'मै शहर से भटककर यहां चली आयी हूँ। क्या मैं आप के साथ चली चलूँ?'

'भटक कर···क्या मतलब?' बाबाजी बोले।

अब सरला ने देखा झूठ बोलने में ही कल्याण है। उसने कहा—'मैं अपने भाई के साथ कार पर इधर घूमने आयी थी। उनकी कार बिगड़ गयी। वह मोटर बनाने में लगे और मैं घूमती-घूमती इधर चली आयी। रास्ता भूल गयी। तब एक आदमी ने आपके संबंधमें बताया कि वह रात में ही शहर चले जाते है। मैं आपके ही भरोसे रामलीला में

बैठी रही। अब कृपा कीजिए बाबा, नहीं तो मैं मारेडर के रात में ही इस सुनसान में मर जाऊँगी।' उसने अत्यन्त विनम्र हो निवेदन किया।

'बात तो बड़ी विचित्र है, पर मुझे क्या ? चलना चाहती हो, चलो। ...शहर में कहाँ जाओगी ?'

'वह जो...अखबार का प्रेस है न, उसी के पास जाऊँगी।'

'अच्छी बात है।' बाबाजी के पीछे सरला चल पड़ी।

रात के १२ बज चुके थे। गली श्मशान की तरह शान्त हो सो रही थी। सड़क के पहरेदार की 'जागते रहो' की आवाज सुनायी पड़ती थी। मैं त्रैमासिक परीक्षा की कापियाँ देख रहा था। भीतर से बूढ़े के खाँसने की आवाज और जोर-जोर से सांस लेने की आहट साफ सुनायी पड़ रही थी। इधर बेचारा फिर दमे से परेशान है। इसी बीच बाहरी दरवाजे की हलकी खटखटाहट सुनायी पड़ी। 'अरे इतनी रात को कौन ?' मैंने सोचा। फिर भी 'खट-खट-खट.........' खटखटाहट निरन्तर सुनायी पड़ती ही रही।

मैंने उठकर दरवाजा खोला। 'अरे......' मैं अवाक रह गया। सामने सरला विराट प्रश्न वाचक चिह्न की तरह हाथ जोड़े खड़ी थी। मैं कुछ क्षणों तक देखता ही रह गया। वह जीवन पथ पर परिश्रान्त पथिक की तरह शिथिल; मानों अपने ही द्वार पर खड़ी हो।